श्री राम उवाच–40

नयतां वर:

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन

नयतां वरः

संस्करण : प्रथम, मार्च, 2024
4000 प्रतियाँ

मूल्य : ₹ 125/-

प्रकाशक : **साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अंतर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)
☎ 0151-2270261
e-mail : sahitya@sadhumargi.com

आई.एस.बी.एन. : 978-93-91137-40-3

मुद्रक : नाकोडा कम्प्यूटर्स, उदयपुर

साधुमार्गी पब्लिकेशन

श्रेष्ठ नेतृत्वकर्ता

संसार नेताओं से भरा पड़ा है। कई नेता ऐसे हैं जो लोगों को झूठे सपने दिखाकर, बरगलाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करने में लगे हुए हैं। झूठे सपनों के जाल में फँसे लोग ऐसे नेताओं के आगे-पीछे घूमकर अनजाने में उनकी स्वार्थ सिद्धि में सहयोगी बनते हैं। आगे-पीछे घुमाने वाले, बरगलाने वाले, झूठे सपने दिखाने वाले नेता कहे जरूर जाते हैं पर सही में वे नेतृत्वकर्ता नहीं होते।

सही नेतृत्वकर्ता वह होता है जो अपने अनुगामियों को मान, मोह, लोभ आदि से दूर करता है। उन्हें सही लक्ष्य दिखाता है। आनंदमय स्थान दिखाता है। न सिर्फ दिखाता है बल्कि उत्तम, श्रेष्ठ और सुरक्षित तरीके से उस लक्ष्य तक, उस आनंदमय स्थान तक पहुँचाता भी है। सही नेतृत्वकर्ता की कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं होता। वह जैसा दिखता है, वैसा ही होता है। वह अपनी बात किसी पर थोपता नहीं। अपनी बात स्वीकार करने के लिए किसी पर दबाव नहीं देता। वह वस्तुस्थिति से परिचित कराता है।

किसी भी दौर में ऐसे नेतृत्वकर्ता कम ही हुए हैं। आज के दौर में तो और भी कम हैं। अनेक कर्म नेताओं से श्रेष्ठ एक धर्म नेता होता है। अनेक धर्मनेताओं में आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. सर्वश्रेष्ठ हैं। 'नेताओं में सर्वश्रेष्ठ' होना यानी **'नयतां वर:'** होना। आचार्यश्री ने अपने जीवन का ऐसा नेतृत्व किया कि लोग स्वत: उनके पीछे चलने लगे।

आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. के जीवन से प्रेरणा लेकर, उनकी वाणी से मार्गदर्शन प्राप्त कर अधिकाधिक लोग जीवन के सही लक्ष्य को प्राप्त करें, इसके लिए आचार्यश्री के प्रवचनों का संकलन प्रस्तुत है। ब्यावर में सन् 2021 में फरमाए गए प्रवचनों की यह पुस्तक नयतां वर: के नाम से आपके हाथ में है। ब्यावर में उस वर्ष फरमाए गए प्रवचनों की इस पाँचवीं पुस्तक के माध्यम से

पाठकगण नयतां वर: का अनुसरण कर स्वयं को उत्तम, श्रेष्ठ, सुरक्षित तरीके से आनंदमय सिद्धि स्थान तक पहुँचाएँ। अपने लक्ष्य को प्राप्त करें।

इसके प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्यश्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किए थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्यश्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गई हो तो यह हमारी कमी है। इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बताएँ, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत कराएंगे।

संयोजक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अंतर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

साधुमार्गी पब्लिकेशन

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को पुस्तक **'नयतां वर:'** के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अंतर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

आचार्य श्री रामेश के सुवर्ण दीक्षा महोत्सव व सुश्राविका मंजू जी मेहता धर्म सहायिका श्री सुशील कुमार मेहता के वर्षीतप के उपलक्ष्य में
कंचन कँवर, वैशाली-वैभव कुमार, शालीन कुमार मेहता (मुथा)
ब्यावर, मुंबई

।। सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें।।

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	संग्रह नहीं संधान	07
2.	आनंद का स्रोत : मूर्च्छा-त्याग	24
3.	साधना मन को स्वस्थ बनाए	39
4.	मर्यादा सुरक्षा कवच	50
5.	ऐसे बनता मन अविकारी	65
6.	जहाँ मौत भी हारती है	81
7.	बीज, बीज नहीं वटवृक्ष है	95
8.	अरुज बनाना अपना मन	103
9.	पुरुषार्थ परम पाथेय	116
10.	बहे धार संवेग	129
11.	पहले मन की कर पहचान	143
12.	विजय पथ स्वीकारें	156
13.	सुपात्रदान सुफलदायी	166
14.	प्रतिक्रिया नहीं, पुरुषार्थ	178

1

संग्रह नहीं संधान

विमल जिन दीठा लोयण आज...

मनुष्य जन्म दुर्लभ बताया गया है, किंतु हमारी निगाह में अभी वैसी स्थिति नहीं है। हम मान रहे हैं कि हमें मानव जीवन बहुत सरलता से मिल गया। यदि इसकी दुर्लभता को स्वीकार करते तो जिस तरीके से हम मनुष्य जन्म को खो रहे हैं वैसा नहीं करके इसका उपयोग महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए होता।

नरक गति में हमने क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, डाह और नफरत का आचरण किया। तिर्यंच गति में भी इनका भोग भोगा। देवगति में भी इससे बचे हुए नहीं रहे। ईर्ष्या, डाह चारों गति में चलते हैं। भले ही कोई देव बन जाए या कितना ही ऊँचा मनुष्य बन जाए, किंतु ईर्ष्या, डाह, क्रोध, मान, माया, लोभ छोड़ना दुष्कर है, बहुत कठिन है। करोड़ों-अरबों की संपत्ति दान करना आसान है, किंतु अपने बड़प्पन का त्याग करना बहुत कठिन है, दुरूह है।

कोई व्यक्ति करोड़ों का दान कर रहा है, छोड़ रहा है उसे दान और त्याग दोनों ही नहीं कह सकते, क्योंकि दान की परिभाषा गहन है। नाम के लिए करोड़ों-अरबों निकालने वाला दान दे रहा है ऐसा कहना उचित नहीं होगा। वह तो व्यवसाय कर रहा होता है। उसकी चाह इस हाथ से देकर उस हाथ से लेने की रहती है। वह चाहेगा ग्रेनाइट की पट्टी पर स्वर्ण अक्षरों में मेरा नाम लिखा जाए तो ध्यान रखना कि वह दान नहीं है। दान की परिभाषा तत्त्वार्थ सूत्र में बताई गई है कि अपनेपन का त्याग करना। वह मेरा था, मेरा है यह दिमाग से हट जाए। जो हाथ से निकल गया उसके बाद कोई चर्चा नहीं, विचारणा नहीं, स्फुरणा नहीं। कभी नींद में भी बात न उठे कि मैंने इतना दिया। ऐसे देने को दान कहा गया और त्याग तभी होगा, जब देकर भूल जाएं। यदि माला गिनते रहते हैं

और दिन में दस बार ध्यान में आता है कि मैंने इतना दिया, यह दिया, वह दिया तो वह सच्चा त्याग नहीं है। जो दे दिया उसकी कोई खोज-खबर ही नहीं हो, वह दान है, त्याग है।

मनुष्य जन्म मिला है तो विशिष्ट कार्य करने की समझ होनी चाहिए। मनुष्य जीवन बहुतों को मिल रहा है। संख्या बढ़ती ही जा रही है। सरकारें कितना भी प्रयत्न करें, किंतु संख्या रुक ही नहीं रही, उलटे बढ़ती जा रही है। कोरोना काल जैसा कोई रूप आकर संख्या कम कर दे तो बात अलग होगी, बाकी संख्या कम नहीं हो रही।

सवाल है कि यदि मनुष्य जन्म इतना दुर्लभ है, कठिन है तो फिर उसमें रुकावट पैदा क्यों हो रही है, उसको क्यों रोका जा रहा है? यह प्रयत्न क्यों किया जाता है कि मनुष्यों की संख्या नहीं बढ़े?

इस रुकावट के पीछे, इस सोच के पीछे बहुत सारे कारण हैं। बहुत सारी समस्याएं हैं। सही तरह से मनुष्य जीवन नहीं जीया जाना भी एक कारण है। यदि मनुष्य संयम से जीता तो ये समस्याएं खड़ी नहीं होतीं। उसके संयम, नियंत्रण और अनुशासन खोने के कारण से यह समस्याएं खड़ी हुईं। अन्यथा ऐसी समस्याएं मनुष्य के सामने नहीं आतीं। मनुष्य जीवन, सृष्टि का उन्नत जीवन है। इससे बढ़कर कोई और जीवन नहीं हो सकता।

'माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं'

ये चार अंग मोक्ष के हैं। ये चार प्रसंग होंगे तो ही मुक्ति मिलेगी। तभी मोक्ष मिलेगा। इसके लिए पहले मनुष्य जन्म मिले यह जरूरी है। मनुष्य जन्म मिलने पर भटक जाएं यह नादानी है। उस स्थिति में तो यही कहा जाएगा **'आए थे हरि भजन को ओटन लगे कपास।'** मनुष्य जन्म जो मोक्ष का अंग न बन सके वह दुर्लभ नहीं है, ऐसा कहें तो शायद चलेगा क्योंकि मनुष्य जन्म भी हमने अनंत बार पा लिया। यह पहली बार नहीं है। जिस जन्म को सफल कर लेंगे, मील का पत्थर बना लेंगे, उसकी महत्ता होगी। दूसरा है श्रुति। मनुष्य जीवन मिल गया, किंतु यदि धर्म का बोध नहीं हुआ, धर्म की तरफ रुझान नहीं बना तो मनुष्य जन्म सार्थक नहीं हो पाएगा। तीसरी बात है श्रद्धान होना। इसे बहुत दुर्लभ बताया है। ज्ञानीजनों ने कहा है कि श्रद्धा परम दुर्लभ है। बात विचार

करने की है। थोड़ी गहराई में जाने की आवश्यकता है। एक सुनना कान से होता है और एक सुनना होता है दिल से। कान से सुना हुआ यदि दिल तक पहुँच गया तो सुनना बराबर हुआ। एक कान से सुना हुआ दूसरे कान से निकल जाए तो वह अनसुना हो गया। हमने अब तक सुना तो होगा पर सुनने के रूप में बहुत कम सुना होगा। ज्यादातर सुने को अनसुना कर दिया। यदि सुना हुआ दिल की गइराई में उतर गया होता तो जीवन में बदलाव का कारण बन जाता। जैसे थोड़ा-सा जावण दूध को दही बना देता है, वैसे ही श्रद्धान से जीवन में बदलाव आ जाता है।

बचपन में हमारी शक्ल, सूरत, पसंद कुछ और रही होगी पर युवावस्था में बदलाव आया। बुढ़ापे में शरीर के साथ ही पसंद और रहन-सहन में बदलाव आ गया, किंतु ज्ञानीजन इसे बदलाव नहीं कहते। यह एक ही चक्र है उसी के भीतर यह बदलाव हो रहा है, चक्र चल रहा है किंतु गति नहीं है। साइकिल को स्टैंड पर खड़ा कर पैडल घुमाने के समान यह बदलाव है। स्टैंड पर खड़ी साइकिल का पैडल घुमाने से बस पहिया घूमता है, साइकिल वहीं-की-वहीं खड़ी रहती है, वह आगे नहीं बढ़ती। घड़ी का काँटा भी घूमता रहता है, किंतु जगह वहीं-की-वहीं है। उसी तरह वर्षों बिताने के बाद भी हमारे कदम आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। हम आगे बढ़े या नहीं बढ़े, यह विश्वास के साथ कहना कठिन है।

जैन कुल में जन्म लेने से आनुवांशिक रूप में सामायिक कर ली। परिवार वाले कर रहे हैं इसलिए कर ली। धर्मगुरु ने सामायिक के लिए कहा और मुँहपत्ती बाँधकर सामायिक कर ली, पर सामायिक के सही रूप को हमने साधा या नहीं! यदि हम सामायिक के सही रूप को नहीं साध पाए तो ये सामायिक की क्रिया भी उतनी सार्थक नहीं होने वाली। साधने का मतलब उसका प्रभाव भीतर तक जाना चाहिए। भीतर रहना चाहिए कि मैं सामायिक कर रहा हूँ। सामायिक से उठने के बाद भी उसका असर, उसका प्रभाव हमारे मन पर बने रहना चाहिए।

नींद की गोली खाने पर उसका असर आता है। बैठे हुए भी नींद आती रहेगी। आँखें घुलती रहेंगी। हम नहीं सोएं तो भी उसका असर होता है वैसे ही

सामायिक का असर आना चाहिए। यदि असर नहीं आता है तो कहना होगा हम सुनते जरूर हैं, किंतु समझ नहीं रहे हैं। कभी समझ भी गए तो उसका उपयोग जैसा करना चाहिए वैसा किया नहीं जा रहा है।

एक सम्राट के पास एक गरीब व्यक्ति गया। उसने अपनी पीड़ा सुनाई तो सम्राट ने चंदन का एक बगीचा उसको दे दिया। बख्शीश दे दिया। वह आदमी सोचने लगा कि इतनी सारी लकड़ियों को कोयला बनाकर बेचूंगा और खूब पैसा कमाऊँगा। वह पेड़ को काटने लगा, लकड़ियों को काट-काटकर जलाने लगा, कोयला बनाकर बेचने लगा। उसने सारे बगीचे को नष्ट कर दिया। सिर्फ एक पेड़ बचा, बाकी सारे पेड़ों को काटकर जला दिया और कोयला बना दिया।

उसको कितने पैसे मिले?

(लोगों ने कहा कि थोड़े-से मिले)

उसको मालूम नहीं था कि यह चंदन की लकड़ी है। संयोग से उसको एक समझदार व्यक्ति मिल गया। समझदार व्यक्ति ने उससे कहा कि तुम यह क्या कर रहे हो? उसने कहा कि कोयले बना-बनाकर बेच रहा हूँ। समझदार व्यक्ति ने कहा कि यह कीमती लकड़ियाँ हैं। उसने उसको एक छोटी-सी लकड़ी दी और कहा कि तुम इसको बाजार में बेचकर आओ। वह बेचकर आया तो उसे मालूम पड़ा कि यह लकड़ी तो बहुत महँगी बिक रही है। अब वह रोने लगा कि मैंने कितनी लकड़ियाँ जलाकर व्यर्थ कर दीं। इस एक छोटी-सी लकड़ी का मुझे इतना पैसा मिला। इतने पैसे तो मुझे कोयले बनाकर बेचने पर भी नहीं मिले। वह व्यक्ति सोचने लगा कि अगर मैं लकड़ियों को बचाकर रखता तो धन्य हो जाता।

उसने क्या किया उस पर हमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है। हमें विचार करना है कि हमें जो जिंदगी मिली है वह चंदन से बढ़कर है। हमारा एक-एक क्षण दुर्लभ है। इन क्षणों को किस रूप में हमने बिताया है। भगवान कहते हैं कि एक समय का भी प्रमाद मत करो। एक समय भी तुम्हारा व्यर्थ में नहीं जाना चाहिए। एक क्षण भी यूं ही नहीं जाना चाहिए।

घीलोड़ी में घी रहता है। यदि उसमें 100 ग्राम है और घीलोड़ी हाथ

से गिर जाए तो चिंता हो जाती है। घीलोड़ी गिरने से पूरा घी नहीं गिरा। उसमें से 50 ग्राम गिरा, 50 ग्राम उसी में मौजूद है। 50 ग्राम घी गिर जाने से चिंता होती है। बड़ा अफसोस होता है। उसके पीछे कई बातें होती हैं। लड़ाई हो जाती है कि ध्यान कहाँ था तुम्हारा, ध्यान से नहीं ले सकते थे। 50 ग्राम घी गिरने से उसके प्रति संताप है, दुख है किंतु अपने जीवन के कितने वर्ष बीत गए उसकी हमें कोई चिंता ही नहीं है। धन बढ़ाने की चिंता तो बहुत है, किंतु उसका करोगे क्या?

अभी आपने महासती जी से मम्मण सेठ के विषय में सुना। मम्मण सेठ ने खूब धन कमाया। पेट काट-काटकर धन इकट्ठा किया। शरीर को खाना नहीं दिया। उनोदरी तप नहीं किया। उनोदरी तप कैसे होता क्योंकि उसकी तपस्या की भावना थी ही नहीं, धन बढ़ाने की भावना थी। धन बढ़ाकर भी क्या करेंगे? यह बताएं आप खाएंगे क्या? गेहूँ की रोटी, मक्के की रोटी या ज्वार की रोटी ही तो खाएंगे। खाने को तो रोटियाँ ही मिलेंगी। सोना-चाँदी तो खा नहीं पाएंगे। किसी ने सोचा कि आज तो हीरा ही खाना है और हीरा निगल लिया तो क्या होगा?

कहते हैं कि हीरे में जहर होता है। कोई उसको निगल ले तो उसकी मृत्यु निश्चित है। करोड़पति, लखपति हो या गरीब हो, खाना तो सबको अनाज ही होता है। अनाज का ही खाना खाते हैं। फिर उसमें क्या विशेषता रहती है? हो सकता है कोई अच्छी क्वालिटी का अनाज ले ले, किंतु खाना तो अनाज ही पड़ेगा। हमने कितना भी कमा लिया साथ क्या जाएगा?

रोना है बेकार साथ क्या जाएगा...

कितनी संपत्ति साथ में ले जाएंगे बोलो? इसका आपके पास कोई जवाब नहीं है तो फिर प्रपंच क्यों करनी? कोई मतलब नहीं है। केवल एक मतलब है। वह मतलब है कि मैं अपने मन से ही बातें बतियाता रहूँ। जबकि कीचड़ में पाँव धँसे हुए हैं, गहरे धँसे हुए हैं, वे निकलेंगे नहीं तब तक कैसे आगे बढ़ेंगे। वह कीचड़ आरंभ और परिग्रह का है। आरंभ और परिग्रह दोनों मिल जाते हैं तो कीचड़ हो जाता है। यदि उसमें भाव नहीं जुड़े, आसक्ति में नहीं बदला तो वह कीचड़ नहीं होता। मिट्टी, मिट्टी है। जिस मिट्टी पर पानी गिर जाए

और उस पर गमनागमन हो जाए वह मिट्टी कीचड़ बन जाती है। हमारी भावना केवल आरंभ है तो वह कीचड़ नहीं बनेगी, किंतु आसक्ति का संबंध जुड़ गया तो वह कीचड़ हो गया। उस दलदल में फँस गए तो फिर वहाँ से निकलना बहुत कठिन है। कोई सशक्त पुरुष आकर निकाल दे तो बात अलग है। कीचड़ में फँसने पर हाथी के लिए भी निकलना मुश्किल हो जाता है। वह कीचड़ से बाहर निकलने का जितना प्रयत्न करता है, उतना ही उसमें धँसता जाता है।

हस्तिपाल सम्राट को कुछ स्वप्न आए थे। उन स्वप्नों में से एक स्वप्न का फल यह था कि श्रावक वर्ग को थोड़ी संपत्ति मिल जाने पर वह फूला नहीं समाएगा। वह स्वयं को सेठ मानने लगेगा जैसे कि सोंठ-हल्दी की गाँठ लेकर बेठा पंसारी सोचने लगे कि मेरी बहुत बड़ी दुकान (मॉल) है। वही हालत हमारी बनी हुई है।

आपके पास कितनी संपत्ति है? आनंद श्रावक जितनी है क्या? शालिभद्र जितनी है क्या? सेठ धन्ना जितनी है क्या?

(लोगों ने कहा कि उतनी नहीं है)

उनका जीवन देखो। धन्ना सेठ को अपनी संपत्ति छोड़ने में, राज्य का त्याग करने में एक क्षण नहीं लगा। उन्होंने नहीं सोचा कि क्या करूँ, क्या नहीं करूँ। एक क्षण में सब कुछ त्याग दिया। राम ने अयोध्या का त्याग किया तो पीछे मुड़कर नहीं देखा कि आने वाले समय में क्या होगा, जिंदगी कैसे गुजरेगी। उनका स्पष्ट मन था कि जब मैं पुरुषार्थ करने में समर्थ हूँ तो मुझे चिंता क्यों सताएगी। यदि हमने संग्रह कर लिया तो क्या जरूरी है कि हम उसको भोग लेंगे? वह संपत्ति हमारे भोगने में आएगी या नहीं? संग्रह करके रख लिया गया तो काम क्या आएगा? उसका उपयोग क्या होगा?

साथियो! सोचें, जिंदगी के सुख से जीने के क्षण किसमें लगा रहे हैं?

हम अपनी जिंदगी के क्षण हाय-हाय में लगा रहे हैं। जिन क्षणों में बहुत आनंद उठाया जा सकता है, मकरंद लिया जा सकता है, प्रभु भक्ति के हिलोरे लिए जा सकते हैं उन क्षणों को फालतू में लगा रहे हैं। हमारा जीवन कचरा संग्रहण में व्यतीत हो रहा है। नगरपालिका की गाड़ियाँ गाना गाते घूमती हैं, कचरा संग्रह करती हैं। हम क्या कर रहे हैं?

हजार के नोटों की बंदी हुई तो भागदौड़ मच गई। आज सारी करेंसी बंद कर दी जाए तो क्या होगा? हजार का नोट बंद हुआ तब आपको समय दिया गया कि इतने समय में अपने पैसे जमा करा लो पर अभी तत्काल कह दें कि कोई कीमत नहीं है इन नोटों की, बोलो उपस्थिति में, पास में संग्रह किए हुए नोटों की क्या कीमत रह गई? अब आप कहोगे कि म.सा. हमने सोच लिया, हम पहले से ही सावधान हैं। हमने पहले से ही सोना खरीदकर रख लिया है। रुपयों की जगह सोना रख भी लिया तो नींद आराम से आ जाएगी? सोना तो रख लिया, किंतु अब नींद उड़ गई। नींद नहीं आ रही है। कई लोग सोना रखने के तरीके भी जानते हैं। वे कहते हैं इनकम टैक्स वाले आए। तुम डाल-डाल तो हम पात-पात। सरकार कानून बनाती है, वह डाल-डाल चलती है किंतु हम तो पात-पात चलते हैं। ये बनिया बुद्धि क्या इसी काम में आएगी? आपने कानून से धन बचा भी लिया तो क्या बचाया? यदि जिंदगी के अनमोल क्षणों को बचाकर सार्थक कर लिया होता तो जिंदगी में आनंद की अमीय वर्षा हो जाती। वे क्षण जिंदगी को बहुत महत्त्वपूर्ण बनाने वाले होते। **वेळा रा बायोड़ा मोती निपजे** यानी सही समय पर किया हुआ कार्य सफल होता है। हमारी जिंदगी में एक मोड़ आ जाए और हम उसका सही उपयोग कर लें तो जिंदगी आनंद वाली होगी।

किंतु आज हम कर क्या रहे हैं? हमें बहुत सुंदर मनुष्य जीवन मिला। अनमोल जीवन मिला, किंतु लोग रोते-रोते आते हैं और कहते हैं कि म.सा. मेरे सामने यह समस्या है, वह समस्या है। समस्याओं पर समस्याएं आ रही हैं। उनसे यदि पूछा जाए कि रोटी कोरी खाते हो या लगावण से लगाकर। जब रोटी लगावण से खाने की आदत है तो समस्याओं को भी जीवन का लगावण समझो, फिर समस्या स्वादिष्ट बन जाएगी। दूसरे शब्दों में कहें तो समस्या किसको नहीं होगी?

'एंगतसुही मुणी वीयरागी'

श्रीमद् भगवती सूत्र में एक सुंदर चर्चा है कि भगवान महावीर के पास शक्रेंद्र अपनी विनयवृत्ति से प्रश्न पूछता है और भगवान महावीर उसके प्रश्न का जवाब देते हैं। वह प्रश्न पूछकर शीघ्रता से वापस चला गया। गौतम स्वामी

महावीर भगवान से पूछते हैं कि शक्रेंद्र पहले जब भी आया तब स्थिरता से आपकी पर्युपासना की। अनेक प्रकार से नाट्य आदि की विधियाँ करता, किंतु ऐसा क्या कारण है जो अभी शक्रेंद्र आया और बहुत जल्दी वापस चला गया?

भगवान ने कहा कि गौतम! सुबह के समय सूर्य की किरण देखना आसान है, किंतु दोपहर के सूर्य की किरण देखना कठिन है। महाशुक्र विमान के देव शीघ्र ही मेरे पास आने वाले हैं। उसको आते हुए देखकर शक्रेंद्र यहाँ से जल्दी चला गया। शक्रेंद्र महाशुक्र विमान के देव के तेज को, उनकी आभा को सहन करने में समर्थ नहीं है इसलिए जल्दी चला गया।

आपको बात समझ में आई क्या? क्या समझ में आई बताओ।

एक तरफ स्वयं इंद्र और दूसरी ओर सामान्य देव, किंतु उसकी आभा इतनी प्रखर है कि उसकी आभा सहन करने में इंद्र भी समर्थ नहीं है। इतने में महाशुक्र विमानवासी देव आया और भगवान को वंदना-नमस्कार किया, पर्युपासना की। भगवान ने उसको देशना दी। उसके बाद उसने भगवान से प्रश्न किया कि भगवान मैं भवी हूँ या अभवी? भवी और अभवी की कोई निशानी नहीं होती। बैज नहीं लगा होता कि यह भवी है और यह अभवी है। श्रीमद् आचारांग सूत्र की शिलांग टीका में भवी और अभवी की पहचान दी गई है। भवी की पहचान देते हुए उसमें कहा गया है कि जिसको अंतर्मन से ऐसा विकल्प पैदा हो कि मैं भवी हूँ या अभवी, वह भवी होता है। भवी के मन में ऐसा विकल्प पैदा हो सकता है। अभवी के मन में ऐसी कोई विचारणा या स्फुरणा पैदा नहीं होती। महाशुक्र विमानवासी देव ने भगवान से पूछा कि मैं भवी हूँ या अभवी और भगवान ने उसको समाधान दिया। वह भगवान को वंदना-नमस्कार करके चला गया।

गौतम स्वामी, महावीर स्वामी से पुन: प्रश्न पूछते हैं कि भगवान यह यशस्वी देव जो यहाँ उपस्थित हुआ, उसने इस प्रकार से रिद्धि-सिद्धि कैसे प्राप्त की?

भगवान ने रिद्धि प्राप्ति का उपाय बताया। उसकी चर्चा के पूर्व हम समझ लें कि रिद्धि क्या है? रिद्धि किसे कहना? सामान्यतया धन-संपत्ति, वैभव को रिद्धि माना जाता है। दूसरी रिद्धि होती है आत्मा की। वह प्रसन्नता

रूप है। हर हालत में मस्त। कोई चिंता नहीं, कोई तनाव नहीं। कुछ भी नहीं है तो भी खुश है। दूसरी तरफ आदमी के पास अगर धन है तो भी तनाव है, नहीं है तो भी तनाव है। धन मिल गया तो भी टेंशन क्यों है? क्योंकि उनके पास नेकी से कमाया हुआ धन नहीं है। जितना धन खाते में बताया जा रहा है, उससे ज्यादा धन है। क्यों है ज्यादा, कहाँ से आया ज्यादा? जो ज्यादा धन है वही चिंता का कारण है। यदि सारे काम एकदम सही हों तो कोई टेंशन नहीं है। गलतियाँ ही टेंशन में ले जाती हैं। हमने बेईमानी से धन कमाकर अपने पास रखा तो शांति से नींद नहीं आने देगा। चैन से नींद नहीं आने देगा। ऐसे धन को रखने से फायदा क्या है कि घर में रोज झगड़ा हो रहा है। बेटा कह रहा है कि मैं आपसे अलग होना चाहता हूँ। सास-बहू में बन नहीं रही है। इस प्रकार जिस धन से टेंशन हो रहा हो उसे कहीं फेंक क्यों नहीं देते।

संतान यदि रोज-रोज झगड़ा करे तो तुम अपनी संतान को छोड़ सकते हो, अलग कर सकते हो। अपनी पत्नी को छोड़ सकते हो, घर को छोड़ सकते हो, किंतु धन को, वैभव को नहीं छोड़ सकते। अनीति का वैभव भेदभाव पैदा करता है। वह चाहेगा हमारा स्टेटस रहना चाहिए। हमारा बड़प्पन रहना चाहिए। इससे जीवन में सुख का अहसास नहीं हो पाएगा। जीवन पर दुख छाया हुआ रहेगा।

एक आख्यान हमने बहुत बार सुना होगा कि एक अपराधी को मृत्युदंड की सजा दी गई। राजा ने उसको मृत्युदंड की सजा सुनाई। मृत्युदंड के लिए उसको ले जाया जा रहा था। महारानी ने देखा तो उसने राजा से फरियाद कि मेरा एक वरदान आपके हाथों में जमा है, आपके राजकोष में जमा है, आज मैं उस वरदान को लेना चाहती हूँ। राजा ने कहा कि ठीक है, तुम अपना वरदान माँग सकती हो। महारानी ने कहा कि एक दिन के लिए मैं इस अपराधी को अपने पास रखना चाहती हूँ। उसको सुख देना चाहती हूँ। संतोष देना चाहती हूँ। एक दिन के लिए उसको बख्शा जाए। राजा ने कहा तथास्तु।

महारानी ने उस अपराधी को बुलाकर सबसे पहले स्नान कराया। फिर अच्छे कपड़े और आभूषण पहनाए। अच्छा खाना खिलाया और एक हजार मोहरें दीं। देखते ही देखते एक दिन निकल गया। एक दिन निकल गया और

लोगों में चर्चा होने लगी कि महारानी ने अपराधी को एक दिन के लिए अच्छा जीवनदान दे दिया। यह बात दूसरी महारानी को पता चली तो उसने सोचा कि मैं पीछे क्यों रहूँ। उसने राजा से जाकर कहा कि मैं भी एक दिन के लिए उस अपराधी को अपने पास रखना चाहती हूँ। उसने भी उस अपराधी को स्नान कराया और अच्छे कपड़े पहनाए, अच्छे-अच्छे आभूषण पहनाए, तरह-तरह के भोजन करवाए और दो हजार मोहरें दीं। ये बात तीसरी महारानी के कानों में पड़ी तो वह भी राजा के पास जाती है और कहती है, मैं भी आपसे अपना वरदान माँगना चाहती हूँ। राजा ने कहा कि माँगों क्या वरदान चाहिए तो उसने कहा कि मैं इस अपराधी को एक दिन के लिए अपने साथ रखना चाहती हूँ। राजा ने कहा कि ठीक है। उसने भी उस अपराधी के साथ वैसा ही किया जो पहले वाली महारानियों ने किया था। उसने पाँच हजार मोहरें दीं। चौथी ने सोचा कि मैं भी महाराज से वरदान माँग लूं। उसने भी राजा से वरदान माँगा तो राजा ने कहा कि माँग लो जो चाहती हो तो उसने कहा कि मैं इस अपराधी को मुक्त देखना चाहती हूँ। इस अपराधी का अपराध माफ कर दिया जाए। आपने इसको फाँसी की सजा दी है, वह माफ कर दी जाए। उसको सही जीवन जीने के लिए एक मौका दिया जाए। राजा ने उसकी बात मान ली और उसको जीवनदान दे दिया।

चौथी महारानी ने न उसको खिलाया और न पिलाया, न आभूषण पहनाए। कुछ भी नहीं दिया। केवल जीवनदान दे दिया। रानियों में खुसुर-फुसुर होने लगी। तीनों रानियाँ चौथी को कंजूस बना रही थी। अपने हाथों द्वारा किए गए उपकार का बखान कर रही थी। उन्होंने कहा कि इसका निर्णय स्वयं सम्राट से लिया जाए। चारों महारानियों ने राजा से पूछा कि आप बताइए कि किसने उस व्यक्ति को ज्यादा सुख दिया?

(लोगों ने कहा कि चौथी महारानी ने)

मैंने आपसे पूछा ही नहीं आप जवाब क्यों दे रहे हो। वे रानियाँ पूछ रही हैं राजा से कि सबसे ज्यादा सुख किस रानी ने दिया उस अपराधी को? राजा ने सोचा कि ये झंझट मैं क्यों पालूं। मैं किसी एक का नाम ले लूंगा तो राजमहल में कलह हो जाएगी। राजा ने कहा कि अच्छा होगा, हम उसी को

बुला लें और उसी से जानकारी लें।

उस अपराधी को बुलाकर पूछा गया कि आपको सबसे ज्यादा सुख किस रानी ने दिया? उसने कहा कि सभी महारानियों का मेरे ऊपर उपकार है। सभी ने मेरी एक-एक दिन के लिए सजा आगे बढ़ाई और सभी ने मुझको खूब खिलाया-पिलाया, अच्छी-अच्छी पोशाक पहनाई। अच्छे-अच्छे आभूषण पहनाए, और भी उपाय किए, किंतु सच्चा सुख छोटी महारानी ने दिया। राजा ने कहा कि क्यों भाई उसने तो तुमको न खिलाया, न पिलाया न कुछ दिया ही फिर उसने सच्चा सुख कैसे दिया। उसने कहा कि हे राजन! पहले दिन, दूसरे दिन और तीसरे दिन मेरी बहुत आवभगत की गई। कोई कमी नहीं थी, पर मेरे दिमाग में टेंशन तो वही-की-वही थी कि अगले दिन फाँसी की सजा है। एक दिन के लिए अच्छे-से-अच्छा खाना खिला दो, कितनी ही मौज करते रहो किंतु सजा तो ज्यों-की-त्यों ही खड़ी थी। दूसरे दिन वैसे ही मेरे दिमाग में विचार आ रहा था और तीसरे दिन भी वैसे ही विचार आ रहे थे। चौथे दिन मुझे फाँसी की सजा से मुक्त किया गया था, तब मेरे दिमाग में जो आनंदभाव जगा, जो सुख का अहसास हुआ, जो प्रसन्नता बनी, जैसी खुशी बनी वैसी खुशी अच्छे-से-अच्छा खाना खिलाने, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाने, आभूषण पहनाने पर भी नहीं बनी।

वह खुशी हमको कब मिलेगी? जब यह घोषणा हो जाए कि अब जन्म-मरण नहीं होगा तो जो खुशी होगी उसको मापा नहीं जा सकता। कोई आपकी उम्र बढ़ा दे तो क्या आपको खुशी हो जाएगी? आपकी उम्र बढ़ा दी और आपको रोग से पीड़ित कर दिया। अब आप हाहाकार करते हुए बड़ी परेशानी से समय निकाल रहे हो। उम्र तो बढ़ गई पर दस साल रोते-रोते रहे, दूसरों के अधीन हो गए तो ऐसा जीवन किस काम का! दस साल बढ़ा भी दिए तो क्या हुआ। एक दिन मृत्यु तो आने वाली है।

एक दिन सजी-धजी शहजादी आएगी। वह कौन-सी माला लेकर आएगी? चंदन की माला या कोई और माला लेकर आएगी? जो माला हमें बहुत प्रिय है वह कोई हमारे गले में माला पहनाए और कोई कैमरा वाला आ जाए तो कहेंगे भाई साहब, एक फोटो ले लो। पर ध्यान रखना, वह कनेर की

माला लेकर आएगी।

अब हम मूल बिंदु पर आते हैं गौतम स्वामी के पूछे जाने पर भगवान महावीर ने महाशुक्र विमानीय देव के संबंध में कहा- गौतम, जिस समय अवनी धरा पर धर्म चक्र आकाश में चल रहा था, देवों द्वारा खींचा जा रहा था, मुनि सुव्रत स्वामी धर्म देशना देते हुए ज्ञान वितरण करते हुए हस्तिनापुर पधारे। वहाँ पर गंगदत्त श्रेष्ठी था। उसने भगवान की देशना सुनी, वह बड़ा हर्षित हुआ। देशना सुनते ही उसका वैराग जग गया। उसी नगर में कार्तिक सेठ भी रहता था। गंगदत्त पुराना सेठ था, पुरानी पीढ़ियों का सेठ था जबकि कार्तिक सेठ अभी संपत्ति कमाया हुआ था। साख गंगदत्त की ज्यादा थी इसलिए कार्तिक सेठ उससे मन में ईर्ष्या करता था। गंगदत्त दीक्षित होकर मुनि बनता है और आराधना करके एक महीने की संलेखना पूर्वक कालधर्म को प्राप्त कर महाशुक्र विमान में देव बनता है। कार्तिक सेठ मरकर शक्रेंद्र के रूप में उत्पन्न होता है। पूर्व ईर्ष्या भाव, मत्सर भाव के कारण उसके मन में भय पैदा हो गया इसलिए उक्त देव के आने से पहले ही वह निकल गया। इस देव के सामने टिकने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी।

यहाँ विचार यह करना है कि यह ईर्ष्या भाव हमारी खुशहाली को छीन लेता है। हमारे चैन को छीन लेता है। जन्म-जन्मांतर में भी उसके भाव बने रहते हैं। शक्रेंद्र बहुत बड़ी हस्ती था, किंतु उक्त देव के सामने हस्ती नहीं रह पाया। वह भी भागा। इसलिए बाह्य ऋद्धि से महत्त्वपूर्ण आत्मिक ऋद्धि ही है।

इस जीवन में हम यदि सुखी नहीं हैं तो परभव में सुखी कैसे होंगे? हम जन्म-जन्मांतरों में दुखी होते ही रहेंगे। मत्सर भाव के कारण कार्तिक सेठ का जीव स्वयं इंद्र महाशुक्र विमानस्थ देव के तप को सहने में समर्थ नहीं हो पा रहा था तो हमारी क्या दशा होगी? आप ये बताओ कि जीवन में किसी से ईर्ष्या तो नहीं की? जब से समझ पकड़ी, जब से धन कमाना शुरू किया उनमें से एक भी दिन ऐसा गया हो कि किसी से ईर्ष्या न की हो?

(लोगों ने कहा कि हमने कोई ईर्ष्या नहीं की)

चाहे आपने किसी से ईर्ष्या नहीं की होगी, किसी के प्रति अन्यथा भाव पैदा नहीं हुए होंगे पर अमुक सेठ का नाम क्यों हो रहा है, उसके नाम की

कीर्ति क्यों हो रही है, लोग उसको ही पूछ रहे हैं, उसको ज्यादा पूछ रहे हैं, उससे बढ़कर मैंने पैसे दिए फिर भी लोग उसी को क्यों पूछते हैं, इस प्रकार से मन पीड़ित तो नहीं होता? ध्यान रखना, इन पीड़ाओं से कोई मतलब नहीं है, कोई सार्थकता नहीं है, फिर भी व्यक्ति इनको छोड़ नहीं पाते। ऐसी बातें बहुत बार सुनी हैं। हम यह भी अच्छी तरह से जानते हैं कि इनसे फायदा कुछ भी होने वाला नहीं है, हानि ही हानि है।

नमिराज के पास कौन आया हुआ था?

(लोगों ने कहा कि देव)

देव ही नहीं, देवों के पूज्य इंद्र। वे ब्राह्मण के रूप में उनके पास उपस्थित हुए।

उस समय नमिराज एक सामान्य आदमी ही थे। वे साधु नहीं बने थे। फिर भी देवराज शक्रेंद्र वहाँ पहुँचता है।

ज्ञाताधर्म कथा सूत्र में थावच्चा पुत्र का वर्णन आता है। वह दीक्षा लेने को तैयार हुआ तो उसकी माता कृष्ण वासुदेव के पास पहुँची और कहा कि मैं निष्क्रमण महोत्सव मनाना चाहती हूँ इसलिए छत्र-चँवर आदि राजकीय वस्तुएं प्रदान करें। कृष्ण वासुदेव ने कहा कि क्यों तो उसने कहा कि मेरा बेटा दीक्षा लेना चाहता है। तब कृष्ण वासुदेव ने कहा कि मैं स्वयं आता हूँ। कृष्ण वासुदेव चलकर उसके घर गए। वे उसके घर क्यों गए? वे यह जानना चाहते थे कि कहीं वह किसी भय के कारण तो दीक्षा नहीं ले रहा है। उन्होंने जाकर उससे पूछा कि तुम दीक्षा क्यों ले रहे हो, तुम्हारी दीक्षा का कारण कोई तुम्हारा शत्रु तो नहीं है। यदि कोई शत्रु हो तो मैं तुमको उससे छुटकारा दिलाऊँगा। उसने कहा कि भगवन् आपके हाथ बहुत लंबे हैं और आपकी ताकत अपरिमित है। आप मुझे मेरे शत्रु से मुक्त कर देंगे तो मैं दीक्षा नहीं लूँगा, फिर साधु नहीं बनूँगा। कृष्ण वासुदेव ने कहा कि तुम्हारा शत्रु कौन है, मेरे देखते ही वह हट जाएगा तो उसने कहा कि मेरे दो शत्रु हैं। एक बुढ़ापा और दूसरा मौत। इन दो से मुझे छुड़ा दो तो मैं सच्ची में साधु नहीं बनूँगा। आप इन दोनों से मुझे मुक्त कर दो। न बुढ़ापा मेरे पास आ सके और न मौत आए।

उसने जैसे ही ये दो बातें कहीं तो कृष्ण वासुदेव ने कहा कि वत्स!

मेरा सामर्थ्य नहीं है कि मैं तुमको मौत से बचा सकूँ। कृष्ण वासुदेव ने उस दीक्षार्थी से कहा कि मैं अन्य शत्रुओं से बचा सकता हूँ, किंतु मौत से बचाने की हिम्मत मेरी भी नहीं है। बहुत कीमती औषधियाँ आदमी को बुढ़ापे से बचा सकती हैं, किंतु मौत से नहीं। ऐसी कोई दवा नहीं है, ऐसी कोई चीज नहीं है जो आदमी को मौत से बचा सके। ऐसी दवा भारत या अमेरिका में या कहीं मिलेगी क्या?

(लोगों ने कहा कि ऐसी दवा कहीं नहीं मिलेगी)

मिल गई होती तो कोरोना में लोग मरते नहीं। कोरोना में बहुत लोग गए। लाखों लोग गए, किंतु हम तो सुरक्षित हैं। कब तब, कब तक सुरक्षित हो आप बताओ मुझे?

मौत की हवा का झोंका एक आएगा और जिंदगी का वृक्ष तेरा टूट जाएगा। कल मैंने बात बताई कि नमिराज ने क्या उत्तर दिया। एक मनोरम, सुंदर वृक्ष आँधी के धक्के से धड़ाम से नीचे गिर गया। हमारी जिंदगी का ये पेड़ किस समय, किस रूप में गिरेगा कोई नहीं जानता। टिकने वाला नहीं है। अर्थी पर निकलना है या जीवन का अर्थ निकालना है? एक तो लोग अर्थी पर निकालते हैं और कहते हैं राम नाम सत्य है और दूसरा होता है वरघोड़ा, जिसमें लोग कहते हैं जय जय नंदा, जय जय भद्दा। यह दीक्षा के समय निकलता है। अर्थी चढ़ना है या शिविका पर?

ब्यावर में नाना गुरु के भी एक नहीं दो चातुर्मास हुए। अन्यान्य महापुरुषों के भी चातुर्मास संपन्न हुए हैं। श्रद्धेय सेवंत मुनि जी म.सा. आदि का दीर्घ समय से विराजना हो रहा है। मेरे चातुर्मास में क्या नया हो जाएगा। जब तक हमारी विचारधारा नहीं बदल पाती, तब तक कितने ही चौमासे हो जाएं कोई फर्क पड़ने वाला नहीं।

कौवे को कितना ही सर्फ, साबुन से धो दें, महँगे से महँगे साबुन से धो दें तो क्या वह एकदम सफेद हंस बन जाएगा?

नहीं! वह काला ही रहेगा।

उसी प्रकार हमारा मन जब तक परिवर्तित नहीं होगा, विचारधाराओं में जब तक बदलाव नहीं होगा, तब तक कुछ भी सार्थक नहीं हो पाएगा। हम

संतों की चाह बहुत करते हैं, गाँव से कोई दीक्षार्थी दीक्षा लेता है तो वह सुहाता है, पर वही बात जब अपने घर पर आ जाती है, अपने घर से कोई सदस्य दीक्षित होना चाहता है तो वह बात ताल (मेल) नहीं खाती। लोग कहते हैं कि म.सा. धर्म की प्रभावना खूब करो, पर कोई घर का सदस्य दीक्षा लेने को तैयार होता है तो कहते हैं कि अभी रुको। आपका पहला विचार तो रोकने का ही होता है। जब वश की बात नहीं रहे तो कहना पड़ता है कि दीक्षा ले लो। होना तो यह चाहिए कि हम धन्य हैं कि हमारे घर में ऐसा कोई वीर जन्मा जो मोह को जीतने के लिए तैयार हुआ है।

सीमा पर सैनिक शहीद होते हैं तो उसके घरवालों को गौरव होता है। चाहे वह कमजोर परिवार का भी क्यों न हो। उनको गौरव होता है कि हमारे घर का आदमी सीमा पर शहीद हुआ।

जो व्यक्ति धर्म पर शहीद होने जा रहा है, मोह को जीतने के लिए जा रहा है, वीरता का काम करने जा रहा है उसको रोकने की कोशिश करेंगे कि दीक्षा तो बाद में हो जाएगी पहले तुम एमबीबीएस, इंजीनियरिंग, डिप्लोमा कर और पैसा कमा। नौकरी कराने के लिए तैयार रहते हैं, किंतु मालिक बनाने के लिए तैयार नहीं रहते। मालिक बनाने के लिए 56 इंच का कलेजा चाहिए। उसके बिना मालिक नहीं बना जा सकता। क्या चाहिए?

(लोगों ने कहा कि 56 इंच का सीना)

कलेजा 56 इंच का हो जाएगा तो आत्मा जागृत हो जायेगी। आपकी अगले चातुर्मास की भावना अच्छी है, किंतु आने वाले चातुर्मास का इंतजार मत करो। पहले मेरेपन की बुद्धि छोड़ दो। ऐसा करने पर जीवन छटा निखर जाएगी। बात समझ में आई या नहीं?

(कुछ लोग हँसने लगते हैं)

बात हँसने की नहीं है। इधर-उधर झाँकने की नहीं है। बात बहुत मर्म है। जो बीत गया उसको छोड़ दो। अभी जो अवसर हाथ में है उसको साध लें तो धन्य बन जाएंगे। जैसे चंदन वृक्षों को कोयला बनाकर बेचने वाले आदमी के पास एक पेड़ मौजूद रहा, वह एक पेड़ से धन्य बन गया वैसे ही हमारे पास एक अवसर अभी मौजूद है। एक अवसर अभी पड़ा है।

कौन-सा अवसर है?

वह अवसर है पुरुषार्थ का। अपने पुरुषार्थ को जगाना है। वह जग जाएगा तो सही दिशा में आगे बढ़ने में समर्थ होंगे। मुक्ति के चार सोपान बताए गए हैं। उन चार सोपानों में अधिकार हो जाना चाहिए। ऐसा लक्ष्य बने, ऐसी विचारधारा बने तो धन्य-धन्य बनेंगे।

महासती प्रशस्तिश्री की आज 29 की तपस्या है। वे मासखमण से एक कदम दूर हैं। उनका एक कदम आगे बढ़ा तो वह मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो जाएंगी। एक कदम अगार से अनगार बना देता है।

हे प्रभु मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊँ अणगार...

जिसके भीतर अनगार बनने की विचारधारा हो वही इस गीत को बोलेगा, बाकी मौन रहेंगे। मालूम तो पड़े कि सच्ची भावना किस-किसकी है? कौन-कौन बोलेगा? हाथ खड़े नहीं करना है। जो बोले उसके पास डायरी और पेन हो तो निकाले और यह लिख ले कि लास्ट डेट क्या है, अंतिम तारीख क्या है। यानी उसके बाद इस संसार में नहीं रहना। लिखो निहाल जी। क्या हो गया? अभी तो हाथ खड़े कर रहे थे अब क्या हो गया? डेट लिख लो। देखो ईमानदारी का तकाजा क्या है। धर्मस्थान में बैठे हो। मैंने पहले बता दिया कि जिनको इस संसार में नहीं रहना है, वही बोलेंगे। जिसकी भावना हो कि यह डेट लास्ट है उसके बाद मुझे इस संसार में नहीं रहना है, वह तारीख लिख ले। तारीख आउट मत करो, लिख लो ताकि भूले नहीं कि मैंने कहाँ सौदा किया। लिख लो कि कौन-कौन बोले।

(चेतन जी ने कहा कि भगवन्! तारीख की निश्चितता नहीं हो रही है)

यह हमारे पर छोड़ दो। तारीख मेरे पर छोड़ दो। मैं बता दूँगा।

(एक श्रावक ने कहा कि मरने से पहले मैं इस संसार को छोड़ दूँगा।)

ऐसा नहीं, अपनी तारीख फाइनल कर लो। कहना जितना आसान है, उतना लिखना आसान नहीं है।

आप लिख लें। सौ बोल्योड़ा और एक लिख्योड़ा। सौ बार मुँह से बोले हुए भूल जाते हैं और एक लिखा हुआ याद रह जाता है। लिखा हुआ जब-जब सामने आएगा तब-तब विचार बनेगा। एग्रीमेंट मौखिक नहीं,

लिखित करना होता है, किंतु एग्रीमेंट करने में संकुचित हो रहे हैं। अपने मन को कमजोर बना रहे हैं। ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि मनुष्य जन्म मिला है, धर्म तत्त्व को जाना है और धर्म पर विश्वास है। अतः एग्रीमेंट करेंगे तो आगे बढ़ेंगे। कदम आगे बढ़ाएंगे पीछे नहीं। कभी पीछे नहीं हटेंगे। ऐसा करेंगे तो जीवन धन्य होगा। इतना ही कहकर विराम।

17 अक्टूबर, 2021

साधुमार्गी पब्लिकेशन

2

आनंद का स्रोत : मूर्च्छा-त्याग

विमल जिन दीठा लोयण आज...

इसका अनुमान लगाना कठिन है कि किसकी चाह कैसी है, किंतु यह असंभव नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रकार की चाहत दो भागों में विभक्त की जा सकती है। एक भाग में संसार के पदार्थों की इच्छा, अभिलाषा को ग्रहण किया जा सकता है और दूसरे भाग में परमात्म भक्ति की भावना, आत्मरमण की भावना, शांति और समाधि की प्राप्ति आदि को रखा जा सकता है।

भौतिक चाह विभिन्न प्रकार की होती है। बहुत सारे साधन प्राप्त होने के बाद भी कुछ-न-कुछ कमी महसूस होती रहती है। व्यक्ति को लगता है कि पड़ोसी के पास मुझसे ज्यादा है। उसके पास मुझसे ज्यादा साधन है। व्यक्ति चाहता है कि उससे भी ज्यादा वस्तुएं मेरे पास होनी चाहिए।

50 वर्ष पहले भारत में कितने घरों में टीवी लगी थी?

(लोगों ने कहा- एक घर में भी टीवी नहीं थी)

कितने लोगों के हाथों में मोबाइल फोन था? कितने लोगों के पास कारें और गाड़ियाँ थीं?

(लोगों ने कहा- एक-दो व्यक्ति के पास होती थी)

50 वर्षों में गाड़ियों का प्रतिशत बढ़ा है या घटा?

(लोगों ने कहा- बढ़ा)

इसका क्या रिकॉर्ड है? किसी के पास है क्या रिकॉर्ड? रिकॉर्ड से हमें क्या लेना-देना। हम तो कारों में बैठते हैं। हमें तो कार चाहिए। हमारे पास तो कार होनी चाहिए। पहले किसी-किसी परिवार में गाड़ी होती थी। जिस परिवार में एक गाड़ी होती उसे माना जाता कि यह गाड़ीवाला है। अब तो कई घरों में

घर में जितने लोग हैं उनसे भी ज्यादा गाड़ियाँ हैं।

यह ध्यान रखिए कि जितनी सुविधा जुटाने में लगे हुए हैं वे सारी सुविधाएं कहीं-न-कहीं दुविधा में धकेलने वाली होंगी। यदि सुविधा चाहेंगे तो दुविधा को भी स्वीकार करना होगा। अत: ऐसा मत सोचें कि सुविधा ही सुविधा हो, दुविधा पास नहीं आए।

अभी मौसम कैसा है?

(लोगों ने कहा- बारिश का)

अगर ऐसा ही मौसम 12 महीने बना रहे तो फसल तैयार होगी क्या?

(लोगों ने कहा- नहीं होगी भगवन्)

फसल को ऐसा मौसम भी चाहिए और धूप वाला मौसम भी चाहिए। ये दोनों मौसम चाहिए। जैसे फसल को दोनों मौसम चाहिए वैसे ही जीवन सुख और दुख दोनों का मिश्रण रूप है, पर हम चाह रहे कि सुख-ही-सुख मिले, दुख न मिले। दुविधा न मिले। छोटी-मोटी सड़कों पर तो घाटियाँ आती ही हैं, नेशनल हाई-वे पर भी घाटी होती है। सिक्स लेन, फोर लेन पर भी घाटियाँ आती हैं। व्यक्ति नेशनल हाई-वे पर यात्रा करना चाहता है, किंतु घाटियों पर चढ़ना नहीं चाहता तो उसके लिए यात्रा करना कठिन है। यात्रा करने वाला जानता है कि कठिनाइयाँ आती हैं, आएंगी, घाटियाँ भी आएंगी। घाटियों पर चढ़ाई के समय गाड़ी का गियर बदलना पड़ता है। गियर बदल दिया तो गाड़ी ऊपर। गियर नहीं बदलें तो गाड़ी ऊपर तक नहीं जा पाएगी। इसी तरह सुविधा और दुविधा दोनों के साथ चलना है। बस मन मलिन न बने, यह ध्यान रखना है।

दुख-सुख दोनों साथ-साथ चलते हैं। हम रोज देखते हैं कि सूर्य उदय होता है और अस्त हो जाता है। सदा दिन बना रहे तो भी समस्या होगी और सदा रात रहे तो भी अच्छा नहीं लगेगा। कुदरत ने हमें समझने का मौका दिया कि रात को भी सुरक्षा कवच बना सकते हो अर्थात् जो भी तुम्हें प्राप्त हो रहा है उसको स्वीकार करो। सुविधा रूप हो या दुविधा रूप, दोनों ही स्वीकार करो। जो मिला उसे प्रसाद मान आनंद मनाओ। कम मिला तो कम, ज्यादा मिला तो ज्यादा।

एक मालिक ने अपने नौकर को बहुत सुविधाएं दे रखी थीं। एक बार उसके मन में विचार आया कि क्यों न नौकर की सुविधा में कुछ कटौती कर दी जाए। यह विचार कर उसने नौकर की सुविधा में कटौती कर दी। सुविधा में कटौती होने के बाद भी नौकर के मन में किसी तरह का बदलाव नहीं आया। उससे मालिक को आश्चर्य हुआ। मालिक ने नौकर से पूछा कि भाई मैंने पहले तुम्हें इतनी सुविधाएं दे रखी थीं, उसमें कटौती कर दी तो भी तू उतना खुश रहता है, तुम्हें पीड़ा नहीं हुई क्या बात है?

नौकर ने कहा कि मालिक जो आप दें उसमें हमें राजी रहना चाहिए। मुझे सुविधा भी आपने ही दी और कटौती भी आप ही कर रहे हो। उसमें मेरा कुछ नहीं है। जो दिया आपने ही दिया। आपने सुविधा दी तो मैंने उसमें जीवन जीना शुरू किया और आपने कटौती की तो मैंने जीवन को सीमित कर लिया।

भगवान महावीर के सिद्धांत भी कहते हैं कि इच्छाओं को सीमित कर। इच्छाएं बहुत हैं, साधन बहुत हैं, सामग्री बहुत हैं। इच्छा सबको प्राप्त करने के लिए दौड़ती रहेगी तो सुख नहीं मिलेगा। अपने आप को कंट्रोल कर सकेंगे तो सुखी हो जाएंगे।

आनंद श्रावक के पास क्या कमी थी?

(लोगों ने कहा– कुछ कमी नहीं थी भगवन्)

उसके पास धन की कमी थी क्या? परिवार की कमी थी क्या? मान-सम्मान की कमी थी क्या?

(लोगों ने कहा– किसी भी चीज की कमी नहीं थी)

उसके पास कुछ भी कमी नहीं थी फिर भी उसने जीवन को मर्यादित किया। उसने 26 बोलो की मर्यादा कर ली। 7वें व्रत में 15 कर्मादानों का त्याग कर लिया। उसने तय कर लिया कि उसे कितना कमाना है। आज हमारी दृष्टि हिंसा पर नहीं जा रही है, आरंभ पर नहीं जा रही कि मेरे पैसे किस-किस प्रकार के आरंभ से आ रहे हैं, कितने जीवों की हत्या हो रही है, कितने जीवों की घात हो रही है। हमारा ध्यान इस ओर नहीं जा रहा है कि मेरे पास एक रुपया या 100 रुपये आ रहे हैं तो वे कहाँ से आ रहे हैं। उसके पीछे कितने जीवों की घात हो रही है। जब इन पर ध्यान नहीं जायेगा तो मन में शांति कैसे रहेगी।

समाधि कैसे आएगी।

आनंद श्रावक, भगवान महावीर की वाणी सुनता है। सुनने के साथ वह विचार करता कि क्या मुझे साधु जीवन ले लेना चाहिए! उसने अपने आपको टटोलना शुरू किया। उसने सोचा कि अभी मेरा इतना सामर्थ्य नहीं है कि साधु जीवन ले लूं। मुझमें अभी उतनी क्षमता नहीं है, पर उचित जीवन तो साधु जीवन है, उसमें जीना है। साधु जैसे जीने की भूमिका अभी तक मेरे जीवन में निर्मित नहीं हो पाई। वह सोचता है कि वे लोग धन्य हैं जिन्होंने भगवान महावीर के पास आरंभ-परिग्रहों का त्याग कर अनगार धर्म को स्वीकार कर लिया। '**धन्ना णं ते**' अर्थात् वे लोग धन्य हैं, किंतु आज मेरा सामर्थ्य नहीं है कि मैं भी साधु जीवन स्वीकार कर लूं।

आनंद श्रावक, महावीर स्वामी के पास जाता है और कहता है कि भगवान वे लोग धन्य हैं, जिन्होंने आपके चरणों में सर्वस्व अर्पण कर साधु जीवन स्वीकार किया, किंतु मैं अभी उस प्रकार का सामर्थ्य अपने भीतर अनुभव नहीं कर पा रहा हूँ। उसने आगे कहा कि भगवान आपने श्रावक के लिए, गृहस्थ में रहते हुए, परिवार में रहते हुए जीवन जीने के लिए 12 व्रत बताए (पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत) उनको मैं स्वीकार करना चाहता हूँ। उसने स्वीकार किए। आनंद श्रावक ने सातवें व्रत का पालन करते हुए खाने-पीने की मर्यादा कर ली। उसने वस्त्र पहनने की मर्यादा कर ली। अपने जीवन को मर्यादित कर लिया। सीमित कर लिया। 14 नियम आज भी कई श्रावक लोग चितारते हैं। 14 नियम यानी 14 प्रकार के नियम केवल एक दिन हेतु लिए जाते हैं। जो बारह व्रतों में खुला रखा है उसको और सीमित करना। जैसे किसी ने मर्यादा ली कि मैं 100 हरी से ज्यादा नहीं खाऊँगा। पर रोज 100 वनस्पति नहीं खाई जाती, अत: आज एक दिन के लिए 2, 4, 5 आदि जितनी खुली रखना है उससे उपरांत (अधिक) का त्याग करना।

14 नियम में जूते-चप्पल आदि सब आते हैं। एक दिन के लिए अपना जीवन मर्यादित करके देखिए तो उस दिन अन्य दिनों की अपेक्षा बहुत शांति मिलेगी। बहुत समाधि मिलेगी। क्योंकि उस दिन इच्छाएं दौड़ने वाली नहीं हैं। आगे दरवाजा बंद है। दरवाजे पर ताला लगा हुआ है। अपनी इच्छाओं

पर ताला लगा लिया तो वे लाँघकर नहीं भाग सकेंगी।

बहुत छोटी-छोटी बातें हैं, किंतु इनमें दृष्टि बदल जाती है। दृष्टि बदल जाती है तो सब कुछ बदल जाता है। अब तक आनंद श्रावक की दृष्टि सब तरह की चीजें लेने के लिए तैयार थी, लालायित थी, किंतु उसने समझा तो चीजों का त्याग कर दिया। आनंद श्रावक ने जैसे ही बात समझी तो विचार किया कि जिंदगी बहुत सीमित पदार्थों से भी जी सकते हैं और कितना भी विस्तार कर दो उसका अंत नहीं है।

कई बार घरों में, शादी-विवाह के प्रसंगों पर दिखावा करते हैं। वहाँ आडंबर की बात होती है। कई शादियों में 100-150 तरह के खाद्य पदार्थ बने होते हैं। मेरे खयाल से उतना देखकर ही पेट भर जाएगा। उतना नहीं खा पाएंगे। डेढ़ सौ आइटम में कोई कितने आइटम खा सकता है? पूरे डेढ़ सौ आइटम खा लेना बहुत मुश्किल काम है। 150 आइटमों को देखने का ही टाइम कहाँ रहता है, खाना तो दूर की बात है। कई लोग तो खाना खाते ही नहीं हैं। शादी में आते हैं और लिफाफा पकड़ाकर चले जाते हैं। वह भी इसलिए कि उसके साथ व्यवहार है। आजकल तो ऑनलाइन ही पैसे भेज दिए जाते हैं। जाने की फुरसत किसके पास है। सिर्फ व्यवहार के पीछे आते हैं। बंधुओ! हम जितना अपने आपको सीमित करेंगे उतना ही दुख से मुक्त होंगे।

दुःख दोहग दूरे टल्या रे...

हमको विचार करना है कि आनंदघन जी को भावना में विमलनाथ भगवान के दर्शन हुए। उन्हें विचारों से दर्शन हुए। काल्पनिक रूप से दर्शन हुए। उनकी छवि को देखकर आनंदघन जी अभिभूत हो गए। प्रश्न खड़ा होता है कि हमको दीदार क्यों नहीं होता?

आपने टीवी पर महाभारत देखी होगी। उसमें कृष्ण वासुदेव अपना जो रूप अर्जुन को दिखाते हैं या अर्जुन उनका जो रूप देख पाया वैसा रूप हर कोई देख सका क्या?

(लोगों ने कहा- नहीं देख सका)

दुर्योधन भी उस परिवार का ही था। अर्जुन भी उसी परिवार का था। दोनों चचेरे भाई थे, किंतु दोनों की समझ में बड़ा अंतर था। अर्जुन, श्रीकृष्ण

को समझ रहा था पर दुर्योधन की आँखों पर धन का पट्टा लगा हुआ था। दुर्योधन की आँखों पर स्वार्थ का चश्मा लगा हुआ था। उससे आगे उसको कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। वह उससे आगे कुछ भी नहीं देख पा रहा था। वह देख रहा था कि कृष्ण वासुदेव समझौता कराने के लिए मेरे पास आए हैं। उसने श्रीकृष्ण वासुदेव को मात्र मीडिया समझ लिया था। वह सोचता था कि मुझे कोई समझौता नहीं करना। मैं एक इंच भी जमीन बिना युद्ध के नहीं दूंगा। वह समझौते की बात को बहुत हलके में ले रहा था। वह उसे कमजोरी समझ रहा था।

नीतिगत बात क्या थी? 12 वर्ष वनवास निकाल दे, एक वर्ष अज्ञातवास में निकाल दे उसके बाद कौरव, पांडवों को उनका राज्य लौटा देंगे, किंतु हाथ में आई हुई सत्ता को छोड़ना बहुत मुश्किल होता है। दुर्योधन ने समझ लिया कि मेरे पास सत्ता है। मेरे 100 भाई हैं। अनेक राजा भी मेरे साथ हैं। मेरे साथ इतने सारे अनुभवी हैं। उनके पास तो कोई नहीं है। पांडवों के साथ कौन है? वे पाँच भाई हैं। पाँच भाई मेरा क्या बिगाड़ेंगे?

पाँचों ने क्या किया?

सौ एक तरफ रह गए और पाँच भाई उन पर भारी पड़ गए। पाँच व्रतों को स्वीकार करेंगे तो 100 अव्रतों की आवश्यकता नहीं होगी। इंग्लिश में 'शो' का मतलब होता है दिखावा। यदि दिखावे में जाएंगे तो अपने पैर पर ही कुल्हाड़ी मारने जैसा काम करेंगे। थोड़ी देर के लिए सोचें कि आपको किसी ने शादी-विवाह में बुलाया तो आप वहाँ की चमक-दमक देखकर क्या सोचते हैं। उसके मुँह पर बोलने को बोल देते हैं कि प्रोग्राम बहुत अच्छा हुआ, किंतु वहाँ से बाहर निकलते ही बातें करनी शुरू तो नहीं कर देते हैं कि पैसों को उड़ा रहा है। फालतू में पैसा बहा रहा है। पैसों का प्रदर्शन हो रहा है।

(एक श्रावक ने कहा कि लोग ऐसे ही बोलते हैं भगवन्)

क्या पता आप भी बाहर जाकर ऐसा ही बोलते हों। आप भी बोलते होंगे इसलिए आपको मालूम है। देखो यही बात होती है सच बात उगलवाने की। मैंने बात की और आपने बोल दिया कि लोग ऐसे ही बोलते हैं। सच बुलवाने का तरीका होना चाहिए। यहाँ कोई खोज नहीं चल रही है, किंतु बहुत

कम लोग होंगे जो ऐसी बात नहीं करते। आदमी सामने प्रशंसा करता है पर बाद में कहता है कि पैसे को उड़ा दिया। फिर ऐसे लोगों को बुलाने से क्या फायदा?

'देखा देखी साधे जोग, छीजे काया बधे रोग'

लोग देखा-देखी काम करते हैं। सोचते हैं कि अमुक ने किया तो मैं पीछे कैसे रहूँ। सोचते हैं कि उसने शादी-विवाह में ऐसा-ऐसा किया तो मैं भी उससे कम नहीं करूंगा। यदि मैंने कम किया तो मेरा नाम नहीं रहेगा। मेरा स्टेटस खत्म हो जाएगा। मैं उससे ज्यादा नहीं कर सकता तो कम तो नहीं करूंगा। उसके बराबर तो करूँ। यदि मेरे पास साधन नहीं है तो क्या हुआ, मैं पैसा उधार लेकर लगा लूंगा पर उससे पीछे नहीं रहूंगा।

एक जमाने में आपके मेवाड़ में मृत्युभोज हुआ करता था। देवरिया के पास कितने गाँव हैं बताओ?

(कुछ लोग कहते हैं- पाँच-छह गाँव भगवन्)

शायद आप भूल रहे हो! देवरिया के आस-पास 15 गाँव हैं। जब मृत्युभोज होता था तो उन सभी गाँव के लोगों को जिमाना पड़ता था। पंचों का दबाव होता था कि मृत्युभोज करना-ही-करना है। अमीर-गरीब सबको करना होता था। गरीब को मकान गिरवी रखना पड़े तो पड़े, किंतु मृत्युभोज तो करना ही पड़ता था। माँ मरी तो मरी मन्ने और मार गई। गरीब व्यक्ति जब मकान गिरवी रखकर मृत्युभोज करता तो वह अपने पैरों पर खड़े होने में समर्थ नहीं हो पाता था। मृत्युभोज बंद करने का प्रयत्न हुआ तो बंद हुआ या नहीं हुआ? उनमें सुधार हुआ या नहीं हुआ?

(लोगों ने कहा- हुआ भगवन्)

किसी-किसी गाँव में रह गया होगा, किंतु बहुत सुधार हो गया। ऐसे बहुत सारे लोग हैं जो मृत्युभोज नहीं करते। कई लोग ऐसा भी सोचते हैं कि मैंने यह सब नहीं किया तो लोग क्या कहेंगे। वैसे ही अभी कोरोना काल में शादी-विवाह में भी लोगों को बुलाना कम हो गया था। पहले तो सरकार ने 50 की संख्या तय की, उसके बाद 11 लोगों को ही शामिल होने की गाइडलाइन दी। पाँच लोग इधर के और पाँच लोग उधर के व एक ब्राह्मण। 11 लोगों से ही शादियाँ हो गईं। सीमित साधनों में भी शादियाँ हो सकती हैं। अधिक चाहे

जितना कर लो, किंतु यह समाज के लिए हितकर नहीं होता। परिवार के लिए हितकर नहीं होता। क्या हो सकता है हितकर? सही नियम यदि बनाए जाते हैं तो समाज और परिवार दोनों के लिए लाभकारी हो सकता है।

कुछ वर्षों पूर्व उत्क्रांति की बात कही गई थी। बहुत-से गाँव उत्क्रांति वाले हो गये। ब्यावर भी उत्क्रांति वाला हो गया क्या?

(लोगों ने कहा- सब हो गए। एक भी बाकी नहीं है भगवन्)

बहुत अच्छी बात है। मेरा पहला स्टेप यह था कि पहले अपने घर का सुधार होना चाहिए। जिनका अपना घर नहीं सुधरता है वे दूसरे घरों की पंचायती करते हैं तो लोग कहते हैं कि पहले अपने घर की हालत देख लो, फिर हमको कहना। पहले साधुमार्गी यह बात अपने घर में लागू करें। एक भी परिवार बचा हुआ नहीं रहना चाहिए। अभी तक सर्वांश रूप से साधुमार्गी परिवारों में भी उत्क्रांति नहीं हो पाई है। भले ही कोरोना से ऐसा माहौल बन गया, किंतु अभी भी भावना चल रही होगी कि हमारे लड़के की शादी ढंग से होती। हमारी लड़की की शादी ढंग से होती। उससे होना क्या है? चाहे एक करोड़ खर्च करो या सौ करोड़, घर में तो बहू एक ही आएगी। जिसने लाख रुपये खर्च किए उसके भी घर में एक ही बहू आएगी और जिसने करोड़ों, अरबों रुपये खर्च किए उसके घर में भी बहू एक ही आएगी। फिर दिखावा करने से क्या मिला? दिखावा से हानि किसकी हुई?

(लोगों ने कहा- उसकी स्वयं की हानि हुई)

स्वयं की नहीं, समाज की हानि हुई। समाज में उसका एक संदेश गया।

मैं जिस समय बेंगलुरू के आस-पास विचरण कर रहा था, उस समय वहाँ पर एक सेठ के लड़के की शादी हुई। उस सेठ ने दिखावा नहीं किया। ज्यादा खर्च नहीं किया। उस सेठ ने अपने लड़के की शादी के साथ 80 शादियाँ और करा दीं। एक दंपति दर्शनार्थ आया, जो साधुमार्गी परिवार से था। उसकी शादी के 25 वर्ष हो रहे थे। मैंने कहा कि 25 वर्ष पूरे होने की खुशी में आडंबर करेंगे तो बहुत से जीवों की घात होगी। उन्होंने कहा, कुछ भी नहीं करेंगे। किसी जीव की घात नहीं करेंगे भगवन्। उन्होंने कहा कि इस प्रसंग से हम सौ

गायों का पालन करना चाहते हैं। सौ गायों की सेवा करना चाहते हैं। गायों की सेवा करने से उनकी शादी की पचीसवीं वर्षगाँठ मनानी पूर्ण हुई या नहीं?

(लोगों ने कहा- हुई भगवन्)

कितने जीवों की हिंसा करने से बचे वे दोनों?

(लोगों ने कहा- जीवों को अभयदान मिल गया)

वह बात ठीक है, किंतु उनका पालन-पोषण स्वयं करना या उतना पैसा गौशालाओं में देना? पैसा गौशालाओं में देने मात्र से गायें बचने वाली नहीं हैं। स्वयं अपने पास रखकर उनकी देख-रेख करेंगे, उनकी सेवा करेंगे तो जो सुखद अनुभव होगा, वह पैसा देने से नहीं होगा। जो पशु की सुरक्षा करने का दायित्व ले लेता है उसको दूध मिल जाता है और गाय की सेवा हो जाती है। गाय का दूध चाहिए, रोटी लूखी नहीं चलती, छाछ, श्रीखंड, दही, दूध चाहिए, किंतु उनकी सेवा कौन करे। उनकी सेवा के लिए लोगों को समय कहाँ है। घर में गाय रखने के लिए फुरसत नहीं है। गाय की सेवा तो करनी पड़ती है। सेवा के बदले वह दूध, दही और घी देती है।

भारत के एक-एक घर में एक-एक गाय की सेवा करनी शुरू कर दें, उनको घर में रखना शुरू कर दें तो कत्लखाने शायद नहीं रहेंगे। सब कत्लखाने शायद बंद हो जाएं। जब बाहर गायें मिलेंगी ही नहीं तो कत्लखानों में पहुँचेंगी कैसे।

प्राप्त जानकारी के अनुसार भारत की लगभग 15 सौ गौ प्रजातियाँ खत्म हो चुकी हैं। गायें भले कम हो गई हों, किंतु हमको जितने दूध की आवश्यकता होती है उतना दूध बाजार में मिल जाता है। सौ लीटर दूध चाहिए तो मिल जाता है। सौ किलोग्राम घी चाहिए तो वह भी मिल जाता है। जब चाहिए तब मिल जाता है। हाथों-हाथ मिल जाता है। इतना घी कहाँ से आता है? लोग नाम लेकर कहते हैं कि ये तो सरस का घी है, देशी गाय का घी है। कैसा भी है पर हमने कभी सोचा कि इतना घी और दूध कहाँ से मिल रहा है!

लगभग 20 साल पहले मैंने जयपुर में चातुर्मास किया था। उस चातुर्मास में लोगों ने बताया कि दिल्ली के दस व्यक्तियों में से एक व्यक्ति सिंथेटिक दूध पीता है। दस व्यक्तियों में से एक व्यक्ति सिंथेटिक दूध पीने वाला

निकला। ये बात आज की नहीं है। आज से बीस साल पहले की है। अब यह आँकड़ा बढ़ा या घटा?

(लोगों ने कहा– बढ़ा है। वहाँ की स्थिति खराब हुई है)

एक खबर शायद अखबार में आई थी कि एक दूधवाले का एक्सीडेंट हो गया। उसकी दूध की बरनी (टंकी) गिर गई। दूध सड़क पर बह गया। वहाँ लोगों ने देखा कि दूध की बरनी (टंकी) में कपड़े में बाँधकर केंचुए डाले हुए थे। कहा जाता है कि केंचुए की लार दूध को गाढ़ा करती है। उस दूध वाले ने केंचुए कपड़े में बाँधकर दूध में डाल दिए। केंचुए के शरीर से हुआ स्राव दूध में मिलने से दूध गाढ़ा हो जाता है।

मैंने भदेसर के एक भाई से सुना कि उसने दूध बेचनेवाले से दूध लिया तो दूध में से मेढकी उछलकर बाहर आ गई। वह मेढकी कहाँ से आई?

(लोगों ने कहा कि वह उसके बरनी में थी)

उसने रास्ते में बहते नाले से दूध में पानी मिलाया तो उसके साथ मेढकी भी दूध में आ गई। ऐसा दूध हम पी रहे हैं। घर में कम–से–कम एक गाय भी होगी तो शुद्ध दूध मिलेगा या नहीं?

नाना गुरु का चातुर्मास अजमेर में था। उस समय सुनने में आया कि डेयरी फार्म में काम करने वाला एक कर्मचारी मिल नहीं रहा है। दो या तीन दिन बाद मालूम पड़ा कि उसकी मृत्यु हो गई थी। लोगों ने देखा तो उसके शरीर पर मांस भी नहीं था। यहाँ तक कि उसकी हड्डियाँ भी गल गईं थीं।

लगभग 30–35 साल पहले की बात है जब गुजरात सरकार की तरफ से डेयरी के घी में 13 प्रतिशत चर्बी मिलाना अनुमन्य था। अब विचार करें आप कौन–सा घी खा रहे हैं, सरस का घी खा रहे हैं या नीरस? हमको पता नहीं है। हमने घी की खोजबीन की क्या?

(लोगों ने कहा– नहीं करते भगवन्)

हमें घी मिलना चाहिए। घी का नाम होना चाहिए। घी की छाप लगी हुई हो। कितने लोगों ने घी की जाँच की, लेबोरेट्री में जाँच किसने की? कुछ विरले होते हैं जो जाँच कराते हैं। बाकी तो जो मिले खा लेते हैं। ये सारी स्थितियाँ इसलिए हैं क्योंकि हम जागरूक नहीं हैं। हम लोग पढ़–लिख जरूर

लिए लेकिन जीवनचर्या के प्रति जो जागरूकता होनी चाहिए, वह नहीं है। इस कारण से धाँधली होती रहती है।

'तीर्थंकर जैन' पत्रिका के संपादक नेमीचंद जैन का एक पत्र आचार्य गुरुदेव की मौजूदगी में प्राप्त हुआ था। उसमें उन्होंने बहुत सारी चीजों के नाम लिखे थे कि ये खाद्य नहीं हैं। आचार्यश्री ने उनको उत्तर लिखवाया कि डॉक्टर साहब के कहने से काम चलने वाला नहीं है, इन चीजों के विकल्प क्या हैं। अर्थात् मात्र यह कहने से काम नहीं चलेगा कि इन चीजों का उपयोग नहीं करना, अपितु उसका विकल्प भी होना चाहिए कि इनके स्थान पर आप इन पदार्थों का सेवन कर सकते हैं। विकल्प मिलता है तो आदमी खाना छोड़ सकता है। यदि विकल्प नहीं है तो कहेगा कि क्या करूँ। अत: विकल्प जरूरी है।

हमने बता दिया कि सामायिक में पूजनी, मुँहपत्ती और आसन आदि होना चाहिए। उसमें इधर-उधर की बातें नहीं करनी, पूरा ध्यान सामायिक में होना चाहिए। उसमें आत्मा और परमात्मा से साक्षात्कार का प्रयत्न किया जाए। उससे मिलने का प्रयत्न किया जाए। उक्त प्रकार से जीवन को साधने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। सामायिक करने से भीतर समभाव की भावना बढ़े। व्यापारी, व्यापार में धन किसलिए लगाता है?

(लोगों ने कहा कि वह मुनाफा कमाने के लिए धन लगाता है।

वैसे ही जो सामायिक करते हैं उसमें 48 मिनट लगते हैं। उपलक्षण से एक घंटा का समय मान लें क्योंकि सामायिक लेने व पारणे की विधि का समय 48 मिनट में शामिल नहीं है। तदनुसार सामायिक में लगभग एक घंटा लग जाता है। आपने एक घंटा समय लगाया, एक घंटा की कीमत क्या होनी चाहिए? यदि अपने दुकान, ऑफिस में जाते तो एक घंटा में कितना कमा लेते? एक घंटा में कितना लाभ कमा लेते? सामायिक में यदि एक घंटा में कुछ नहीं मिला तो उसे क्यों करना? जब आपको कुछ नहीं मिला तो यहाँ आने से क्या फायदा? मिला क्या? इसका सामान्य अहसास होना चाहिए। जैसे एक रात को करोड़ रुपये का मुनाफा हुआ मालूम पड़ जाता है, वैसे ही सामायिक से होने वाली आय का अनुभव होना चाहिए।

प्रतिवर्ष धनाढ्य लोगों की रैंक आती है। हम भी चाहते तो होंगे कि हमारा नाम भी उस लिस्ट में आए। हमने सामायिक की तो धार्मिक क्षेत्र में हमारी रैंक कितनी बढ़ी? हमें एक घंटा का क्या बेनिफिट मिला? उस एक घंटा में क्या मिला? जीवन में समाधि आयी या नहीं? तनाव हलका पड़ा या नहीं?

दो धनाढ्य मित्रों ने नया-नया पैसा कमाया। दोनों मित्रों ने कहा कि चलो होटल चलते हैं। घर में खाना अच्छा मिलता है लेकिन उनके पास पैसे आये तो मन में फितूर भी आ गया।

एक बात बताता हूँ। हम मध्यप्रदेश में विहार कर रहे थे। सन् 1997 की बात है। चलते-चलते धूप बढ़ गई। हम लोग एक बस स्टैंड पर जाकर बैठ गए। गाँव के कुछ लोग आकर वहाँ खड़े हो गए। हमने उनको उपदेश दिया कि गुटखा, तंबाकू, बीड़ी, सिगरेट छोड़ दो। ये सेहत के लिए खराब है। फालतू में पैसा खर्च होता है।

एक भाई ने जवाब दिया कि महाराज मौज-शौक के लिए ही तो पैसे कमा रहे हैं। बीड़ी, सिगरेट पीते हैं और मौज-मजा करते हैं।

उस समय मन में विचार आया कि पैसा कितना हराम सिखा देता है। अभी इनको पता नहीं लग रहा है पर जब कैंसर जैसी बीमारी हो जाएगी तब मालूम पड़ेगा कि पैसे पड़े-पड़े क्या करेंगे। बीमारी हो गई तो डॉक्टर के पास जाना पड़ेगा, मेडिकल वाले के पास जाना होगा, सोनोग्राफी, एक्स-रे, सी.टी. स्कैन आदि कराना होगा। इनमें पैसा खर्च होता है। पहले पैसा खर्च करके बीमारी मोल लेना, बाद में इलाज के लिए पैसा खर्च करना, यही समझ का फेर है। सादगी से जीवन जीएं तो बीमारी आए ही क्यों!

बीमारी सेठों को ज्यादा होती है या गाँव वालों को? सर्वे करो तो मालूम पड़ेगा कि ज्यादा बीमारी किसको होती है।

जो सादा जीवन जीता है, वह ज्यादा शक्तिशाली होता है। जो नशे की जिंदगी जीता है या बाहर का खाना ज्यादा खाता है उसका शरीर अपेक्षाकृत कमजोर होता है। रूखा-सूखा खाकर शरीर से मेहनत करनेवाले की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती जाती है। जैसे डायनेमो चलने से बैटरी चार्ज होती रहती है, वैसे ही यदि सही काम करेंगे, सक्रिय रहेंगे, मेहनत करेंगे तो शरीर

मजबूत रहेगा। उसमें सहसा बीमारियाँ पैदा नहीं होंगी। कई लोग रोगी को हाथ लगाते हुए डरते हैं कि कहीं उनको इंफेक्शन न हो जाए। इंफेक्शन उसको होता है जो शरीर से श्रम नहीं करते।

अपने हाथ से काम करनेवाले कितने लोग हैं?

बड़े-बड़े शहरों में बिना नौकरों के काम नहीं चलता है। बरतन माँजने के लिए नौकर, झाड़ू-पोछा लगाने के लिए नौकर चाहिए। कपड़े धोने के लिए अलग नौकर और रसोई बनाने के लिए भी नौकर चाहिए। अब खाना खाने के लिए भी नौकर रखना है क्या?

(लोगों ने कहा- नहीं भगवन्)

मैं बात बता रहा था दो दोस्तों की। उन दोस्तों की जो नये-नये धनाढ्य हुए थे। अभी-अभी पैसे कमाये थे। उनके पास खूब पैसे थे। उन्होंने सोचा कि होटल चलें। वह भी ऐसे होटल में, जिसमें लोगों को मालूम पड़े कि ये अमुक होटल में जाते हैं। ब्यावर में ऐसा कौन-सा होटल है?

(सभी लोग चुप रहते हैं)

बोलना नहीं, नहीं तो मालूम हो जाएगा कि आप किस होटल में जाते हैं। जिस गाँव जाना नहीं उस गाँव का रास्ता क्यों पूछना?

खैर, वे दोनों एक नामी-गिरामी होटल में चले गए। उनके पास मेन्यू लाकर रखा गया। उन्होंने बता दिया कि क्या-क्या लाना है। उनकी बताई चीजें आ गईं। खाना खाने के बाद गर्म पानी और नीबू आया।

(कुछ लोग हँसने लगते हैं)

आपको हँसी क्यों आ रही है। चलो हँस लो। बाद में मत हँसना। आपने कभी शिकंजी पी क्या?

(लोगों ने कहा- खूब पी है)

वे बेचारे पहले कभी होटल में गए नहीं थे। गर्म पानी और नीबू देखकर वे दुविधा में पड़ गये। उन्होंने सोचा कि शिकंजी के लिए दिया होगा। उन्होंने गर्म पानी में नीबू को निचोड़ा और पीना शुरू कर दिया। यह देखकर वहाँ के वेटरों की हँसी छूट गई। वे हँसते-हँसते भीतर भागे। वे बेचारे ठगे से गए। ऐसी कुछ स्थितियाँ हो जाती हैं कि पैसा हो जाता है पर मालूम नहीं होता

कि उसका उपयोग कैसे करें।

चलते हैं नमिराज की तरफ। नमिराज बगीचे में बैठे हुए थे। उनके सामने कौन था?

(लोगों ने कहा– ब्राह्मण के रूप में शक्रेन्द्र था)

उसने प्रश्न किया कि मिथिला में किसलिए कोलाहल मचा हुआ है? तो नमिराज ने उसका जवाब दे दिया।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय, जय, जय, जयकार...

शक्रेन्द्र, नमिराज की परीक्षा लेना चाह रहा था कि देखें वैराग्य की चाशनी तीन तार की हुई या कच्ची है। चाशनी कच्ची होगी तो उसमें बनी मिठाइयाँ ज्यादा दिन तक नहीं चलेंगी। वे थोड़े दिन में सड़ जाएंगी। कड़क चाशनी या तीन तार वाली चाशनी से बनी मिठाइयाँ जल्दी से खराब नहीं होतीं। उनके वैराग्य की चाशनी कैसी है, यह जानने के लिए उसने प्रश्न किया था। उनका ममत्व भाव घटा या नहीं, यह जानने के लिए उसने दूसरा प्रश्न किया कि नर देव आप क्षत्रिय हैं, क्षत्रिय रक्षा धर्म को महत्त्व देते हैं। आपकी दीक्षा लेने की भावना अच्छी है किंतु देखिए आपके आँखों के समक्ष मिथिला जल रही है, पहले उसकी रक्षा करें। ऐसा कहते हुए उसने इस प्रकार का दृश्य दिखाया जैसे आग और हवा मिलकर नृत्य कर रहे हों। धुएं के गुबार उठ रहे हों, ज्वालाएं धधक रही हों। मिथिला धू-धू करके जल रही हो। ऐसा दृश्य उपस्थित कर शक्रेन्द्र ने कहा कि देखो राजन आपकी मिथिला जल रही है, प्रासाद जल रहे हैं। आपने जिस मिथिला नगरी को पनपाया और जिस मिथिला नगरी का नाम रोशन किया, नए-नए प्रासाद बनवाए, किले बनवाए, वे सारे धू-धू कर जल रहे हैं, ऐसी स्थिति में आपका ध्यान उधर क्यों नहीं जा रहा है। आप रक्षा धर्म के महत्त्व को समझते हो इसलिए उनकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है।

शक्रेन्द्र ने कहा कि हे राजन! आप इनकी रक्षा करें। इनकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है क्योंकि वह आपका है और जो अपना होता है, उसकी रक्षा करनी होती है। जैसे ज्ञान अपना है वैसे ही भवन आपका अपना है इसलिए उसकी रक्षा की जानी चाहिए।

इसका समाधान नमिराज क्या देंगे और उसके बाद शक्रेन्द्र का कितना समाधान होता है, ये सारी बातें समय के साथ सुन पाएंगे।

महासती प्रशस्तिश्री म.सा. की आज 30 की तपस्या है। कल उनको पच्चक्खाण करा दिया था। आज वे मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो गईं। और भी संत–सतियों की तपस्या चल रही है। हम भी इनसे प्रेरणा लें और अपनी आत्मा को जागृत कर अपनी चाहत को देखें कि हमारी अभिलाषा क्या है, इच्छा क्या है। देखें कि धन–वैभव बढ़ाना हमारा लक्ष्य है या आत्मकल्याण करना! अपने मन में चिंतन करें, मनन करें कि मनुष्य जन्म मिलने के साथ जिनेश्वर देवों का धर्म कब मिले। जो अवसर मिला है उसका लाभ उठाना चाहिए। ऐसे अवसर का लाभ उठाएंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहकर विराम।

18 अक्टूबर, 2021

साधुमार्गी पब्लिकेशन
साधुमार्गी पब्लिकेशन

3

साधना मन को स्वस्थ बनाए

धार तलवार नी सोहेली-दोहेली...

तलवार की धार पर चलना बहुत दुरूह है, बहुत कठिन है किंतु आनंदघन जी परमात्मा की स्तुति करते हुए कहते हैं कि तलवार की धार पर चलना उतना कठिन नहीं है, जितना कठिन तीर्थंकर देवों के आज्ञा की आराधना करना है। वे कहते हैं कि तलवार की धार पर चलना आसान है, लेकिन तीर्थंकर देवों की चरण सेवा करना दुष्कर है, बहुत कठिन है।

हमने आज यह मान लिया है कि चरण सेवा बहुत आसान है। हम सोच लेते हैं कि थोड़ा-सा पैर दबा दिया और हो गई चरण सेवा, किंतु सेवा करना बहुत दुष्कर है। पाँव दबा देना, शारीरिक सेवा करना अलग बात है, किंतु तीर्थंकर देवों के आज्ञा की आराधना करना, उनकी आज्ञा पर चलना बहुत कठिन है। सामायिक, पौषध आदि धार्मिक क्रिया और साधु जीवन संबंधी क्रियाएं कर लेना, तपस्या कर लेना आसान है।

श्री प्रशस्तिश्री जी म.सा. क्या कर रही हैं?

(लोगों ने कहा कि मासखमण की तपस्या)

तीन, सवा तीन साल से उनकी एकांतर की तपस्या चल रही है। क्या कठिनाई आई बताओ? कोई भी कार्य एकांत रूप से बहुत कठिन भी नहीं होता, न बहुत आसान ही। करनेवाले के मन पर निर्भर है कि उसको वह कितना आसान या कितना कठिन लगा।

दो व्यक्ति हैं। दोनों का कार्य समान है। एकसमान कार्य होने पर भी एक व्यक्ति दुखी होता है और दूसरा व्यक्ति प्रफुल्लित होता है। काम दोनों का एकसमान है, किंतु एक दुखी मन से कर रहा है और दूसरा प्रफुल्लित मन से कर

रहा है।

पहला व्यक्ति सोचता है कि मेरे पर काम आ पड़ा है तो मुझे करना ही पड़ेगा। इसमें लाचारी की झलक है, जबकि दूसरा उस काम को लेकर प्रफुल्लित होता है कि मुझे काम करने का मौका मिला है, अवसर प्राप्त हुआ है। काम दोनों का समान ही है। काम पोछा लगाने का हो या कपड़े धोने का, झाड़ू निकालने का हो या रसोई बनाने का, एक व्यक्ति के लिए वह काम कठिन है, पर दूसरे व्यक्ति के लिए आसान है। एक व्यक्ति समझता है कि काम करना पड़ रहा है और दूसरा सोचता है कि मुझे यह मौका मिला है। ऐसा मौका ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। ऐसा मौका बार-बार नहीं मिलता। ऐसा मौका, ऐसा अवसर मिलना बहुत दुरूह है, कठिन है। मैं धन्य हुआ कि मुझे अवसर मिला है।

मूल बात क्रिया की नहीं, भावों की है। मूल बात यह है कि कितने भावों से, कितने लीन होकर और किस लगन से उस कार्य को कर रहे हैं। झाड़ू लगाने का काम भी छोटा नहीं है। वह भी बहुत महत्त्व रखता है।

आचार्य पूज्य श्री श्रीलाल जी म.सा. जिस जगह पर विराजते थे, स्वयं ही उस स्थान का काजा* लेते थे। शास्त्रकारों ने कचरा लेने का काम गीतार्थ का बताया। गीतार्थ का अर्थ मैंने पहले भी बताया था कि जो हानि-लाभ को समझने वाला है। गीतार्थ का मतलब है उत्सर्ग, अपवाद, कार्य-अकार्य को जाननेवाला। यह जाननेवाला कि क्या करने से हानि होगी और क्या नहीं करने से हानि होगी। इसी प्रकार क्या करने से लाभ होगा और क्या नहीं करने से लाभ होगा।

कचरा लेते हुए कर्मों का बंध भी हो सकता है और कचरा निकालते हुए द्वंद्व से बचा भी जा सकता है। झाड़ू को झटका लगाने में मजा आता है तो वहाँ कर्मों का बंध होने लगेगा। ऐसा करनेवाला जीवों को वेदना दे रहा होता है। इससे विपरीत जो यतना से काजा लेता है, सावधानी से कचरा निकालता है वह सोचता है कि कहीं मकड़ी का जाला न टूट जाए, कचरे के साथ चींटियाँ न आ जाएं, मकोड़े बीच में न आ जाएं। ऐसा करनेवाला यतना से काम कर रहा है। साधुओं का रजोहरण कोमल होता है, किंतु कोमल होते हुए भी उसके

* काजा लेना = कचरा लेना/कचरा निकालना

स्पर्श से किसी की भी विराधना नहीं होनी चाहिए।

हम यह सोचें कि यह कार्य गीतार्थ के लिए क्यों बताया गया! इस मामले में आज के श्रावक प्रायः चूक करते हैं। वे कचरा निकालने का काम प्रायः नौकरों पर छोड़ देते हैं। नौकर यतना को कितना जानते हैं? वे कार्य यतना से करेंगे या अयतना से, इसका विचार प्रायः नहीं किया जाता।

देशनोक के हीरालाल जी डोसी थे। पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. के समय वे धर्मस्थान का काजा स्वयं लेते थे। वह श्रावकों के बैठने के स्थान पर सुबह जल्दी पहुँच जाते थे। वहाँ डांडिये पड़े रहते थे। उन्हीं से वे काजा लेते थे। ऐसा मैंने सुना है कि वे 'पेड' व्यक्ति नहीं थे। श्रावक थे, संपन्न थे, यतना को जाननेवाले थे।

वर्तमान में स्थानक तो बड़े-बड़े हो गए, पर यतना लापता हो रही है। कई स्थानों की सफाई तो कई-कई दिनों तक नहीं होती। कुछ स्थानकों की साफ-सफाई आधी-अधूरी होती है। वह भी प्रायः कर्मचारियों द्वारा।

धर्मचारी नहीं करते, कर्मचारी करते हैं। धर्मचारी को कचरे निकालने में शर्म आती होगी।

अंतगडदशा सूत्र आपने कितनी बार सुना होगा। 20, 30, 50 बार तो सुन लिया होगा। बताओ क्या सुना? हमें भी मालूम पड़े कि आप कितना सुनते हो, क्या-क्या सुनते हो। सुन भी रहे हो या नहीं। सुन रहे हो हमें भी मालूम तो पड़ना चाहिए।

बताओ कृष्ण वासुदेव जब पौषधशाला में गए तो उनके साथ कितने लोग थे सफाई करने के लिए?

यहाँ जवाहर भवन में कौन करता है सफाई? कृष्ण वासुदेव तीन खंड के अधिपति थे। उनकी एक आवाज के साथ राजा-राणा, सेठ-साहूकार खड़े हो जाते थे। वे लोग अपने आपको धन्य समझते थे कि कृष्ण वासुदेव ने हमें कार्य सौंपा, किंतु पौषधशाला में कृष्ण वासुदेव अकेले गए। वहाँ जाकर खुद भूमि की प्रतिलेखना करते हैं, परिमार्जन करते हैं। इससे अनुमान लगा सकते हैं कि काजा लेने का काम कितना महत्त्वपूर्ण है पर हमने इसको समझ लिया कि यह कार्य गैरों का है, नासमझों का है इसलिए खुद कचरा नहीं निकालते। दूसरों

को पैसे देकर काम करा लेते हैं। जिससे काम कराते हैं, वह कचरा तो निकालता है, किंतु यह नहीं देखता कि कचरे के साथ कितने जीवों की विराधना हो रही है। उसको तो पैसों से मतलब है। वह पैसे के हिसाब से कचरा निकालेगा।

कानोड़ में आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी का चतुर्मास चल रहा था। एक बार यथाप्रसंग यतना की बात कही गई। उससे प्रेरित होकर एक श्रावक जी ने सबसे पहले लाइब्रेरी का सुधार करना शुरू किया। उन्होंने पुस्तकों को व्यवस्थित किया। उसके बाद पूरे स्थानक की प्रतिलेखना करने का लक्ष्य बनाया।

ज्ञानावरणीय कर्म का बंध किससे होता है और निर्जरा किससे होती है?

अभी दो-चार दिन पहले हमने सुना था कि मध्यप्रदेश में एक ट्रक में बहुत सारे बकरों को ले जाया जा रहा था। बकरे इतने ठूँस-ठूँसकर भरे गए थे कि उनमें से 17 बकरे गाड़ी में ही मर गए। प्राय: स्थानकों में किताबें भी अलमारी में ठूँस-ठूँस कर भरी मिलेंगी। ऊपर से मुड़ी और नीचे से फटी हुई मिलेंगी। कई के पेज गायब मिलेंगे। कई पुस्तकों के कवर नहीं मिलेंगे। अर्थात् उनकी कोई देखरेख नहीं है। व्यवस्थापक आकर ताला खोल देता है, किताबों की तरफ नहीं देखता कि उनका क्या हाल है। यह किसी एक जगह की बात नहीं है। अमूमन ये हालत है। इससे हमारे कर्मों की निर्जरा हो रही है या बंध, यह विचार करें।

हम क्या कर रहे हैं ये समझने की बात है। हम यदि कर्मों की निर्जरा का लक्ष्य बनाएं तो छोटी-छोटी बातें भी साधना के अंतर्गत आ जाएंगी। इनसे भी अपने मन को साध सकेंगे।

आज के दिन एक काम करना। आज अपना कार्य किसी अन्य को नहीं सौंपना। अपना कार्य अपने हाथों से करना। जो भी कार्य करना वह अपने से करना।

(लोगों ने कहा- हाँ भगवन्)

कोई अपने मन से आपका कार्य कर रहा है तो वह बात अलग है,

किंतु आप किसी को बोलकर अपना कार्य नहीं करवाएं। किसी से यह नहीं कहेंगे कि पानी ले आ, मेरे जूते-चप्पल लेकर आ, मेरी गाड़ी लेकर आ। किसी भी कार्य के लिए किसी को आदेश नहीं देंगे। आज किसी से नहीं कहेंगे कि मेरा यह काम कर। किसी ने अपने आप कर दिया तो बात अलग है। एक दिन में अनुभव कर सकते हैं कि उसमें कैसा लगता है। यह भी बहुत बड़ी तपस्या है। हम कहीं खाना खाते हैं तो यह मुश्किल हो जाता है कि हमारी थाली कौन माँजेगा। ध्यान में रखना कि अपनी ही थाली माँजने में क्या शर्म। अपना काम किसको करना चाहिए?

(लोगों ने कहा कि खुद को ही करना चाहिए)

जब हम थाली में खाना खाते हैं तो सोचते नहीं हैं, किंतु जब थाली को माँजना होता है तब पीछे हो जाते हैं। अपनी ही थाली धोने से छोटे नहीं हो जाएंगे। ईमानदारी से विचार करना, सोचना कि कभी-न-कभी हमने थाली माँजी होगी या नहीं! लाचारी से भी माँजी हो किंतु माँजी तो होगी।

घर का काम मिल-जुलकर करना होता है। मियां-बीबी की गाड़ी तब तक चलेगी जब तक दोनों मिल-जुलकर काम करेंगे। जब तक दोनों एक साथ चलेंगे।

गाड़ी में यदि एक साइकिल का पहिया और दूसरा ट्रक का पहिया होगा तो दोनों पहिए एक साथ कैसे चल सकेंगे। दोनों अलग-अलग प्रकार के पहिए होंगे तो गाड़ी चलनी मुश्किल है। दोनों पहिए एक ही समान होंगे तो कोई दिक्कत नहीं आएगी। उसी प्रकार घर के सदस्य एक-दूसरे को समझकर चलेंगे तो कोई दिक्कत नहीं आएगी। यदि एक-दूसरे को नहीं समझ पाए तो लंबे समय तक व्यवस्था चलने वाली नहीं है। इसलिए घर के सदस्य मिल-जुलकर काम करते हैं। इसमें यह सोचने की बात नहीं है कि कौन जीता, कौन हारा। जिसने समझ लिया कि मुझे कर्मों की निर्जरा करनी है वह किसी भी काम से कर्मों की निर्जरा कर लेगा। रोज खाना खाते हुए भी कर्मों की निर्जरा हो सकती है और लंबी तपस्या करके भी कर्मों की निर्जरा हो सकती है। तपस्या करके कर्मों की निर्जरा हो ही जाए यह कोई जरूरी नहीं है।

आपने उत्तराध्ययन सूत्र पढ़ा होगा। उसमें भगवान ने कहा है कि

कोई अज्ञानी जीव मास-मासखमण की तपस्या करता है। मास-मासखमण की तपस्या यानी तीस दिन तक उपवास, फिर एक दिन पारणा, पुनः तीस दिन का तप। ऐसा तप करते हुए भी पारणे में कुश के अग्रभाग पर आने जितना अन्न का कण ग्रहण करता है। सद्ज्ञान के अभाव में इस प्रकार का तप भी कर्मों की निर्जरा करानेवाला नहीं होता।

इसे यूँ भी समझ सकते हैं कि साधुचर्या या धार्मिक किसी भी क्रिया की परिणति हमारे जीवन को प्रसाद देने वाली होनी चाहिए। प्रसाद का मतलब है प्रसन्नता देने वाली। मन संक्लेशित होना, पीड़ित होना, धर्म का परिणाम नहीं है। वह अधर्म है। इसलिए कहा गया है कि जिनेश्वर देवों की चरणसेवा तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। दुष्कर है। बहुत दुरूह है क्योंकि उसमें स्वयं को नमाना होता है। नमाना कठिन है। उसके लिए कहा जाता है-

आम झुके इमली झुके, झुके तो दाड़म दाख।
एरंड बेचारा क्या झुके, जिसकी ओछी साख।।

आम के पेड़ पर आम लगते हैं तो उसकी टहनियाँ नीचे की ओर झुक जाती हैं। इमली ज्यादा भारी नहीं होती है, फिर भी इमली लगने के बाद उसकी टहनियाँ झुकने लगती हैं। दाड़म का पेड़ पतला होता है, वह भी झुक जाता है। एरंड का पेड़ फल आने के बावजूद झुकता नहीं है। इसके कारण उसको ओछा बताया गया है। आम का पेड़ विशाल होता है, इमली का पेड़ विशाल होता है फिर भी वे झुक जाते हैं, किंतु एरंड का पेड़ छोटा होने के बाद भी नहीं झुकता है। यही उसका ओछापन है।

जो आदमी विशाल है, व्यापक है, जिसका हृदय बहुत उदार है, जिसका हृदय उन्नत है वह व्यक्ति नम सकता है, गम सकता है, किंतु जिसकी ओछी साख होती है वह नम नहीं पाता, अपितु कई बार उलटा जरूर सोच लेता है।

हम कहानियाँ पढ़ते हैं। बहुत-सी कहानियों में ऐसी बातें होती हैं कि एक सम्राट ने घोड़ा पसंद किया। सवारी करने की जल्दबाजी में वह उस पर बैठ गया। राजा घोड़े की लगाम तान रहा है और घोड़ा तेज दौड़ा जा रहा है। राजा ज्यों-ज्यों लगाम खींचता है त्यों-त्यों घोड़ा तेज दौड़ रहा है। ऐसा करते-करते

राजा थक गया। उसने घोड़े की लगाम ढीली छोड़ दी तो घोड़ा अपने आप रुक गया। उस घोड़े को उल्टी सीख दी गई थी, जिससे लगाम खींचने से वह तेज दौड़ता और लगाम ढीला करने से रुक जाता। यही कारण था कि सम्राट लगाम खींच रहा था तो घोड़ा तेज दौड़ रहा था। इसलिए सबसे पहले हमें अपनी समझ को ठीक करना आवश्यक है।

क्रिया का महत्त्व है, पर तब, जब क्रिया करने से दिल कोमल हो। दिल कोमल नहीं हुआ तो कितनी भी क्रिया काम नहीं आएगी। दिल चट्टान बना रहे तो कितनी भी क्रियाएं करने से कुछ नहीं होगा। सीने की हड्डियों के बीच हृदय है। वहाँ से हृदय को यदि बाहर निकालेंगे तो पता लगेगा कि वह सख्त नहीं है। वह बहुत कोमल है। हड्डियों का घेरा उसकी सुरक्षा के लिए है। हड्डियों की कठोरता हमारे हृदय की सुरक्षा के लिए है ताकि उसे कोई नष्ट नहीं कर सके। इसलिए क्रियाएं कठोर हों पर उसका परिणाम हृदय को कोमल करनेवाला हो।

आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा के विषय में सुना जाता रहा कि वे बहुत कड़क हैं। उपाध्याय अमर मुनि म.सा ने भी उनके विषय में ऐसा ही सुना था। पर उनके संपर्क में आने के बाद उन्होंने लिखा कि आचार्य गणेशलाल जी म.सा. बहुत सख्त हैं, वे बहुत कठोरता से बात करते हैं, ऐसा मैंने सुना था किंतु जब उनके संपर्क में आया तब महसूस किया कि वस्तुतः वे बहुत सख्त हैं, पर संयमी चर्याओं में। संयमी चर्याओं में वे जितने सख्त हैं, दिल से उतने ही कोमल हैं। साधु जीवन में कठोरता आना नहीं, पर साधु की चर्या में कठोरता अवश्य होनी चाहिए। वह कठोरता संयमी जीवन की कोमलता के रक्षार्थ है। ऐसा नहीं है कि क्रिया करें किंतु दिल गायब हो जाए। ऐसा हो जाएगा तो फिर वह क्रिया किस काम की, वह साधना किस काम की। संयम रूप दिल सदा धड़कता रहना चाहिए। उसकी प्रसन्नता, उसकी कोमलता और करुणा सदा व्याप्त रहनी चाहिए। पहाड़ों में जैसे पानी का झरना झरता रहता है वैसे ही हमारी कठोरता में भी करुणा का निर्जर झरना बहते रहना चाहिए। करुणा का निर्जर सूखना नहीं चाहिए। वह झरना सूख गया तो संयम, साधना काम आने वाली नहीं है। जिसमें करुणा का हृदय सूख गया वह हृदय नहीं, पत्थर है। जिस हृदय

में करुणा नहीं हो वह हृदय पत्थर के समान हो जाता है। उसको पत्थर की उपमा दी जाती है। साधना कुछ भी करें किंतु करुणा और कोमलता दिल में हर वक्त रहनी चाहिए।

जीवों के दुख को देखकर हृदय करुणा से व्याप्त हो जाना चाहिए। ऐसा नहीं कि जब तक कोई काम रहे तब तक उसके साथ करुणा का भाव रखें और काम निकल जाए तो लात मारकर उसे शत्रु समझने लगें। धर्म ऐसा नहीं कहता। पहली बात तो यह है कि कोई शत्रु होना नहीं चाहिए। यदि कोई शत्रु है तो उसके प्रति अपने मन में शत्रुता नहीं होनी चाहिए। साधक को यह अन्वेषण करना चाहिए कि मेरी किसी से शत्रुता नहीं है, दूसरा कोई मेरे प्रति शत्रुता भाव रखे तो वह मेरे वश की बात नहीं है।

भगवान महावीर के प्रति कई लोगों के मन में शत्रुता के भाव थे, किंतु भगवान महावीर के मन में उनके प्रति कोई शत्रुता का भाव नहीं था। भगवान महावीर ने कहा कि दुनिया में मेरे कितने भी शत्रु हो, किंतु मेरे मन में किसी के प्रति शत्रुता का भाव नहीं होना चाहिए। जो मेरे प्रति शत्रुता का भाव रखता हो, उसके प्रति भी मेरे हृदय में करुणा का निर्झर झरना चाहिए। वह झरना ऐसा बहे कि उसकी शत्रुता भी अपने आप घुलकर नष्ट हो जाए। वस्तुतः करुणा हमारे हृदय का हार है। करुणा हमारे हृदय की शोभा है। उसके रहने से यह हृदय है, नहीं तो पत्थर के समान है।

मेरे कहने का आशय आप समझ गए होंगे। मेरे कहने का आशय है कि हम क्रिया, साधना, तपस्या कितनी भी करें, कितनी भी कठोर करें, दिल कठोर नहीं होना चाहिए। हृदय संकुचित नहीं होना चाहिए। दिल सदाबहार बना रहना चाहिए। प्रसन्नता सदा बनी रहनी चाहिए।

अभी आपने उपाध्याय अमर मुनि जी की बात सुनी। उन्होंने लिखा कि मैं आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. के संपर्क में आया तो मालूम पड़ा कि उनके जीवन में कठोरता नहीं है। वे बाहर से जितने कठोर दिखते हैं, हृदय से उतने ही कोमल हैं, उदार हैं। जिसने साक्षात् उनका जीवन नहीं देखा, उसने सुनी हुई बातों का उल्लेख कर दिया। उनका साक्षात् दर्शन करने पर देखा कि लोग खाली ऊपर की बात करते हैं। उनका हृदय बहुत कोमल है, बहुत उदार

है। उन्होंने उनके हृदय को बीकानेर की मिसरी से उपमित किया। बीकानेर की मिसरी से किसी को निशाना बनाकर मारें तो वह उसका माथा फोड़ देगी। दाँत से उसे तोड़ने पर दाँत भी टूट सकता है। दाँतों से खून भी आ सकता है, पर उसको जीभ पर रखकर चूसने से मिठास मिलेगी।

वैसे ही साधना की बात है। साधना से मिठास मिलनी चाहिए। साधना मधुर रस वाली होनी चाहिए। दिल में करुणा की धार बहनी चाहिए अर्थात् हृदय करुणा से लबालब भरा होना चाहिए। ऐसी साधना हो तो सार्थक है, नहीं तो साधना कितनी भी कर ली, हृदय कठोर ही रहा, दिल छोटा ही रहा, दिल सिकुड़ता ही रहा तो वह बेकार है। बहुत-से लोग चूक जाते हैं, चूकते जा रहे हैं।

मैंने एक बार आपसे कहा भी था कि एक शिष्य अपने गुरुदेव के पास जाकर कहता है कि गुरुदेव पच्चक्खाण करा दो तो गुरुदेव ने कहा कि पतला करो। शिष्य एक महीने बाद वापस गया और कहा कि गुरुदेव मुझे संलेखना करा दो, गुरु ने कहा कि पतला करो। ऐसा करते हुए वह तीसरे महीने गया और कहा कि गुरुदेव संलेखना करा दो। गुरु ने पुनः वही बात कह दी तो वह गुस्सा हो गया कि क्या पतला करूँ, जब भी आता हूँ आप कहते हो पतला करो, पतला करो। क्या पतला करूँ?

गुरुदेव ने कहा कि जो गुस्सा कर रहे हो उसको पतला करो, उससे अपने मन को मुक्त करो। उसको अपने भीतर से हटाओ। जब कषाय धधक रहे हैं तब संलेखना से क्या फायदा।

धधक रहा है द्वेष दावानल, प्रेम पयोधि बहाना,
बहाना प्रभु, वीर जिनराज जी...

अपने में यदि कमी है, दिल कठोर है तो उसे कोमल करने के लिए साधना-आराधना करनी चाहिए ताकि दिल कोमल बन जाए। दिल हरा-भरा हो जाए। उसमें द्वेष दावानल धधक रहा हो तो प्रेम पयोधि बहे, अमृत की धारा बहे, जिससे द्वेष दावानल रहे ही नहीं। उसके बदले वहाँ पर प्रेम, वात्सल्य, क्षमा जैसी भावना प्रवाहित होने लगे।

महासती प्रशस्तिश्री जी की आज 31 की तपस्या पूर्ण होने पर है।

उनकी आज 31 की तपस्या संपन्न हो रही है। हम महासतियों से सुन ही गए कि एकांतर चलते-चलते उन्होंने मासखमण की तपस्या पूर्ण कर ली। संतों में अभी तक कोई मासखमण की तपस्या नहीं हुई। प्रणत मुनि जी ने तपस्या की, पर मासखमण उन्होंने भी नहीं किया। किसी महासतियां जी ने कह दिया कि वे आपकी सेवा में रहते हैं। वे गोचरी लाते हैं इसलिए उनसे मासखमण हो नहीं सकता। गोचरी लाना, सेवा करना तो तपस्या में भी हो ही सकता है। उसमें दिक्कत क्या है? उसमें कोई कठिनाई नहीं है।

ऋषभदेव भगवान पूरे वर्ष रोज गोचरी के लिए घूमे थे। दीक्षा के बाद एक वर्ष तक वे रोज गोचरी के लिए घूमते थे। तपस्या में मन शीतल हो जाए तो सब काम आसान हो जाता है। मूल बात है मन।

मन के हारे हार है और मन के जीते जीत

यदि मन में विचार लिया हो कि मुझसे तपस्या नहीं होगी तो पहले ही हार मान लेते हैं। ऐसे स्थिति में कार्य सफल कैसे हो पाएगा? हमें प्रशस्तिश्री जी से प्रेरणा लेनी है। जैसे वे सेवा करते हुए तपस्या कर रही हैं वैसे हम भी करें। उनसे प्रेरणा लेकर हम भी तपस्या की कड़ी में आगे बढ़ें। उनके सेवा गुण को देखें और उनसे कुछ प्रेरणा लें। किसी के दुर्गणों को नहीं देखना है। यह नहीं देखना है कि कौन तपस्या कर रहा है और कौन नहीं कर रहा है। मैं स्वयं भी मासखमण के लिए ज्यादा प्रेरित नहीं करता हूँ। उसकी कोई अनिवार्यता भी नहीं है।

मुख्य रूप से हमारा दिल कोमल होना चाहिए। दिल में करुणा की धार बहनी चाहिए। साधना प्रसन्नता की होनी चाहिए। दिल कोमल और करुणा से भरा होगा तो उसमें प्रेम का निर्झर सदा बहता रहेगा। वही साधना मुख्य होती है। इसलिए जितनी भी साधना करें, जितना भी काम करें लक्ष्य यह होना चाहिए कि मन प्रसन्न रहे।

साथियो! हमारा लक्ष्य एकमात्र आत्मशुद्धि का होना चाहिए। करुणा और कोमलता का होना चाहिए। अपने कर्मों की निर्जरा का होना चाहिए। कोई भी काम छोटा नहीं है। हर कार्य अपनी कूबत पर निर्भर है। प्रत्येक कार्य में सौंदर्य होता है, रौनक रहती है, उससे मन प्रफुल्लित होता है, बशर्ते हर कार्य को

अन्तर भाव से करें। तप, साधना की बात करें तो चाहे वह नवकारसी का तप हो या पोरसी का, आयम्बिल हो या एकासन का तप, उनको करते हुए मन प्रसन्न रखा जाए। ऐसा सोच कर मन को छोटा न करें कि हमसे तपस्या नहीं होती, अपितु मन को प्रसन्न बनाए रखें। यह बहुत बड़ी साधना है। रोज खाना खाएं, किंतु शर्त यह है कि दिल प्रसन्न रहना चाहिए। उसमें कोई गड़बड़ी पैदा नहीं हो। गुस्सा आसमान पर न चढ़े। अहंकार आसमान को न छूए। दिल सदा प्रसन्न रहे, समाधि में रहे, वही साधना उपादेय है। वैसी साधना, आराधना करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

19 अक्टूबर, 2021

साधुमार्गी पब्लिकेशन

4

मर्यादा सुरक्षा कवच

धार तरवार नी सोहेली-दोहेली...

तलवार की धार से भी कठिन है तीर्थंकर देवों की चरण सेवा। चरण सेवा का अर्थ है श्रुत धर्म और चारित्र धर्म की आराधना। स्तुति में आगे कहा गया है कि **'एक कहे सेविये विविध क्रिया करी'** अर्थात् कोई कहता है कि यह क्रिया करो, कोई कहता है वह क्रिया करो। इन-इन क्रियाओं के माध्यम से तुम आराधना करो। क्रिया करना एक बात है। उसका फल, उसका परिणाम क्या है, यह जानना जरूरी है। कोई क्रिया एकांत फल प्रापक होती है तो कुछ क्रियाएं अनेकांत फल देने वाली होती हैं। एकांत फल यानी मोक्ष। अनेकांत फल अर्थात् चार गतियों को दिलाने वाला फल। इसलिए क्रिया करते हुए यदि तुमने उसका परिणाम नहीं जाना तो हो सकता है कि चार गति में परिभ्रमण के अलावा और कुछ भी हाथ न लगे।

हमने बहुत बार सुना है और बहुत बार बोलते भी हैं कि अभवी जीव बहुत कठोर क्रियाएं करता है। वह बहुत परीषहों को सहन करता है। उपलक्षण से यहाँ तक भी कहा जाता है कि गौतम स्वामी जैसी कठोर क्रियाएं कर लेता है, पर उससे उसे मिला क्या? पुण्य का उपार्जन। जिसके बल पर अधिकतम 9 ग्रेवेयक तक चला जाएगा।

ज्ञातव्य है कि हमारी साधना का लक्ष्य पुण्य संचय नहीं है। इसलिए सबसे पहले हमें अपने माइंड में इस बात को जमा लेना चाहिए कि भौतिक सुख प्राप्त करना अपनी साधना का हेतु नहीं है। पुण्य प्राप्त करना हमारी साधना का उद्देश्य नहीं है। मेरी साधना का, मेरी धर्म क्रिया का लक्ष्य है अपनी आत्मा को शुद्ध बनाना, उसे पवित्र बनाना, कर्मों से रहित बनाना, कर्मों से मुक्त

कराना। अभी हमारी आत्मा कर्मों की बेड़ियों से जकड़ी हुई है। जिससे हम आत्मस्वरूप का सम्यक् दिग्दर्शन नहीं कर पा रहे हैं। आत्मा का सर्वात्मना संवेदन नहीं होता। मैं जीव हूँ, मैं आत्मा हूँ, ऐसा हमने कई बार सुना है, किताबों में पढ़ा है किंतु उसका स्पष्ट संवेदन देह और आत्मा की भिन्नता का बोध नहीं होता।

सबसे पहले हमें अपने भीतर आत्मा का अनुभव करना चाहिए। हमारी शुरुआत यहाँ से होनी चाहिए। हमें ऐसा विश्वास होना चाहिए कि मैं हूँ। ऐसा नहीं कि मैं नहीं हूँ। शरीर हमें दिखाई दे रहा है, किंतु शरीर रूप मैं नहीं हूँ। जहाँ शरीर में सचेतनता है, वहाँ आत्मा है, पर शरीर जलने के साथ आत्मा भी जल जाएगी ऐसा नहीं है। यहाँ अपना दिमाग लगाना जरूरी है। यहाँ जो बैठे हुए हैं, वे प्राय: इस बात को जानते हैं कि मैं आत्मा हूँ। यह तो ठीक है कि आत्मा है, किंतु उसका स्वरूप कैसा है यह अनुभूति करेंगे, तो ही आत्मस्वरूप को जान पाएंगे अन्यथा ज्ञात नहीं होगा कि आत्मा का स्वरूप किस प्रकार का है? ध्यान रखना उसका स्वरूप अजर है, अमर है। न तो बुढ़ापा आने वाला है और न मृत्यु को वरण करने वाला है। आत्मा के लिए कहा जाता है कि

'अजर अजोनी आत्मा रे, है निश्चय तिहुँ काल'

अर्थात् आत्मा अमर है, कभी मरने वाली नहीं है। वह सदा थी, है व रहेगी। अयोनी यानी जन्म को प्राप्त करनेवाली नहीं है। जो जन्मेगा उसका मरण होगा। शरीर बनता है वह नष्ट होता है। शरीर को बनाया जाता है, आत्मा को बनाया नहीं जा सकता। आत्मा शाश्वत है और सदा के लिए शाश्वत ही रहेगी। वह भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्यकाल में रहेगी।

जितनी आत्माएं ऋषभदेव भगवान के समय में थीं उतनी ही भगवान महावीर के जमाने में थीं। आज भी आत्मा की संख्या उतनी ही है और आने वाले अनंतानंत वर्षों के बाद भी आत्मा की संख्या न घटेगी और न ही बढ़ेगी। वह अवस्थित है।

घटना-बढ़ना किसमें हो सकता है? पुद्गल स्कंधों में।

जो बनता-बिगड़ता है, कभी बना, कभी बिगड़ा उसमें घटना-बढ़ना होता है, किंतु जिसका न मरना है, न जन्म है वह सदा विद्यमान है। उसमें कोई

घट-बढ़ नहीं होती। पुद्गल में घट-बढ़ हो सकती है क्या? सोच-समझकर बोलना? पुद्गल भी न तो घटने वाला है और न ही बढ़ने वाला है। वह जितना भूतकाल में था, उतना ही वर्तमान है और भविष्य में भी उतना ही रहेगा। घटने-बढ़ने की कोई बात नहीं है।

घटना-बढ़ना पुद्गल में नहीं पुद्गल स्कंधों में होता है।

इसको स्पष्ट रूप से समझें।

एक कुआँ खोदा गया। उसकी मिट्टी बाहर डाल दी। बाहर मिट्टी का ढेर लग गया। कुआँ खाली हो गया, पर बाहर ढेर की ऊँचाई हो गई। वहाँ से मिट्टी बाहर निकाली गई, बाहर निकली मिट्टी ढेर बन गई, उस स्थिति में मिट्टी न कम हुई न अधिक।

कुएं से मिट्टी खोदी गई और बाहर निकालकर डाल दी गई। वह उतनी ही मिट्टी है। मतलब पुद्गल तो उतना ही रहेगा। उसके लिए घटा-बढ़ा कुछ भी नहीं। यह हो सकता है कि पहले स्कंधों की संख्या कम रही हो। अब ज्यादा हो जाए, समुदाय पहले कम था अब ज्यादा हो गया।

ऐसा क्यों होता है?

क्योंकि पुद्गल एक-दूसरे से मिलते हैं। एक दूसरे से उनमें संयोग-वियोग होता है। आज पाँच ढेरियां हैं, कल दस ढेरियां बनाई जा सकती हैं। एक पिता का घर है। उस घर में बाप सहित पाँच लड़के रह रहे हैं। वे लड़के जब बड़े हुए तब उनकी शादी करा दी गईं। मकान छोटा पड़ गया। रहने के लिए दूसरे मकानों की व्यवस्था की गई। वे अलग-अलग हो गए। उन लोगों में बँटवारा हुआ। धन पाँच भागों में बाँटा गया। पहले धन एक समुदाय रूप था अब पाँच समुदाय रूप हो गया। पर सारा धन अब भी उतना ही है। यह व्यावहारिक कथन है। इसी प्रकार पुद्गल में घट-बढ़ नहीं है। पुद्गल मिल गए तो स्कंध कम पड़ गए, बिखर गए तो स्कंध ज्यादा हो गए। पुद्गलों के कितने भेद बताए हैं? चार भेद- स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणु। स्कंध परमाणुओं के समुदाय को कहते हैं, नुक्ती के दाने अलग-अलग पड़े हैं। उनको मिलाकर लड्डू बना दिया तो वह सारी नुक्ती लड्डू में आ गई। पहले नुक्ती के दाने अलग-अलग थे चाहे वे कितने भी थे सौ सवा सौ किंतु जैसे ही उनको मिलाया गया वे दाने लड्डू में आ गए।

लड्डू छोटा भी होता है और बड़ा भी। 50 ग्राम का भी होता है और 100 ग्राम का भी। अखबारों में पढ़ा था कि छप्पनभोग के लिए बहुत बड़े-बड़े लड्डू बनाए जाते हैं। बड़े लड्डू बनाने में बहुत दिक्कत आती है। लड्डू चाहे छोटा हो या बड़ा, लड्डू ही होता है। लड्डू चाहे 50 ग्राम का हो या 100 ग्राम का या उससे भी बड़ा कहने में सारे लड्डू ही होंगे। उनको लड्डू ही कहा जाता है। जैसे दो परमाणु का भी स्कंध होता है, उसी प्रकार तीन, चार, पाँच, दस को मिला दिया, संख्यात-असंख्यात व अनंतानंत परमाणुओं को मिला दिया जाए तो वे सारे स्कंध रूप बन जाएंगे। उसी प्रकार बिखर गए तो एक-एक इकाई के रूप में अलग-अलग हो जाएंगे। वे इकाइयाँ परमाणु रूप हैं।

यदि आपको यह बात समझ में नहीं आई तो अच्छी तरह से समझ लेना ताकि वापस किसी की क्लास ले सको।

इसमें कितने परमाणु मिले हैं, बताओ? एक धागा दिखाते हुए

(लोगों ने कहा कि बहुत मिले हैं)

इसमें बहुत परमाणु मिले हुए हैं। उनकी कोई गिनती नहीं है। यह इतना-सा (छोटा-सा) धागा दिख रहा है यह भी अनंत प्रदेशी स्कंध है। मैंने केवल समझाने के लिए यह बात बताई है। हमारी आँखों से जितने भी स्कंध दिख रहे हैं वे सारे अनंत प्रदेशी हैं। हम जो भी देख रहे हैं वे सारे अनंत प्रदेशात्मक स्कंध हैं। संख्यात और असंख्यात प्रदेश पुद्गल को हम देख नहीं सकते। हम जिन भी स्कंधों को देखेंगे वे निश्चित रूप से अनंत प्रदेशी स्कंध ही होंगे। अनंत प्रदेशी सारे स्कंधों को हम देख सकें, यह जरूरी नहीं है, जैसे कार्मण वर्गणा के स्कंध। वे अनंत प्रदेशी होते हैं, पर हम उनको देख नहीं सकते, किंतु जो दिखेगा वह तो निश्चित रूप से अनंत प्रदेशी स्कंध ही होगा।

परमाणु यानी जिसके एक से दो टुकड़े नहीं होते उस निरंश अंश को परमाणु कहते हैं। निरंश का मतलब जिसका कोई अंश नहीं। परमाणु जब तक स्वतंत्र होता है, तब तक परमाणु कहलाता है। किसी के साथ चिपक गया तो प्रदेश कहलाता है। प्रदेश और परमाणु में क्या फर्क है? जब तक अलग इकाई है तब तक वह परमाणु है। वही परमाणु जब किसी के साथ जुड़ जाए तो वह स्कंध का प्रदेश कहलाता है। यह (एक वस्त्र खंड) स्कंध रूप है। इसकी एक

लीरी निकाले तो वह देश हो गया। यह लीरी-टुकड़ा अलग हो जाने पर यह भी स्कंध है किंतु एक खंड में से हमने लीरी निकाली इसलिए इसे देश कहा जाता है। परमाणुओं की संख्या स्कंध के रूप में बदल जाने पर घट-बढ़ सकती है, किंतु पुद्गल रूप में मौजूद रहने वाला है। उदाहरण के रूप में लकड़ी जलकर नाश हो गई, किंतु पुद्गल रूप तो है ही। पुद्गल के रूप में घट-बढ़ होने वाला नहीं है।

मैंने लड्डू का उदाहरण दिया कि बूँदी (नुक्ति) की संख्या ज्यादा होती है। वे ही बूँदी के दाने लड्डू बन गए तो संख्या कम हो गई। एक किलो नुक्ति में दाने हजारों हैं। वे दाने अलग-अलग हैं, पर लड्डू बन जाते तो संख्या दो-चार या दस हो गई। इस प्रकार संख्या का घट-बढ़ हो सकता है, किंतु समूचे पुद्गल की बात करें तो न घटना होता है और न ही बढ़ना होता है।

जंबू द्वीप की जमीन कभी बढ़ेगी या घटेगी?

(लोगों ने कहा कि नहीं)

कोई मैदान कभी पहाड़ रूप हो सकता है तो कोई पहाड़ मैदान रूप हो जाए, किंतु जमीन उतनी ही रहेगी।

किंतु उसके वर्ण आदि में अंतर हो सकता है या नहीं?

(लोगों ने कहा कि हो सकता है)

काले रंग में कितने विभाग हो सकते हैं?

(लोगों ने कहा कि अनेक विभाग हो सकते हैं)

(दो वस्तुओं की ओर इशारा करते) हुए यह भी काला, वह भी काला, पर दोनों के कालेपन में कुछ फर्क है या नहीं है वैसे ही एक गुण काला, दो गुण काला, संख्यात गुण काला, असंख्यात गुण काला, अनंतानंत गुण काला भेद होते हैं। कालापन सब में है पर सबका कालापन एकसमान नहीं होगा। साफ कपड़े को काले रंग में डाल दिया जाए तो वह काला हो जाएगा। यदि उसको डार्क काला करना चाहें तो डार्क काला भी किया जा सकता है।

कपूर को यदि डिब्बी में बंद रखें तो उसकी गंध ज्यादा होती है और खुले में रखें तो गंध कम हो जाती है।

चंदन की लकड़ी को सूँघेंगे तो उसकी गंध नहीं आएगी, किंतु

उसको घिसेंगे तो गंध आएगी। उसकी गंध ऊपर के भाग में क्यों नहीं आती? ऊपर के भाग में गंध तो है, किंतु हवा के कारण से उसकी गंध उड़ गई। जो भीतर का भाग सुरक्षित है उसमें गंध आती है। जैसे वर्ण में, गंध में भिन्नता है वैसे ही रस व स्पर्श में भी भिन्नता होती है। ये सभी पुद्गल के अधीन हैं। कई लोग जिंदा जीवों को खा जाते हैं। सुना है कि चीन के निवासी सर्प को भी खा लेते हैं। कई लोग अन्यान्य जीवों को भी भक्ष्य बना लेते हैं। इसे कुणिम आहार कहते हैं। ऐसा आहार श्रावकों के लिए वर्जित है। श्रावक को सचित्त आहार करना चाहिए या नहीं, उसे अपक्व आहार लेना चाहिए या नहीं, इसकी जानकारी के लिए आपको उपाशकदशा सूत्र का अध्ययन करना चाहिए। उसमें 10 श्रावकों का वर्णन है। उसको देखें तो मालूम पड़ेगा कि आनंद श्रावक की चर्या कैसी थी। आप भी उनसे शिक्षा लेकर प्रयत्न करें कि उनके अनुसार जी सकें। आनंद श्रावक के पास बहुत संपत्ति थी। उस संपत्ति को भी आनंद श्रावक ने अपनी चर्या में सीमित कर लिया। संपत्ति होने का मतलब यह नहीं है कि गुलछर्रे उड़ाया जाए। संपत्ति अपने स्थान पर है और चर्या अपने स्थान पर। हमें जिन चीजों की जितनी आवश्यकता है उससे अतिरिक्त चीजों का त्याग कर देना चाहिए। इससे बहुत लाभ है, बहुत सारी क्रियाएं थम जाती हैं। बोलचाल की भाषा में कहें तो समुद्र जितना पाप एक लोटे में समा जाता है। उदाहरण के रूप में वनस्पति के 24 लाख प्रकार हैं, किंतु आपके खाने में कितनी आती हैं, कितनों का नाम याद है? किसी भी किताब में देखे बिना 100 वनस्पति का नाम भी याद नहीं हो पाएगा। आप यदि नाम याद करने बैठोगे तो भी नाम याद नहीं कर पाओगे। उनमें से खाने के काम में कितने प्रकार की वनस्पति आती है?

(लोगों ने कहा कि 15-20)

यदि आप अतिरिक्त का पच्चक्खाण नहीं लेते हो तो उसकी भी क्रिया लगती है।

एक व्यक्ति के हाथ में पिस्तौल है। वह मंच पर खड़ा होकर कहता है कि इसमें एक गोली है जिससे मैं एक आदमी का मर्डर करूंगा। उसने केवल एक आदमी का मर्डर करने को कहा पर उससे डर एक को लगेगा या सबको लगेगा?

(लोगों ने कहा कि सबको डर लगेगा)

वह कहता है कि मैं एक आदमी का मर्डर करूंगा, किंतु उस एक आदमी का उसने नाम नहीं लिया इसलिए सारे आदमी डरेंगे। हमने वनस्पति की प्रतिज्ञा नहीं ली इसलिए 24 लाख वनस्पतियाँ काँप रही हैं कि पता नहीं कब किसका नंबर आ जाए। भगवान महावीर कहते हैं कि हमने यदि प्रतिज्ञा नहीं ली तो हमारा मन, हमारा वचन, हमारी काया म्यान रहित तलवार की तरह है। तलवार भीतर होती है तो उसका उतना भय नहीं रहता है, जितना कि बाहर खींची का भय होता है। भले ही उसने बोला कुछ भी नहीं हो, किंतु तलवार घुमा रहा है। इससे देखने वाले का मन आशंकित हो जाता है। वैसे ही हमने प्रतिज्ञा की म्यान नहीं लगाई तो हमारे मन, वचन, काया नंगी तलवार के समान हैं। उससे हर प्राणी भयभीत होता है। केवल वनस्पति की बात नहीं है। पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, त्रसकाय जितने भी जीव हैं वे सब भयभीत होते रहते हैं, प्रकंपित होते रहते हैं, जैसे भूकंप आने पर जमीन में कंपन होता है।

इसको और स्पष्ट करते हैं। रेल पटरी पर चलती है किंतु पटरी के किनारे वाले घरों में भी उस समय कंपन होता है जब रेल आती-जाती है। रेल तो पटरी पर चलती है, फिर भी उसके इर्द-गिर्द के घरों में प्रकंपन क्यों होता है? वैसे ही हमारे विचारों का स्पंदन पूरे लोक में व्याप्त होता है, जिसमें जितने भी संसारी जीव हैं वे सारे प्रकंपित होते रहते हैं। इसलिए भगवान ने कहा कि अपने मन, वचन और काया को म्यान में डाल दो। मतलब प्रतिज्ञा से आबद्ध कर लो कि मुझे इन-इन वनस्पतियों को उपयोग में नहीं लेना है। इससे उन-उन जीवों को अभय मिल जाता है।

किसी आतंकवादी ग्रुप ने कुछ नामों की एक सूची बनाई। एक हिट लिस्ट बनाई। उस हिट लिस्ट को जगह-जगह प्रसारित कर दिया कि ये आदमी हमारे निशाने पर हैं। लोगों ने कहा कि जिनका नाम लिस्ट में है वे ही लोग डरेंगे। उससे जिसका नाम लिस्ट में है वे ही भयभीत होंगे या अन्य?

(लोगों ने कहा अभी लिस्ट में जिन लोगों का नाम है, वे ही लोग भय खाएंगे।)

उसके अलावा दूसरे लोग भयभीत नहीं होंगे। वे लोग सोचेंगे कि अपना नाम नहीं है, जिससे वे भय मुक्त हो जाएंगे। वे अपने आपको फ्री समझेंगे।

हमारे द्वारा प्रतिज्ञा कर लेने पर शेष जीव निर्भय हो जाएंगे।

आनंद श्रावक ने प्रतिज्ञा कर ली कि मुझे वर्षा के पानी के अतिरिक्त अन्य जल उपयोग में नहीं लेना। पुराने समय में देखा जाता था कि लोग वर्षा के जल को टाँकों में एकत्र करके रखते थे। आनंद ने भी अपने लिए केवल वर्षा से बरसने वाले पानी को ही खुला रखा। आप भी इस प्रकार की मर्यादा कर लें तो कितने जीवों को अभय मिल जाएगा। प्रतिज्ञा नहीं करते हैं तो सबको त्रास पहुँचना है। सब जीवों को भय रहता है कि किसका कब नंबर आ जाए।

एक कहानी सुनी होगी कि एक राक्षस गाँव में बहुत उपद्रव करता था। गाँव वाले उससे बहुत दुखी हो गए और उसके पास जाकर कहा कि तुम क्या चाहते हो? उसने कहा कि मेरे पास रोज एक व्यक्ति पहुँच जाना चाहिए। गाँव वालों ने एक घर से एक व्यक्ति भेजना शुरू कर दिया। उसके लिए क्रम बना दिया। हर घर से एक व्यक्ति को फिक्स कर दिया कि आज इसका नंबर है ताकि दूसरे लोग भय से मुक्त रहें कि अभी हमारा नंबर नहीं है। नंबर के हिसाब से एक व्यक्ति को उसके पास भेजना पड़ रहा था, पर इससे दूसरे लोगों को भय नहीं रहता था। दूसरे लोग अपने काम में लगे रहते थे।

हमने भी यदि प्रतिज्ञा कर ली कि नल के अलावा किसी दूसरे जल का सेवन नहीं करूंगा तो बावड़ी का जल, तालाब का जल, वर्षा का जल को अभयदान मिल गया। नियम के उपरांत अन्य सारी वनस्पतियों को अभयदान मिल गया। कितने प्राणियों को भय से दूर कर दिया।

इस प्रकार प्रतिज्ञा लेने से फायदा हुआ या नहीं हुआ?

साधु की प्रतिज्ञा तीन करण, तीन योग से होती है अर्थात् मैं न तो हिंसा करूंगा, न दूसरों से करवाऊँगा और न ही करनेवाले को अनुमति दूंगा। उक्त किसी भी प्रकार से हिंसा नहीं करूंगा। हिंसा के प्रति कोई अनुमोदन भी नहीं होगा। मन से, वचन से और काया से किसी भी जीव की हिंसा नहीं करूंगा।

श्रावक तीन करण, तीन योग से त्याग करने में समर्थ नहीं है क्योंकि उसको जीवन यापन करना है, उसे परिवार का जीवन चलाना है। माँग कर खाना श्रावक का धर्म नहीं है। साधु के हाथ ऊपर की तरफ खुले होते हैं जबकि श्रावक के हाथ ऐसे (याचक की तरह) नहीं होते। उनके हाथ उलटे होते हैं। वह किसी से माँगता नहीं है। श्रावकों को माँगने का अधिकार नहीं है। श्रावक के माँगने का मतलब एक प्रकार से हीनता है। श्रावक किसी दीनता के अधीन नहीं होता। उसका जीवन सिंह के समान होता है। सिंह वीर वृत्ति का है। श्रावक का जीवन सिंह के समान होना चाहिए। सियार की तरह दीन वृत्ति वाला नहीं, चालाकी करनेवाला नहीं होना चाहिए। उसमें चालाकी की वृत्ति नहीं होनी चाहिए।

श्रावक की धीरता, वीरता के अनेक आख्यान हैं। उदायन राजा का आख्यान हमने बहुत बार सुना है और किताबों में पढ़ा भी होगा कि संवत्सरी के दिन प्रतिक्रमण कर उन्होंने चण्ड प्रद्योतन सम्राट से खमत-खामणा किया। राजा ने उनसे कहा कि यह कैसा खमत-खामणा? मेरे सिर पर तो ममदासी पति की पट्टिका लगी है, इससे मैं अपमानित हो रहा हूँ ऐसे में यह क्षमापना क्या मायने रखती है? उन्होंने कहा कि राजन अभी तो मैं पौषध में हूँ। यह विषय पौषध के दायरे में नहीं है, पौषध के बाहर है। इसका उपाय अभी मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं आपको दिल से भाई के समान ही समझ रहा हूँ। यह बात विचार करने की है। चण्ड प्रद्योतन उनका शत्रु राजा है। जिसने उनकी स्वर्ण गुलिका दासी को चुराया, उसी राजा को वे कह रहे हैं कि मैं दिल से आपको भाई समझता हूँ। उस सम्राट के हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ बँधी हुई थीं, पर पौषध पूरा होने पर हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ खुलवाते हैं, सिर पर लगी पट्टिका हटाते हैं व दोनों साथ बैठकर खाना खाते हैं। उनका उनके प्रति कितना मैत्री भाव, भातृत्व भाव रहा यह समझने की जरूरत है। हर जगह दुश्मनी काम नहीं आती।

हर जगह दुश्मनी हो जाएगी तो जीना हराम हो जाएगा। किसी ने अपराध किया उस कारण हमने उसको बंदी बनाया तो इसका मतलब यह नहीं कि उनके जीवन को समाप्त कर दूँ। उसके अपराध को दूर करने की बात होती

है। आदमी को दूर करने की बात नहीं होनी चाहिए। उसका अपराध दूर होना चाहिए।

दूसरे दिन जैसे ही पौषध पाला तो सबसे पहले काम क्या किया? सबसे पहले उसने पट्टी खोली और अभय कर दिया। कहा कि अब मेरी तरफ से आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। ऐसा करने से धर्म बढ़ा या घटा?

(लोगों ने कहा कि धर्म बढ़ा)

एक श्रावक से क्या शिक्षा मिल सकती है?

यह शिक्षा मिलती है कि एक शत्रु के साथ कितना मैत्री भाव, कितना प्रमोद भाव है। यह केवल बताना नहीं है बल्कि यथार्थ में वैसा होना चाहिए। उदायन राजा व्रतधारी श्रावक थे। श्रावक का जीवन सामान्य गृहस्थ से ऊँचा होता है, क्योंकि प्रत्याख्यानों से उसका जीवन भावित हो चुका होता है।

श्रावक के 14 नियम उसे सीमित दायरे में लाने वाले होते हैं। आज पच्चक्खाण ले लो कि आज से मुझे 14 नियमों का पालन करना है। साल भर के लिए ऐसा करें। वैसे कोई समस्या आने वाली नहीं है। इसके बावजूद आपके मन में भय है तो उन 14 नियमों को नवकार मंत्र के भांगे से ले सकते हैं। यदि कोई विशेष परिस्थिति आ जाए तो नवकार मंत्र गिनकर नियम पाल सकते हैं। सामान्यतया कोई समस्या आने वाली नहीं है। समस्या आती है तो सबका समाधान भी है।

हमने घर का दरवाजा खुला छोड़ रखा हो, बहुत सारी खिड़कियाँ भी खुली हों तो आँधी, तूफान आने पर घर कचरे से भरेगा। उसके पूर्व यदि सब खिड़कियाँ बंद कर दीं तो घर में ज्यादा कचरा नहीं आएगा। उसको निकालना भी नहीं पड़ेगा। झाड़ू लगाना नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार व्रत-नियम लेना यानी खिड़कियाँ बंद करना है जिससे कर्म रूपी कचरा आ नहीं पाता।

भगवान महावीर के सिद्धांत, तीर्थंकर देवों के सिद्धांत इतने सहज हैं कि बहुत आसानी से उनका आचरण कर सकते हैं। खाली इस भय के कारण पच्चक्खाण लेने से बचना नहीं चाहिए कि कहीं पच्चक्खाण टूट नहीं जाए। ऐसी स्थिति में मैं आपको सलाह दूंगा कि कभी घर मत बनाना। क्योंकि वह भी कभी गिर गया तो? शादी भी मत करना, क्योंकि कभी तलाक हो गया तो? इन

कामों में आदमी ऐसा नहीं सोचता, किंतु पच्चक्खाण का प्रसंग आता है तो सोचने लगता है कि कहीं टूट न जाए।

एक आदमी ट्रेन में सफर कर रहा था। वह डिब्बे में दौड़ने लगा। किसी ने पूछ लिया कि ऐसा क्यों कर रहे हो तो वह कहता है कि मुझे जल्दी जाना है। डिब्बे में दौड़ने से जल्दी पहुँच जाएगा क्या?

(लोगों ने कहा कि नहीं)

जल्दी पहुँचना है तो नीचे उतरकर दौड़े तो पता चल जाएगा कि जल्दी पहुँचता है या लेट। ऐसी दौड़ लगाकर वह क्या कर लेगा? हमको वैसी दौड़ नहीं लगानी है। जिस गाड़ी से आप जा रहे हो उस गाड़ी पर विश्वास करना चाहिए। उस पर श्रद्धा होनी चाहिए कि मुझे यह अपने स्थान पर पहुँचाएगी। अपनी प्रतिज्ञाओं पर विश्वास होना चाहिए। उनका पालन करना चाहिए। नमिराज जागृत हो गए। वे प्रतिज्ञा से स्वयं को भावित करने को तैयार हो रहे थे।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय, जय, जय, जयकार...

नमिराज के पास इंद्र था। उसके पास वैक्रिय शक्ति होने से उसने नमिराज को ऐसा दृश्य दिखाया कि तुम्हारी मिथिला नगरी धू-धू कर जल रही है। अग्नि भभक रही है। धुएं के ऊँचे-ऊँचे गुबार उठ रहे हैं। उसने कहा कि राजन देखो, तुम्हारी मिथिला में आग लग गई है। अभी आपका धर्म बनता है कि मिथिला नगरी की रक्षा करें। आपके पास शक्ति है, ताकत है। अत: पहले आपको मिथिला की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि वह आपकी नगरी है। अपनी नगरी की रक्षा आप नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा? अवश्यमेव आपको इस नगरी की रक्षा करनी चाहिए। इस नगरी की रक्षा करना आपका धर्म बनता है।

यह बात किसने कही?

(लोगों ने कहा कि यह बात शक्रेंद्र ने नमिराज से कही)

नमिराज ने कहा कि ब्राह्मण देवता आप सुनिए और इस तथ्य को समझने का प्रयत्न कीजिए। इस तथ्य से बहुत-से लोग अनजान हैं कि कौन मेरा है और कौन पराया है।

आपको यह तथ्य ज्ञात है या नहीं? आप इस तथ्य को जानने वाले हैं या अनजान हैं? जानते हो कि यह भवन हमारा है, यह मकान हमारा है, यह

गाड़ी हमारी, यह जमीन हमारी है। जब मरोगे तो यह सब साथ जाएंगे क्या?

(लोगों ने कहा- नहीं भगवन्! सब यहीं रह जाएंगे)

नमिराज कहते हैं कि ब्राह्मण देव बहुत-से लोग यह नहीं जानते कि क्या अपना है और क्या पराया है। यह नगरी कभी मेरी रही होगी। आज मिथिला मेरी नहीं है। मैं जान चुका हूँ कि यह शरीर भी मेरा नहीं है तो मिथिला नगरी मेरी कैसे हो सकती है!

''जहाँ देह अपनी नहीं, वहाँ न अपना कोय''

मैं अपना किसको कहूँ। यह शरीर भी मेरा नहीं है तो बाकी चीजें मेरे होने की बात ही कहाँ उठती है। कोई चीज मेरी होगी, यह मैं नहीं कह सकता हूँ। अध्यक्ष जी आपका कौन है? अध्यक्ष जी कहेंगे कि मेरा संघ है। किसको आप अपना कह सकते हैं। साधु से पूछ लो कि यह किसकी है, उसको पता है कि उसको क्या बोलना है। वह कहता है कि यह वस्तु मेरी निश्रा में है। मेरी मालकियत नहीं है। मैं उसका मालिक नहीं हूँ। मेरी नेश्राय शब्द भी कह सकते हैं। मेरी निश्रा में है, यह भी कहा जा सकता है। मेरी और मेरी निश्रा को समझने की बात है। यदि उस पर मेरा अधिकार है तो वह मेरा है। वह निकलेगा तब दुख देगा। 'मेरी निश्रा में है' का मतलब है कि मैं इसका स्वामी नहीं हूँ। मेरे उपयोग के लिए है। मेरे उपयोग में आने के बाद कभी दूसरे को दे दिया तो वह दूसरे की हो जाएगी। वह मेरी निश्रा से हट जाएगी। यह शब्द तटस्थ जीवन जीने का बोध कराता है। इसी प्रकार से हमारी भाषा बन जाए, श्रावकों की भाषा बन जाए।

गाँव के किसान भी महाराज के पास दर्शन करने आते हैं। महाराज उनसे पूछते हैं कि 'कांई नाम है थारो' तो कहते हैं कि 'नाम तो भगवान रो है, म्हारो कांई है। म्हाने किशनियों केवे।' कोई म.सा पूछ लेते हैं कि यह लड़का किसका है तो वह कहते हैं कि यह तो भगवान रा है। वे अपना नहीं बताते। उनसे घर के विषय में पूछ ले कि घर किणरो है तो वे कहते हैं कि यह आपका ही है। यह भाषा निश्रा की प्रतीक है। स्वामित्व की भाषा कहती है कि यह म्हारा है और निश्रा कहती है कि ये भगवान के हैं। मेरी निश्रा में है।

नमिराज ने इस बात को जाना, समझा। उनके भीतर वैराग्य भाव जग गया। वे कहते हैं कि हे ब्राह्मण! मैं सुख में जी रहा हूँ। सुख में बस रहा हूँ एक

प्रतिशत भी मेरे मन में हड़कंप नहीं है। मिथिला के जल जाने से मेरा कुछ भी नहीं जाएगा। '**मिहिलाए डज्झमाणीए ण मे डज्झइ किंचणं**' यानी मिथिला के जलने से मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है।

मैं जो बोल रहा हूँ उसकी तरफ ध्यान देना। मान लो मैंने प्रणत मुनि को कागज के टुकड़े दिए। उन्होंने सावधानी नहीं रखी और उन कागज के टुकड़ों पर पानी की बूँदें गिर गईं तो मेरे मन में ऊँचा-नीचा होगा या नहीं? मैं उपदेश दे रहा हूँ, किंतु उस कागज के टुकड़े के प्रति मेरी मूर्च्छा है। मैं उन्हें कह सकता हूँ कि आपने पानी गिरा दिया। थोड़ी भी सावधानी नहीं रखी, कागजों पर पानी गिर गया। उसके प्रति मेरे मन में दर्द पैदा होगा। उसके प्रति मेरा राग भाव छूटा नहीं है। लेकिन वह दर्द पैदा नहीं होना चाहिए।

नमिराज के मन में मिथिला को जलते हुए देखकर भी कोई दर्द पैदा नहीं हुआ। उनका मन स्पष्ट था कि कुछ भी मेरा नहीं है, किंतु राग भाव होगा तो भीतर दर्द पैदा कर देगा। यदि हम दर्द से मुक्त होना चाहते हैं तो राग भाव हटाना चाहिए। हम सोचें कि जो साथ जाने वाला नहीं उसका ममत्व क्यों?

नमिराज कह रहे थे कि मैं सुख से जीवन जी रहा हूँ। मुझे कोई दुख नहीं है, कोई दर्द नहीं है। कोई पीड़ा नहीं है। जिसको ऐसा उपरति भाव आ जाए उसको मोक्ष, मुक्ति से कौन रोक सकता है। ऐसा होने पर कोई पल्ला पकड़ नहीं सकता है।

नमिराज ने कहा कि विप्र! आपने कहा कि जो अपना है उसकी रक्षा की जानी चाहिए। तद्नुसार मैं रक्षा कर रहा हूँ। ज्ञान मेरा है, दर्शन मेरा है। ज्ञान, दर्शन आत्मा का गुण है। ज्ञाता-दृष्टा भाव का लक्षण है। इनकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। किंतु मिथिला से मेरा कोई संबंध नहीं है। जब था, तब था। अब मैंने रिश्ता तोड़ दिया है। अब मेरा उससे कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए उसकी रक्षा करना मेरे लिए अनिवार्य नहीं है।

एक व्यक्ति ने बंगला बनाया। उसने उस पर सौ करोड़ रुपये खर्च कर दिए। बंगला आलीशान था, दर्शनीय था। देखने वाले को रुचिकर था। भव्य था। उसका एक मित्र आया। उसने बंगला देखा। वह उसके मन को भा गया। वह कहता है कि यह बंगला मुझे दे दो। जितना मुनाफा चाहिए ले लो, पर यह

बंगला मुझे दे दो। दोनों की प्रगाढ़ मित्रता थी तो उसने विचार किया कि यह बंगला दे देता हूँ। साथ ही उसने सोचा कि अब तो मुझे बंगला बनाने का अनुभव भी हो गया। मैं नया बना लूंगा। अब तो मैं और सस्ते में भी बना सकता हूँ। उसने उस बंगले को सवा सौ करोड़ में उस मित्र को दे दिया। उसकी रजिस्ट्री करा दी। चौथे दिन भूकंप आया वह बंगला धँस गया। नीचे बैठ गया। अब दर्द किसको होगा? लेने वाले मित्र को उसको दर्द हो रहा है कि चार-पाँच दिन रजिस्ट्री नहीं कराता तो कितना अच्छा रहता। जिसने बंगला बेच दिया उसको दर्द नहीं हो रहा। उसने तो पैसा ले लिया और रजिस्ट्री करा दी। उसने मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया कि हे भगवान! आपने बचा लिया। आपकी कृपा से मैं बच गया नहीं तो डूब जाता। आपकी कृपा से मैं डूबते-डूबते बच गया।

नीयत ऐसी नहीं होनी चाहिए। इस तरह की नीयत ठीक नहीं है। मन में तटस्थ भाव रहने चाहिए। कोई भी चीज साथ जाने वाली नहीं है। मेरी आयु जा रही है, मेरा शरीर जा रहा है, क्षण-क्षण मेरा विनाश हो रहा है। अतः हमें प्रेरणा लेनी चाहिए।

नमिराज ऋषि कहते हैं कि मिथिला से मेरा कोई नाता नहीं है। मिथिला के जलने से मेरा कुछ नहीं जल रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि रक्षा करना धर्म है तो नमिराज ने मिथिला की रक्षा क्यों नहीं की। रक्षा में धर्म है, इसमें दो-राय नहीं हो सकती, किंतु दो दृष्टियाँ हैं- निश्चय और व्यवहार। जो जीव निश्चय में जी रहा है उसके लिए व्यवहार की रीत मायने नहीं रखती। नमिराज अध्यात्म की जिस ऊँचाई पर थे, उसमें मिथिला का जलना कोई मायने नहीं रखता था। वे एकात्म भाव में रमण कर रहे थे। एक उदाहरण लें- आप सामायिक या पौषध में बैठे थे, उस समय आपके लड़के के संबंध के लिए लड़की वाले आ गए, उस समय आप क्या उनसे उस विषयक चर्चा करेंगे? नहीं करेंगे, पर सामायिक और पौषध से खुले हो गए तो बात करेंगे या नहीं? करेंगे। स्पष्ट है कि सामायिक-पौषध की अपनी मर्यादा है इसलिए उसमें रहते वैसी चर्चा नहीं की जा सकती।

ब्राह्मण का रूप धारण करके आने वाला इंद्र, नमिराज से आगे क्या

चर्चा करता है और नमिराज आगे क्या जवाब देते हैं हम समय के साथ विचार करेंगे। अभी इतना ही लक्ष्य रखें कि कम-से-कम आज के दिन यह नहीं कहेंगे कि यह चीज मेरी है। ज्यादा से ज्यादा ये बोलेंगे कि अभी मेरे पास है इसलिए मैं इसकी रक्षा कर रहा हूँ। इसकी देख-रेख कर रहा हूँ, ऐसा कह सकते हैं, किंतु यह मेरी चीज है ऐसा नहीं कहेंगे।

राजगृह के पास एक गाँव था। मगध सम्राट श्रेणिक के मन में आया कि गाँव वालों की बौद्धिक क्षमता परखने के लिए एक हाथी को भेजा जाए। तदनुसार एक वृद्ध हाथी को भेजा और गाँव वालों से कहा कि हाथी को खिलाना-पिलाना है। इसकी रक्षा करना, इससे संबंधित सूचना रोज देना, पर यह मत कहना कि हाथी मर गया। गाँव वालों ने उस हाथी की रक्षा की। उनको खिलाया-पिलाया, किंतु शरीर तो शरीर है। एक दिन हाथी मर गया। गाँव वालों ने सोचा कि अब क्या करें! शेर के गले में माला कौन डाले। अब राजा के पास जाकर बोले कौन कि हाथी मर गया है क्योंकि राजा ने कहा है कि मुझे हाथी मरने का संदेश नहीं देना।

गाँव में एक युवक था। उसने कहा कि घबराने की बात नहीं है। आप बोल देना कि अन्नदाता! हाथी न तो बोलता है, न खाता है, न पीता है। वह न हिलता है और न डुलता है। न ही चिग्घाड़ता है। गाँव वाले राजा के पास गए और कहा कि हाथी को हमने खिलाने-पिलाने का बहुत प्रयत्न किया, किंतु आज उसको पता नहीं क्या हो गया कि वह कुछ भी नहीं खा रहा है, न पी रहा है, न हिल रहा है, न डुल रहा है और न ही श्वास ले रहा है तो राजा ने कहा कि क्या हाथी मर गया? उन्होंने कहा कि अन्नदाता यह हम नहीं कह सकते। उन्होंने इर्द-गिर्द की बात कर ली, परंतु यह नहीं कहा कि हाथी मर गया। अत: कम-से-कम आज यह मेरा है इस प्रकार का प्रयोग नहीं करना। यह कहना कि यह चीज मेरी निश्रा में है। उसका पच्चक्खाण करा दूं! आज-आज के लिए यह मेरा है, ऐसा नहीं बोलना वोसिरामि। इतना ही कहते हुए विराम।

20 अक्टूबर, 2021

5

ऐसे बनता मन अविकारी

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर...

धर्मनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया कि गाऊं रंग सूं... रंग सूं गाने का मतलब है कि मेरे भीतर श्रद्धा भाव इतना व्यक्त हो जाए, श्रद्धा इतनी घनीभूत हो जाए कि मैं उसी में रँग जाऊं। भगवान के रंग में मेरी आत्मा रँग जाए। ऐसी बहुत-सी स्तुतियाँ होती हैं, बहुत-से शब्द होते हैं, बहुत-सी प्रार्थनाएं होती हैं, जिसमें भगवान के रंग में रँगने की बात होती है, किंतु परमात्मा की स्तुति उनको राजी करने के लिए नहीं होती है। वहाँ अपने मन को राजी करने की बात है। यह देखने की बात है कि हमारा मन उसमें राजी हो रहा है या नहीं, हमारा मन उसमें एकसार हो रहा है या नहीं, हमारा मन उससे प्रसन्न हो रहा है या नहीं। यदि हमारा मन प्रसन्न नहीं हो रहा है, उसमें उसका प्रभाव नहीं आ रहा है तो वह गाना, वह स्तुति सार्थक नहीं है।

लोगस्स चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति है, नमोत्थुणं भी स्तुति है, उसमें अनंत तीर्थंकर सिद्धों की व वर्तमान अरिहंतों की स्तुति की जाती है। पुच्छिंसुणं भगवान महावीर की स्तुति है। एक भगवान महावीर की स्तुति में सबका समावेश है। उसमें सभी तीर्थंकरों की स्तुतियाँ हो जाती हैं। स्तुति करना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है स्तुति के साथ मन और दिल रँगना। हमारा मन, हमारा दिल रँग जाना चाहिए।

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं...

क्यों रँगना? क्योंकि जो प्रीत लगी है, उसमें विघ्न न पैदा हो। लय टूटे नहीं। बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। हम परमात्मा से लिंक जोड़ने की बात करते हैं, किंतु भटक जाते हैं। चलना कहीं है और चल कहीं जाते हैं। लोग ध्यान करने

बैठते हैं और झपकी आने लगती है। ध्यान कर रहे हैं परमात्मा का, किंतु ध्यान स्वार्थ में जा रहा है कि मुझे कितना लाभ हुआ। कैसे-कैसे क्या हुआ। ध्यान जाता है कि क्या बिगड़ा और क्या अच्छा हुआ।

एक सेठ मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ था। उसके परिवार वाले विचार कर रहे थे कि अब नहीं लगता कि सेठ जी ज्यादा जीवन बिताएंगे। अत: कोई त्याग-पच्चक्खाण करा देते हैं, भगवान के नाम का स्मरण करा देते हैं जिससे उनकी अंतगति में भगवान का नाम आ जाने से गति सुधर जाएगी। क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि 'अंतमति सा गति' अर्थात् जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है। जिंदगी भर झूठ, छल-कपट, धोखा करने वाले भी सोचते हैं कि अंतिम समय में अच्छी मति आ जाए तो गति सुधर जाए, ऐसे में क्या सन्मति आ जाएगी? नहीं आ सकती।

वैभव ने कहा कि पापा राम का नाम लो तो पापा ने कहा कि अरे रामू के पास तो मेरे पैसे बाकी पड़े हैं, उससे वसूली करना है। उसने कृष्ण का नाम लिया तो कहने लगा कि कृष्ण पर कोर्ट में केस चल रहा है। उसे कहा गया कि महावीर का नाम स्मरण करे, वह बोला महावीर पर कुड़की हो गई है, बस जगह मिलान करानी है। उसे भगवान का नाम याद कराया जा रहा है, पर उसको भगवान का नाम याद नहीं आ रहा है। उसको सिर्फ उन-उन लोगों के नाम याद आ रहे हैं जिनसे पैसे लेने हैं। इसलिए कहा जाता है कि 'पापी के मुख से राम नहीं निकले।' इस प्रसंग से ऐसा कहा जाता है कि अंतिम समय में भी पापी की प्रीत परमात्मा से लग जाए, ऐसा कठिन है। कदाचित किसी की प्रीत लग जाए तो उसका पुण्य योग।

वाल्मीकि जी पहले बहुत बड़े डाकू थे। वे नृशंस हत्या करने में पीछे नहीं रहते थे। जहाँ मौका लगता वे लोगों को मौत के घाट उतारकर धन लूट लेते, किंतु जैसे ही उनकी मति पलटी वे बहुत बड़े भक्त बन गए। अर्जुन माली की बात हम बहुत बार करते हैं, सुनते हैं। उसने 1141 व्यक्तियों की घात की थी। जब वह साधु बना तो कहने वाले ऐसा भी कहे कि-

सौ-सौ चूहे खाय बिलाड़ी हज को चली...

कितने जीवों की घात करके भी अर्जुन माली साधु बन गया।

(लोगों ने कहा कि 1141 लोगों की घात करके वह साधु बन गया)

क्या नहीं हो सकता बताओ?

(लोगों ने कहा कि ठान लें तो सब कुछ हो सकता है)

लोहे को पारस का स्पर्श हो जाए तो सोना बन सकता है या नहीं?

(लोगों ने कहा कि बन सकता है)

किसी को पारस मिल जाए तो लोहा नहीं मिलता और किसी को लोहा मिल जाए तो पारस नहीं मिलता। यदि हमारा पुण्य सही नहीं है तो पारस मिल जाएगा, किंतु लोहा नहीं मिलेगा। यदि लोहा मिल भी गया तो जंग लगा हुआ मिलेगा। उस पर यदि रगड़ोगे तो सोना नहीं बनेगा। जंग रहते हुए लोहा, सोना नहीं बन सकता। इसका तात्पर्य क्या है? हम बोलते तो हैं कि लोहे को पारस का स्पर्श मिल जाए तो सोना बन सकता है। इस पर विचार करने से एक बात बहुत साफ झलकती है कि जिसका चित्त सरल होता है वह सोना बन सकता है। जिसमें जंग लगा रहेगा वह स्वर्ण नहीं बन सकता। राग-द्वेष, कषाय, क्रोध, मान, माया, लोभ जंग हैं। आप इनको जंग बोलते हो या कुछ और?

(लोगों ने कहा कि हम काट बोलते हैं)

वही काट (जंग) लगा रह गया तो सोना नहीं बनता। लोहा साफ हो, उसमें जंग नहीं लगी हो तो पारस से स्पर्श करने पर वह सोना बन सकता है। यहाँ पर लोहा हमारा मन है और जंग हमारा कषाय है। यदि हमारे मन पर कषाय का रंग चढ़ा हुआ है तो पारस का स्पर्श कराने पर भी वह सोना नहीं बन पाएगा। क्योंकि वहाँ पारस का स्पर्श लोहे से नहीं हो रहा है। उसका स्पर्श लोहा पर लगी जंग से हो रहा है। लोहे को सोना बनने के लिए शर्त है कि लोहा, पारस से स्पर्श होना चाहिए। जब तक लोहे पर जंग है तब तक स्पर्श नहीं हो पाएगा। जब तक बीच में अवरोध है तब तक लोहा, पारस से स्पर्श नहीं हो पाएगा।

वैसे ही हम परमात्मा की स्तुति कई बार अपने अहंकार के लिए करते हैं। अपने दुर्गुणों को छिपाने के लिए करते हैं। ताकि लोगों को लगे कि मैं कितनी भक्ति करता हूँ, मैं कितनी भक्ति करनेवाला हूँ, किंतु ऐसी भक्ति सार्थक

नहीं होती। धर्म-धर्म सब कहते हैं, किंतु उसको जाननेवाले विरले हैं। धर्मक्रिया करनेवाले बहुत होते हैं, किंतु उसका मर्म जाननेवाले बहुत कम लोग होते हैं।

14 हजार संतों में से भगवान ने कितने संतों को तारा?

(लोगों ने कहा कि सात सौ संतों को तारा)

14 हजार संतों में से 13300 संतों को मोक्ष नहीं हो पाया। 700 संत ही मोक्ष गए। हम भगवान महावीर के समय की ही बात क्या करें। कोई भी समय हो यदि मन चंगा नहीं होगा, मन साफ नहीं होगा तो वह गति में बाधा डालने वाला बनेगा। वह अवरोध का काम करेगा। वीतराग बनने के लिए वीतरागता की पहचान करनी पड़ेगी। वीतरागता की पहचान नहीं कर पाएंगे तो वीतराग बनना आसान नहीं होगा।

वैसे ही धर्म की आराधना करने से पहले हमें धर्म को जानना चाहिए कि धर्म क्या है, धर्म किसको कहते हैं। हमारे मन में क्रिया-प्रतिक्रिया जगना, द्वंद्व जगना धर्म नहीं है। आत्म सापेक्ष अवस्था, आत्म रमण की अवस्था धर्म है। सहजता, सरलता, कोमलता, मृदुता धर्म है। दस प्रकार का यति धर्म है। इनमें से क्षमा सबसे पहला है। हम देखें कि हमारे भीतर क्षमा कितनी है, मृदुता कितनी है, कोमलता कितनी है। ये सारी अवस्थाएं अगर हमारे जीवन में नहीं हैं, उनका अभाव है तो धर्मक्रियाएं, पौषध कितने भी कर लें, उससे कर्मों की निर्जरा नहीं होगी। वे पुण्य बंधन के कारण रूप हो सकते हैं, किंतु कर्मों की निर्जरा करानेवाले नहीं होंगे। कर्म निर्जरा के लिए सरल बनना पड़ेगा। जो ऋजुभूत होता है उसकी सिद्धि होती है।

पाँच-सात फीट कपड़ा सिमटा हुआ है। उसको सिमटा हुआ ही धोएंगे तो बीच के सिमटे हुए भाग पर लगे हुए दाग साफ हो सकते हैं क्या?

(लोगों ने कहा कि साफ नहीं होगा)

हो सकता है कि जहाँ मैल है वहाँ पर थोड़ा पानी लग जाए, किंतु मैल साफ नहीं हो सकता। वैसे ही हम अपने मैल को ऊपर-ऊपर से धोते रहेंगे, किंतु अंदर तक पानी नहीं पहुँचेगा तो हमारी क्रियाओं को यथेष्ट लाभ नहीं मिल पाएगा।

पूणिया श्रावक भी सामायिक कर रहा था। मगध सम्राट श्रेणिक उस समय उसके घर आया, पर उसका मन चंचल नहीं हुआ। कामदेव श्रावक पौषध में था। उसके सामने देव द्वारा उपसर्ग आया, किंतु वे हिला तक नहीं, क्योंकि वह धर्म के तथ्यों को जान रहा था। वह समझ रहा था कि धर्म कभी भी अहित करनेवाला नहीं होता।

कुछ दवाइयों का रिएक्शन होता है तो कुछ का साइड इफेक्ट होता है जबकि कुछ ऐसी होती हैं जो लाभ करती हैं, पर वह नुकसान नहीं करती। बताओ कौन-सी दवाई ठीक रहेगी?

(लोगों ने कहा कि जो सिर्फ लाभ कर रही है वह ही ठीक है)

धर्म लाभ ही करेगा। वह नुकसान नहीं करता। धर्म का प्रभाव पाप से बचाएगा।

भगवान से पूछा गया कि **'धम्मसद्धाए णं भंते जीवे किं जणयइ'** अर्थात् धर्म की श्रद्धा से जीवों को किस प्रकार का फल प्राप्त होता है, क्या मिलता है? लोग पहले पूछते हैं कि इसका परिणाम क्या होगा, जो काम करेंगे उसका परिणाम क्या होगा, उसका लाभ क्या होगा। क्रिया करें, काम करें पर मिले कुछ नहीं तो खाली हाथ नहीं रहना चाहते। अत: पूछा गया भगवन्! इसका क्या लाभ है?

भगवान ने धर्म श्रद्धा का फल क्या बताया?

भगवान ने धर्म श्रद्धा का फल बताया कि अब तक जो साता में, सुख में, इंद्रियों के विषय में मौज मना रहा था कि मुझे बहुत साधन मिले, खाने-पीने में कमी नहीं है। मैं एक चीज माँगता हूँ तो मुझे चार चीजें मिलती हैं। पर ये विचार करें कि ये सारे किसके बदौलत हैं?

(लोगों ने कहा कि धर्म के)

ये धर्म की बदौलत नहीं हैं। ये तो पुण्य की बदौलत हैं। पुण्य से सारे साधन मिल रहे हैं। धर्म का काम तो कुछ और ही है। उसका काम तो उससे भिन्न ही है। धर्म हमारे मैले कपड़ों को साफ करनेवाला है। वह हमारी आत्मा की मैली चादर को साफ करनेवाला है। हमारी आत्मा पर लगे दागों को हटाने वाला है। दूर करनेवाला है। धर्म हमें बहुत शांति देनेवाला है। जिस क्रिया से हमें

शांति–समाधि मिलती है वह धर्म है। यदि शांति, समाधि, तृप्ति नहीं मिल रही है और आकांक्षाएं, इच्छाएं, लोभ, मान, लालच सक्रिय हो रहे हैं तो समझ लेना कि अभी धर्म स्पर्श नहीं हो पाया है। अभी बहुत काम बाकी है।

दस लीटर दूध में एक ग्राम जावण दे दिया जाए तो दही जम जाएगा क्या?

(लोगों ने कहा कि नहीं जमेगा)

क्यों नहीं जमेगा?

(लोगों ने कहा कि बराबर जावण नहीं दिया)

बराबर मतलब कितना? दस लीटर दूध में दस लीटर ही दही डाल लें तो जमेगा क्या?

(लोगों ने कहा कि नहीं)

दस लीटर दूध में अनुपात से यदि जावण डाला जाएगा तो दही जम जाएगा। अगर बराबर जावण डालेंगे तो भ्रांति हो जाएगी। शब्द को चेंज करना पड़ता है। अनुपात से जावण होना चाहिए। दस लीटर दूध में अनुपात का जावण लग जाएगा तो असर आएगा। हममें धर्म की श्रद्धा है तो मेरे खयाल से दस लीटर दूध में एक ग्राम जावण का असर नहीं होगा। हालांकि ऐसी बात नहीं है। उसका असर आएगा, किंतु दही नहीं जमेगा। थोड़ा स्वाद बदल सकता है, दूध में फर्क आ सकता है। उसमें असर तो आएगा, किंतु जैसा असर आना चाहिए वैसा असर आ नहीं पाएगा। वैसे ही हमको देखना है कि मेरा क्रोध कितना शांत हो रहा है, मान कितना घट रहा है, लोभ और लालच की भावना सीमित हो रही है या नहीं? कहीं वैसी ही दौड़ तो नहीं है जैसी पहले थी। यदि इच्छाएं रहती हैं कि यह मिल जाए, वह मिल जाए तो समझ लेना की अभी बहुत तपने की जरूरत है। इतने मात्र से कल्याण की दिशा में आगे नहीं बढ़ पाएंगे। इतने से दही नहीं जम पाएगा।

लोग दूध को नहीं, दही को मंगल मानते हैं। दूध को अमंगल मानते हैं और दही को मांगलिक मानते हैं। क्योंकि दधि घनीभूत हो गया। वैसे ही हम यदि ठोस हो जाएंगे, दूध की तरह छलकते नहीं रहेंगे तो मंगल हमारे भीतर प्रवेश करेगा। जब ऐसा होगा तब मांगलिक होंगे, कल्याण की दिशा में आगे

बढ़ेंगे। नहीं तो दूध की तरह छलकते ही रहेंगे। छलकने वाला मुक्ति नहीं पाएगा। छलकने वाले का संसार है।

जिस क्रिया से आत्मा को साधा जा सकता है वह अध्यात्म है। जिस क्रिया को करने से चतुर्गति भ्रमण होता है वह अध्यात्म नहीं है। अभव्य जीव साधु का चोला स्वीकार कर लेता है। वह साधना भी करता है। बहुत कठिनाइयों को झेलता है। कई तरह के उपसर्ग भी सहता है। उसके बावजूद वह चतुर्गति में घूमता है। भले ही वह देवलोक में चला जाएगा, किंतु संसार नहीं छोड़ पाएगा। वह संसार के खूँटे से बँधा हुआ है। उसके गले में रस्सी बँधी हुई है। वह उस खूँटे के चारों ओर घूमेगा, किंतु कहीं जा नहीं पाएगा।

एक संत गाँव में पहुँच गए। संत ने देखा कि वहाँ की शशि जी डोसी धर्मस्थान में नहीं आ रही है। पहले दिन में तीन-चार बार उसका आना होता था। संत ने सोचा कि क्या बात है शशि जी आ क्यों नहीं रही है? संत एक दिन उसके घर गोचरी के लिए चले गए तो उससे पूछा कि क्या बात है बाई जी धर्मस्थान पर नहीं आ रही हो? वह कहने लगी, बावजी! आपको मालूम ही है मैंने कितनी सामायिकें कीं, पौषध किए, बेले-तेले किए, 25 रंगी करवाई, 15 रंगी करवाई, किंतु मुझे मिला क्या। संत ने कहा कि बाईजी आप धर्म स्थान पर उपस्थित होंगी तो वहीं पर बात हो पाएगी। ये सब बातें हम इधर नहीं कर सकते। साधु की मर्यादा है, वह आहार आदि की गवेषणा तो कर सकता है पर अन्य चर्चा गृहस्थ के घर पर नहीं कर सकता।

संत की बात स्वीकार कर वह धर्मस्थान पर गई और कहने लगी कि बावजी आपको तो मालूम ही है कि मैंने क्या-क्या किया। पहले मैं कितना धर्मस्थान पर आती थी, पर मुझे क्या मिला। उसने कहा कि बावजी मेरे इतना करने के बावजूद मुझे पोता नहीं हुआ।

धर्म पोता देता है क्या?

(लोगों ने कहा कि नहीं)

हम स्वार्थ को पूजते हैं, समर्थ को नहीं। धर्म समर्थ है। वहाँ स्वार्थ का नहीं परमार्थ का परिचय होता है। धर्म का काम है, हमने जो आवरण इकट्ठे किए हैं उनको हटाना, हमने जो जोड़ा उनको हटाना।

क्या काम है धर्म का?

(लोगों ने कहा कि हमने जो जोड़ा उनको हटाने का काम है)

निम्बाहेड़ा चातुर्मास में मुझसे एक पत्रकार मिला। वह मुझसे कहने लगा कि मुझे आपसे कुछ प्रश्न करना है। मैंने कहा कि मेरे पास ज्यादा समय नहीं रहता आप मुझसे क्या पूछना चाहते हो पूछ लो। उसने कहा मैं आपसे ज्यादा कुछ नहीं पूछूंगा, कुछ ही प्रश्न करूंगा। उसने पहला प्रश्न पूछा कि धर्म जोड़ता है या तोड़ता है। मेरे मन में अचानक आ गया कि धर्म तोड़ता है। इसके बाद उसके सारे प्रश्न खत्म हो गए। उसका सारा प्लान बिगड़ गया। इस जवाब से उसका सारा ढांचा निरस्त हो गया। उसके मन में था कि ये बोलेंगे कि धर्म जोड़ता है तो मैं बोलूंगा कि यदि जोड़ता है तो आप अलग-अलग व्याख्यान क्यों करते हो, एक साथ क्यों नहीं करते? मैंने कह दिया कि धर्म तोड़ता है तो उसका सारा मामला बिगड़ गया। मैंने कहा कि धर्म की करनी कर्मों को तोड़ती है। जितना भी पुण्य-पाप किया है उन सबको हटाता है, जब तक वे हटेंगे नहीं तब तक संसार छूटेगा नहीं।

हम जोड़ना चाहते हैं या छोड़ना चाहते हैं?

(लोगों ने कहा कि हम छोड़ना चाहते हैं। हम तो चाहते हैं कि धर्म करें तो धन और जुड़ जाए, बढ़ जाए)

धन बढ़ाने के लिए लोग धर्म करते हैं, किंतु धन बढ़ाने के लिए धर्म नहीं करना है। धर्म करते रहेंगे तो धन अपने आप बढ़ेगा। जहाँ लालच है, वहाँ धर्म नहीं है। लालच पाप है। क्रोध पाप है। लोभ पाप है। मान-माया पाप है। यदि भीतर क्रोध है तो भीतर कौन घुस रहा है पुण्य या पाप?

(लोगों ने कहा कि पाप घुस रहा है)

तब धर्म कैसे होगा बताओ? धर्म हमें राग-द्वेष से, लोभ-लालच, क्रोध-मान से अलग करता है इसलिए इनसे हटो। इनको हटाओ।

भगवान ने धर्म श्रद्धा का फल बताया- **साया सोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जई।**

अब तक रजाई ओढ़कर सो रहे थे, किंतु जब उठ गए तो उठने के बाद वापस सोना नहीं है। यह काम कौन करता है? धर्म कहेगा कि अब बिस्तर

से निकलो। अब रजाई ओढ़कर नहीं सोना है। धर्म आपको जगाएगा। भगवान महावीर कहते हैं कि **'मुणिणो सया जागरंति'** अर्थात् मुनि सदा जागृत रहते हैं। क्योंकि वे सदा धर्म में रहते हैं। जो जगा हुआ है वह मुनि है। जो सोया हुआ है वह मुनि नहीं है। मुनि को भी रात को नींद आती है फिर भी कहते हैं कि मुनि सदा जागृत है। मुनि को द्रव्य नींद आ जाए, किंतु भाव नींद, मोह, संयोग, ममत्व उस पर हावी नहीं हो सकते। उस पर भी यदि मोह कर्म का आवरण छा गया तो वह भी भाव नींद सो जाएगा।

प्रसन्नचंद राजर्षि ममत्व के प्रवाह में बह गए। उसका यह परिणाम रहा कि उन्होंने धड़ाधड़ एक, दो, तीन, चार, पाँच नहीं पाँच सौ मंत्रियों का संहार कर दिया।

चाहे पाँच सौ कहें या चार सौ निन्यानवे, जो भी कहें। उनमें से एक बच गया। उसने सोचा कि उसको भी क्यों छोड़ूं। एक भी शत्रु जिंदा नहीं रहना चाहिए। एक शत्रु भी कई शत्रुओं को पैदा कर सकता है। इसलिए इसको भी मारना है। उसके तुणीर में तीर नहीं रहे। उसका तरकश खाली हो गया। उसने सोचा कि अपने माथे के मुकुट द्वारा ही इसको समाप्त कर दूं। जैसे ही माथे पर हाथ गया कि माथा एकदम सपाट, वे जग गए। उनको थोड़ी देर के लिए भाव निद्रा आ गई थी। उनकी साधुता खिसक गई। उनके सातवीं नरक में जाने की बात हो रही है। साधुता खिसकी यानी वे भाव नींद में चले गए। बेहोशी में चले गए। जब आदमी बेहोश हो जाता है तो उसको भान नहीं रहता है। हमको समझने की आवश्यकता है कि हम कितने जागृत हैं, कितने सावधान हैं। ठंडी हवा में आदमी को नींद आ जाती है। नींद की झपकियाँ आनी शुरू हो जाती हैं। उस समय बहुत सावधान रहना पड़ता है।

धर्म सदा हमको जगाए रखता है। वह हमारे द्वार पर सदा खड़ा रहता है। वह सदा हमको जगाने की कोशिश करता रहेगा। धर्म हमको सुलाने की बात नहीं करेगा। वह सदा नींद की झपकी से जगाने की कोशिश करेगा। धर्म कहेगा कि **'उट्ठिए नो पमायए'** यानी उठो, प्रमाद मत करो। नींद खुल गई है तो सोए मत रहो। नींद खुलने के बाद यदि पड़े रहेंगे तो पुनः झपकी आ जाएगी। नींद से जगने के बाद उठ खड़े हो जाने पर नींद की झपकी नहीं आएगी। एक

बार खड़े होने पर जल्दी से वापस नींद आ नहीं पाती। जगे रहे तो परमात्मा का, आत्मा का आशीर्वाद सदा बना रहेगा।

दो 15 रंगी सामायिक की तो दोनों मिलाकर 30 रंगी हो गई क्या?

(लोगों ने कहा कि नहीं हुई)

आगे कौन-सा विकल्प सामने आ गया?

(लोगों ने कहा कि आयंबिल का)

आयंबिल करना धर्म है या पाप है?

(लोग कहते हैं कि धर्म का काम है)

एकांत रूप से न धर्म है, न पाप है। उसके पीछे भावना क्या है, उससे धर्माधर्म का विचार हो सकता है।

आयंबिल क्यों किया जाता है? आयंबिल करने के पीछे भाव रहता है कि मैं अपनी इंद्रियों पर विजय प्राप्त करूं। इंद्रियों के विषय पर विजय प्राप्त करूं। जीभ बड़ी चटोरी होती है। जो भी उसको दिखा वह सबको लेना चाहती है। सबको चखना चाहती है। भूख नहीं भी हो पर हाजमोला सामने आ जाए तो मन में आता है कि उसको जीभ पर रख लूं। उसको सामने देखने पर जीभ पर रखने की इच्छा जग जाती है। ये खेल रसनेन्द्रिय के चलते रहते हैं। आयंबिल के समय वह सोचता है कि आयंबिल की जगह उपवास कर लूं। आयंबिल बहुत कठिन लगता है। उसमें रोटी मिलती है जो मुँह से अच्छी तरह चबाई भी नहीं जाती।

इसी को साधना कहते हैं। मन को मन से विपरीत दिया जाए, इंद्रियों से विपरीत दिया जाए। मन और इंद्रियाँ चाहती हैं कि मीठा मिले, खट्टा मिले, नमकीन मिले, चरका मिले, षटरस भोजन मिले। आयंबिल में न खट्टा मिलता है, न नमकीन। न मीठा मिलता है और न ही षटरस भोजन मिलता है। कोई भी स्वाद वाली चीज नहीं मिलेगी। जो वस्तु जैसी है, उसमें कुछ मिलावट नहीं है तो वह शुद्ध है। आप उसका स्वाद उठाइए। आयंबिल में शुद्ध वस्तु मिलने वाली है।

हम भुने हुए चने (भूंगड़े) ले रहे हैं। उसमें कोई दूसरा स्वाद मिला हुआ नहीं है। निखालिस है। उसी प्रकार अपनी आत्मा का भी शुद्ध स्वाद लें।

कषाय मुक्त अवस्था का रसास्वादन करें। सब्जी का स्वाद लेते हैं। उसमें मिर्ची मिलाते हैं। नमक और मसाला आदि मिलाते हैं। ये सब मिलाने के कारण उसका असली स्वाद पता नहीं पड़ता। वैसे ही क्रोध और कषाय आत्मा में जीने से, मान, माया और लोभ में जीने से आत्मा के शुद्ध स्वरूप की अनुभूति नहीं कर पाते। उसका शुद्ध स्वाद हमको अच्छा नहीं लगता। जैसे आयंबिल करना ठीक नहीं लगता। मतलब जो तत्त्व जैसा है वैसा ही उसका स्वाद लें।

लाभ, मान-माया, क्रोध में होते हुए मेरी बुद्धि कैसी होती है और इन सबसे हटकर जब मेरी बुद्धि होती है, तब कैसी होती है, उस ओर मेरी अनुभूति कैसी है। इस प्रकार की अनुप्रेक्षा सच्चे मायने में हो तो धर्म हो जाएगा। भावना-भावना का खेल है थोड़ी-सी चूक हुई नहीं कि भटके।

सिद्धांत बत्तीसी किसको याद है? गौतम जी आपको याद है क्या? और 25 बोल किसको याद है? आपको सोचने में इतनी देर लगी कांई बात है? पाँच इंद्रियों के 23 विषय और उसके 240 विकार के बारे में आप क्या समझते हैं? एक चीज दूसरी चीज में मिल गई तो विकार पैदा हो गया। जो चीज जैसी है उसमें कुछ परिवर्तन नहीं होना अविकार है। दूध में दही मिलाना विकार हो गया। सब्जी में नमक मिलाया तो विकार हो गया। वैसे ही क्रोध, मान-माया, लोभ हमारे विकार हैं। पाँच इंद्रियों के 23 विषय का विकार है कि यह अच्छा है, यह बुरा है। वह भोजन अच्छा है। यह खाना बहुत स्वादिष्ट है, बहुत स्वाद दे रहा है। इस तरह हमारे भीतर राग-द्वेष बन गया और हम अधर्म में चले गए। एकासन, आयंबिल करते हुए हम राग-द्वेष में जा सकते हैं या नहीं जा सकते?

(लोगों ने कहा कि राग-द्वेष में जा सकते हैं)

ये दो सफेद पट्टी है। (पट्टी को दिखाते हुए) ये पट्टी बहुत चौड़ी है। दोनों के बीच संधि है जो एक लाइन-सी बनी है। ये लाइन तो बहुत चौड़ी है। उसके स्थान पर एक बाल यहाँ रख दिया जाए और कह दिया जाए कि यह जमीन मेरी और यह जमीन तेरी है। बीच में केवल एक बाल रखा है। हम इधर रहेंगे तो धर्म है, उधर चले गए तो अधर्म है। जब तक पाँच इंद्रियों के 23 विषय में चल रहे हैं, तब तक हम धर्म में हैं, किंतु जैसे ही आया कि वाह क्या जायका

है, आज तो बहुत बढ़िया, मिर्च-मसाले वाला भोजन बना है तो वह अधर्म हो गया। हम विकार में चले गए। ऐसे ही विकार पैदा होते हैं। आप खाने की प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। कोई भी प्रतिक्रिया खाने के प्रति मन में पैदा नहीं होने देनी है। कुछ लोग कहते हैं कि बावजी, मन का कांई करूं, मन म्हारी बात म्हाने कोनी।

आज उस प्रतिक्रिया को हटा दो। सोच लो कि आज वैसी प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। कोई विकार पैदा नहीं करेंगे। बहुत सजगता से कार्य करना है। सजगता से सारी चीजें हो सकती हैं।

आयंबिल की प्रेरणा आपको मिल रही है। युवा संघ वाले कह रहे थे कि समय बहुत कम है। कम समय में सक्रियता ज्यादा आती है। कम समय में ही काम अच्छा होता है नहीं तो खरगोश वाली बात हो जाएगी। खरगोश ने सोचा कि अभी समय बहुत है, मैं तो दो-चार छलांग में ही गंतव्य तक चला जाऊंगा। कछुआ नहीं रुका। नहीं रुकने के कारण कछुआ अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच गया और खरगोश पीछे रह गया। कम समय में हमारी सक्रियता बढ़ती है। सभी को उसमें भाग लेना है। शुद्ध मन से भाग लेना है। उसके प्रति मन में कोई विकार पैदा नहीं होना चाहिए। केवल शुद्ध तत्त्व का आसेवन करना है। कोई मिर्च-मसाला नहीं चाहिए। एक-दूसरी चीजें साथ मिली नहीं खानी है। भूंगड़ा खा रहे हो तो उसके बीच दूसरी वस्तु मत खाओ। जब एक आइटम पूरा हो जाए उसके बाद दूसरा आइटम खाना शुरू करो। जो भी चीजें खाएं उनको स्वतंत्र रूप से खाएं। किसी के साथ कोई अन्य चीज नहीं मिलानी है। एक चीज खाकर ही दूसरी चीज खानी है। पानी पीने की छूट है। इसका प्रयोग करो। किसी ने नहीं किया हो तो आज ही इसका प्रयोग करे। किसी ने अलग नहीं खाया है तो आज आयंबिल का प्रयोग करके देखें और अनुभव करें। आप प्रयोग करके देखना। शायद घर में रोटियाँ कम न पड़ जाएं और बनानी न पड़ जाएं।

डॉक्टरी दृष्टि से बात करें तो जैसा विचार करते हैं, जैसी भावना पैदा होती है, लीवर उस प्रकार का रस बाहर निकालता है। वह रस उस खाद्य में मिलेगा तो हाजमा बराबर होगा। यदि मीठा खाते-खाते नमकीन शुरू कर दिया

तो लीवर से रस निकलने में अंतर आ जाएगा। जो रस मीठे में मिलना था, वह नमकीन में मिल जाएगा, उससे हाजमा गड़बड़ा जाएगा। इसलिए क्रमिक रूप से आइटम खाना चाहिए तो लीवर से जो रस मिलेगा वह सही मिलेगा। हम कभी कुछ कभी कुछ मन के अनुसार खाएंगे तो लीवर में हड़बड़ी मच जाएगी। वह हड़बड़ी में कभी कोई रस तो कभी कोई रस निकालने का प्रयत्न करेगा, जिससे उसमें हलचल तीव्र हो जाना स्वाभाविक है। इससे लीवर के रस निकलने की प्रक्रिया प्रभावित होती है। व्यवस्था में बहुत उथल-पुथल हो जाती है।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय, जय, जय, जयकार...

नमिराज ऋषि ने कहा कि ब्राह्मण देवता आपने कहा कि मिथिला जल रही है, किंतु अब मिथिला से मेरा कोई संबंध नहीं है।

'आप अकेला अवतरे मरे अकेला होय'

मेरा कोई सगा नहीं है। कोई साथी नहीं है। जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। मेरे किए हुए कार्य का फल किसी दूसरे को नहीं मिलेगा और दूसरे के किए हुए कार्य का परिणाम मुझे नहीं मिलेगा। नमिराज ने ब्राह्मण से कहा कि मुझे मिथिला की रक्षा नहीं करनी। अब मिथिला मेरी नहीं है। यह केवल संयोगज भाव है कि मैं मिथिला का सम्राट था, मिथिला का राजा था, मिथिला का स्वामी था। ये सब संयोगिक भाव हैं। संयोग तात्कालिक होता है। वह थोड़े समय के लिए होता है। हमेशा के लिए वह अपना नहीं होता। अपनी चीज वह है जो सदा अपने साथ रहे। अपना कौन है?

(लोगों ने कहा कि हमारी आत्मा है)

जहाँ संयोग के भाव हैं, जहाँ बाह्य भाव है वह आत्मा का भाव नहीं है। क्रोध, मान-माया लोभ संयोग से आत्मा का साथ है। ये गुण आत्मा के अपने नहीं हैं। ज्ञान आपका अपना है। दर्शन आपका अपना है। इसको बाहर से लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्रोध, मान-माया, लोभ बाहर से आए हुए हैं, कर्मों के कारण से बने हुए हैं। उनकी वजह से आदमी मोह कर लेता है, ममत्व पैदा कर लेता है। यह ज्ञान नहीं है। यह अज्ञान है। अज्ञानता के कारण

वह मान लेता है कि ये मेरा है, जबकि वह उसका है नहीं। अपना मानने के कारण से ही व्यक्ति दुखी होता है।

ब्राह्मण रूपी इंद्र ने अंत:पुर की रक्षा करने की बात कही। उस पर नमि ने कहा कि अंत:पुर मेरे साथ सदा-सर्वदा रहनेवाला नहीं है। अंत:पुर मेरा नहीं है। ज्ञाता, दृष्टा भाव सदा मेरे में रहेगा। मैं जहाँ जाऊंगा मेरा ही रहेगा। वह खत्म होने वाला नहीं है। मैं निगोद में जाऊंगा तो भी मेरे साथ रहेगा। वह कभी समाप्त होने वाला नहीं है। इसलिए इसी को मैं अपना कह सकता हूँ। अंत:पुर मेरा नहीं है। वह अपना नहीं है। वह छूट जाने वाला है।

ब्राह्मण से उन्होंने कहा कि जो बाह्य आभ्यंतर परिग्रह को छोड़ देता है उसका किसी से कोई लगाव नहीं होता है। जब तक नाता नहीं टूटता है तभी तक लगाव रहता है। परिवार वाले आते हैं तो मन में खुशी होती है। यह हमारे कर्मबंध का कारण है।

नीमच के पास एक गाँव है बघाना। शायद बघाना पहले था। नीमच छावनी बाद में बना। ऐसा होता रहता है जैसे पहले इसे नया शहर कहा जाता था। अब ब्यावर हो गया। मूल ब्यावर 'पुराना ब्यावर' हो गया। बात बघाना की चल रही थी। आचार्य पूज्य श्री श्रीलाल जी म.सा. वहाँ विराज रहे थे। छोटी सादड़ी के कुछ लोगों ने विचार किया कि पूज्य श्री के दर्शन कर लें। पहले जमाना आज की तरह नहीं था। कारों का जमाना नहीं था कि घंटों में आ-जा सकते हैं। पहले तो बैलगाड़ियों का जमाना था। जाने के लिए बैलगाड़ियाँ तैयार की गईं। कुछ लोगों ने जाने की तैयारी की। वहाँ एक मुर्ड़िया जी थे। वे नवतत्त्व के ज्ञाता थे। उनके मन में आ गया कि मैं भी चलता हूँ। वे भी चले। उन्होंने मन में ठान लिया, अपने मन में विचार कर लिया कि हमारे जाने से यदि पूज्य थोड़े भी खुश होंगे तो मैं उनको वंदन नहीं करूंगा। हमारे जाने पर उनके चेहरे पर थोड़ी भी खुशी आएगी तो मैं उनको वंदना-नमस्कार नहीं करूंगा।

वे वहाँ पहुँचे। बाकी लोगों ने पूज्य श्री के दर्शन किए। लोग वंदना-नमस्कार कर रहे थे, किंतु मुर्ड़िया जी पूज्य श्री के चेहरे को देख रहे थे कि उनके चेहरे पर खुशी आ रही है या नहीं। वे देखे जा रहे थे किंतु पूज्य श्री के चेहरे की रंगत में कोई परिवर्तन नहीं आया। जैसा पहले था वैसा का वैसा ही रहा तो

उन्होंने वंदना-नमस्कार किया। बाकी लोगों ने उनसे पूछा कि आपने हमारे साथ वंदना-नमस्कार क्यों नहीं की तो मुर्ड़िया जी ने कहा कि मैंने ये ठान लिया था कि हमारे आगमन से पूज्य श्री के चेहरे पर कोई खुशी आएगी तो मैं वंदना-नमस्कार नहीं करूंगा। आचार्यश्री के मन में खुशी होने का मतलब होगा कि वे समभाव से हट गए। हमारे आगमन की क्रिया के वे भागी बन जाएंगे कि मन प्रसन्न होगा। मेरे भक्त आ गए। भक्त कोई तिराने वाला नहीं है।

एक बात याद रखो कि हमको तिराने वाला कौन है?

(लोगों ने कहा कि आत्मा है)

दादा कहता है कि पोता मेरी सेवा करेगा। बुढ़ापे में मेरा सहयोग करेगा। पोता तिराने वाला नहीं है। हमको तिराने वाली केवल अपनी आत्मा है। निष्क्रिय भाव से साधु को निष्कामी होना चाहिए। साधु के पास कोई धनी व्यक्ति आ जाए या गरीब, दोनों को बराबर समझना चाहिए। ऐसा नहीं कि धनी को ज्यादा समय दूं और गरीब आ गया तो कह दूं कि मेरे पास अभी टाइम नहीं है। यह बहुत कठिन काम है। आसान काम नहीं है। मुर्ड़िया जी ने स्पष्ट किया कि पूज्य श्री के चेहरे की रंगत नहीं बदली तो मैंने उनको वंदना की। आज तो भक्त के आने से महाराज खुश हो जाए तो भक्त सोचता है मैं तो तिर गया। वह महाराज की सविशेष भक्ति करेगा। महाराज ने कोई महत्त्व नहीं दिया तो भक्ति मंद पड़ जाएगी।

नमिराज कहते हैं कि जिसने बाह्य आभ्यंतर परिग्रह छोड़ दिया, जिसने संयोगों से नाता तोड़ दिया। जिसकी दृष्टि एकत्व भावना वाली बन गई। वह केवल मोक्ष को देखता है। जिसकी एक दृष्टि बन गई, वह न इधर जाता है न उधर। वह सीधे चलते रहता है। तदनुसार मुझे भी केवल समभाव की आराधना में जाना है। मुझे संयोग से कोई लेना-देना नहीं है। साथियो! तत्त्वतः ऐसे मुनि को सुख ही सुख है। ऐसे मुनि को लेशमात्र दुख नहीं है। वह अनेकांत फलकामी नहीं है। वह एकांत फलकामी होता है।

अनंतनाथ भगवान की स्तुति में बताया कि क्रिया भले कितनी भी करो उसका एक फल होना चाहिए। एकांत फल वह है जिसका एक ही परिणाम होता है। जिसकी निष्पति होती है मोक्ष। अनेकांत फल यानी नरक भी

मिल जाए, निगोद में भी चला जाए। मनुष्य व देवगति में चला जाए। इस प्रकार अनेकांत फल जिसके होते हैं वह है संसार। जिसका एक ही फल होता है वह है धर्म। धर्म का फल है मोक्ष।

निकुंभ के एक भाई ने गुरुदेव के सामने गीत गाया कि **'कठी अटके रे भाया मती भटके, बैठो दांता वारो सामने कर दर्शन झटके'** उसने कहा कि कहीं भटको मत। अपना एक लक्ष्य बना लो और चलते रहो मंजिल मिलेगी। कहीं रुकावट नहीं आएगी।

हम अपने लक्ष्य से भटकते हैं। कभी इधर जाते हैं तो कभी उधर चले जाते हैं। जैसे कोई व्यक्ति कहता है कि दही खाऊं और कभी कहता है कि मही खाऊं। ऐसा लक्ष्य नहीं होना चाहिए। दुविधा में दोनों गए माया मिली न राम। न आयंबिल किया और न एकासन किया। खाली सोचने में लग गए कि करूं या न करूं। सोचते रहे कि आज नहीं करूं, कल कर लूंगा। आज थोड़ी गैस हो रही है कल पक्का कर लूंगा। ऐसे करते-करते टाइम निकल गया। वेला निकल गई। समय निकल गया और दोनों से ही हाथ धो बैठे। न माया मिली और न राम।

नमिराज कहते हैं कि ब्राह्मण देवता बाह्य आभ्यंतर परिग्रह छोड़ चुके मुनि को सुख-ही-सुख है। उसे लेशमात्र का दुख नहीं है। जग में यदि कोई सुखी है तो वीतरागी मुनि ही सुखी है। उससे बढ़कर कोई जीव सुखी नहीं है।

नमिराज अपनी बात इंद्र से कह रहे हैं। उनकी बात सुनकर इंद्र को लग गया कि यह तीर भी ठिकाने लगने वाला नहीं है। उसके आगे वे नया प्रश्न खड़ा करनेवाले हैं। आगे क्या समाधान होता है ये हम सब समय के साथ विचार करेंगे। अभी फिलहाल इतना ही कहते हुए विराम।

21 अक्टूबर, 2021

6

जहाँ मौत भी हारती है

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं...

धर्म हमारी दृष्टि को पैनी बनाता है, तीक्ष्ण बनाता है। सामान्यत: हमारी दृष्टि बाह्य पदार्थों को देखने वाली होती है। वह स्थूल पदार्थों को ग्रहण करने में समर्थ होती है। सूक्ष्म पदार्थों को ग्रहण करना हर किसी की दृष्टि में संभव नहीं है, किंतु धर्म दृष्टि का परिमार्जन करता है। धर्म की चर्चा करना भले ही आसान हो पर उसका आचरण करना बहुत कठिन है। दुरूह है। धर्म से जीने में कठिनाई आ सकती है, किंतु उसका परिणाम शुभकर होता है। धर्माचरण का फल मधुर होता है।

कल मैंने एक बात कही थी कि एक बहन ने मुनिराज से कहा कि मुनिराज! मैंने धर्म बहुत किया, बहुत धर्म साधा किंतु मुझे उससे लाभ कुछ नहीं मिला। मुझे उसका कोई फायदा नहीं हुआ। उससे मेरे हाथ कुछ नहीं आया। मुझे धर्म करने से पोता नहीं मिला। धर्म पोता देता है क्या? धर्म बेटा देता है क्या? धर्म क्या देता है?

यह मैंने कल ही स्पष्ट कर दिया था कि धर्म देता नहीं, बल्कि हमें जो प्राप्त है उसको भी हटाता है। हम प्राप्त करने की टोह में रहते हैं और धर्म उसे हटाने का प्रयत्न करता रहता है। हम धन को आने के लिए कहते हैं और धर्म कहता है इधर मत आओ। दोनों एक-दूसरे के विपरीत हैं। यह हमारे जीवन में बना रहता है। हम प्राप्त करने की आशा में रहते हैं कि यह भी मिल जाए, वह भी मिल जाए। बहुत सारा मिल जाए। कितना भी मिल जाए, उससे मन तृप्त हो जाएगा क्या? उनसे मन संतुष्ट हो जाएगा?

(लोगों ने कहा कि नहीं होगा)

मुझे नहीं लगता कि अगर आपको भारत का राष्ट्रपति भी बना दें तो आपका मन शांत हो जाएगा। अगर आपको यूएनओ का अध्यक्ष बना दें तो भी आपको तृप्ति नहीं होगी। यदि पूरे वर्ल्ड में आर्थिक दृष्टि से सबसे पहले आपका नाम आ जाए तो आपको खुशी हो सकती है, किंतु मन तृप्त हो जाए यह बहुत कठिन है।

'जहा लाहो तहा लोहो'

जैसे-जैसे लाभ होता है वैसे-वैसे व्यक्ति का लोभ बढ़ता जाता है। वह कहता है थोड़ा और... थोड़ा और... थोड़ा और। ध्यान रखना और का कोई छोर नहीं होता।

सछिद्र घड़े में कितना भी पानी डालें वह खाली ही रहता है। यही दशा है हमारे मन की है। उसमें कितना ही डालें वह भरता ही नहीं। इच्छाएं और आकांक्षाएं हमारे मन का छिद्र हैं। धर्म इच्छाओं को शांत करता है। इच्छाओं को दूर करता है। इच्छाओं को हटाता है। मन के छेद का निरोध करता है। हम अभिलाषा से बाहर निकल जाएंगे तो सच्चाई को जान पाएंगे कि आकाश कैसा है। आकाश को देखने के लिए बाहर आना पड़ेगा। ऊपर छत पर जाना पड़ेगा। मोह की छत के नीचे कभी भी वास्तविक सच्चाई के दर्शन नहीं कर पाएंगे।

बाई जी और संत की बात चल रही थी। उस संत ने बाई जी को सारी बात सुनाई तो बाई जी ने कहा कि म.सा. मैं सुबह-शाम व्याख्यान में आती, सेवा का लाभ उठाती थी। मैंने सक्रिय रूप से आराधना की, किंतु धर्म से मुझे कुछ नहीं मिला। मुझे पोता नहीं मिला।

मैं आप लोगों से पूछता हूँ कि आपको धर्म से क्या मिला? कोठारी जी आप बताओ आपको क्या मिला धर्म से? क्या मिला इस चौमासे से?

(कोठारी जी बोलते हैं कि मुझे तो बहुत मिल गया)

बहुत क्या मिल गया? आपने मासखमण की तपस्या की इसलिए मिल गया क्या? मासखमण की तपस्या से तो आप भूखे रहे। उससे आपको भूख मिली। भूखे रहने से क्या मिला?

(कोठारी जी ने कहा कि भूखे रहने से अपार खुशी मिली, आनंद मिला)

न खाने में आनंद है और न ही तपस्या में आनंद है। आनंद हमारी दृष्टि

में है। खाना खाते हुए भी आनंद में रह सकते हैं और तपस्या करते हुए भी दुखी हो सकते हैं। हमारी दृष्टि हमें सुखी–दुखी बनाने वाली है।

उस बहन ने धर्म की आराधना बहुत की होगी, किंतु उसने धर्म को समझा नहीं।

धर्म किया जा रहा है, किंतु धर्म के मर्म को समझा नहीं जा रहा है। हम जो क्रिया कर रहे हैं वह क्रिया धर्म नहीं है। आपकी समझ में बात आई या नहीं?

(लोगों ने कहा कि आ गई)

धर्म के नाम पर जो क्रियाएं हम लोग कर रहे हैं वे क्रियाएं धर्म नहीं हैं। वे धार्मिक क्रियाएं हैं। धर्म के लिए क्रियाएं हैं। इसका मतलब क्या हुआ? क्रियाओं से धर्म अलग है। मेरे भीतर धर्म पैदा हो इसके लिए क्रिया है। हारमोनियम, ढोल, तबला आदि संगीत नहीं है। उसमें संगीत भरा हुआ नहीं है, किंतु उनसे संगीत पैदा किया जा सकता है। वैसे ही धार्मिक क्रियाएं धर्म को पैदा करने वाली होती हैं। हमारी क्रियाएं धर्म को पैदा कर पाईं या नहीं यह बात अलग है। इस बात पर हमें समीक्षा करनी होगी कि हमारी क्रियाएं धर्म को पैदा करने में समर्थ हो पाईं या नहीं।

आपने देखा होगा कि तबला बजाने से पहले उसकी रस्सी कसी जाती है। वह रस्सी एकदम ढीली हो जाए तो तबला बजेगा नहीं। उसको एकदम तान दिया जाए तो भी नहीं बजेगा। जैसे साज को सजाना पड़ता है, वैसे ही धर्मक्रियाएं विधियुक्त करनी होती हैं ताकि भीतर धर्म पैदा हो सके। धर्म सत्य है। धर्म सहज है। धर्म कोमलता है। धर्म सरलता है। धर्म अहिंसा है। हम इनको कितने स्तर तक प्राप्त कर पाए हैं, यह हमारे लिए समीक्षणीय है। इसका शोध तब होगा, जब हमारे सामने कितना भी धन रहे, किंतु मन में लोभ नहीं आए, लालच पैदा न हो। हमारी मति तटस्थ बनी रहे। अन्यथा होता यह है कि धन देखते ही मन में लोभ पैदा हो जाता है। आप जा रहे हैं। चलते हुए आपने देखा कि 100 ग्राम सोने का एक बिस्किट या 100 ग्राम सोने की सिला पड़ी हुई है तो आपकी दृष्टि किस पर जाएगी?

(लोगों ने कहा कि सोने पर)

आप उसको उठा लोगे या नहीं?

(लोगों ने कहा कि उठा लेंगे)

पहले आप उठाओगे नहीं। पहले इधर-उधर देखोगे कि कोई देख तो नहीं रहा है। बोलो आप उसको सीधा ही उठाओगे या इधर-उधर देखकर उठाओगे?

(लोगों ने कहा कि इधर-उधर देखकर उठाएंगे)

अर्थात् उठाओगे तो सही, यह तय है।

(लोग हँसने लगे) उठाओगे बाद में। पहले देखोगे कि कोई देख तो नहीं रहा है। बाद में उठाने की कोशिश करोगे। कोई नहीं देख रहा है तो उसको उठाकर अपनी पॉकेट में डाल लिया। उसके बाद चलने की गति में फर्क आएगा या नहीं?

(लोगों ने कहा कि आएगा)

क्यों आएगा गति में फर्क?

ये बहुत सामान्य बाते हैं, किंतु इनसे हमारी वृत्ति का बोध होता है। यह बोध हो जाता है कि हमारे भीतर क्या बसा हुआ है? बोध किससे होता है? हमारी गतिविधियों से बोध हो जाता है। चाल से, व्यवहार से। 100 ग्राम की सिला उठाई या नहीं, उसके बाद में जो प्रतिक्रिया हुई उसने हमारी स्थिति को स्पष्ट कर दिया कि तुम्हारा मन चाहता क्या है। तुम करते क्या हो।

हो सकता है कि एक बार आपने उस सोने की सिला को इसलिए नहीं उठाया कि कोई मुझे देख रहा है। नहीं भी देख रहा है फिर भी आपने सोचा हो कि मैं क्यों उठाऊं। यह सोचकर आप आगे चले गए, किंतु मन में द्वंद्व मच गया कि यदि उठा लेता तो क्या फर्क पड़ता। मैंने नहीं उठाई पर कोई उठा ही लेगा। मैं चोरी तो कर ही नहीं रहा था। इस प्रकार वह चीज आपकी नहीं होते हुए भी उसकी तरफ झुकाव हो ही गया। उससे मन की शांति भंग हो गई। जब रास्ते में पड़ा हुई स्वर्ण खंड शांति को समाप्त कर सकता है तो उसके आने के बाद शांति बढ़ेगी या घटेगी? छिन्न-भिन्न होगी या मजबूत बनेगी?

(लोगों ने कहा कि छिन्न-भिन्न ही होगी, बढ़ेगी नहीं)

धीरे-धीरे मन, बुद्धि उसी परिग्रह में, धन में कुंठित हो जाती है।

एक कपड़ा मैंने अपनी मुट्ठी में बंद कर लिया। कपड़ा मेरी मुट्ठी में आ गया। उस कपड़े को मैं कितनी देर तक अपनी मुट्ठी में बंद करके रख सकता हूँ? एक घंटा, दो घंटा, पाँच घंटा या समझ लो पूरे दिन उसको अपनी मुट्ठी में बंद करके रख लिया। पूरे दिन बंद रखने के बाद जब मैं मुट्ठी को खोलना चाहूंगा तब क्या वह एकदम खुल जाएगी?

(लोगों ने कहा कि एकदम से नहीं खुलेगी)

एकदम नहीं खुल सकती। खोलने में थोड़ी कठिनाई होगी। उसी तरह हमने अपनी बुद्धि से, मन से, दिल से जिसको भी पकड़ लिया, उसको छोड़ पाना या उससे छूट पाना बहुत मुश्किल है। कठिन है, दुरूह है। क्योंकि न तो आप उसको छोड़ पा रहे हो और न ही उससे आप छुटकारा पा रहे हो। छुटकारा तब मिलेगा जब आप उसको छोड़ेंगे। कपड़ा हाथ से छूट भी जाए तो भी जरूरी नहीं कि वह मन से छूट गया।

कहीं इनकम टैक्स का छापा पड़ जाता है। इनकम टैक्स वाले ज्यादा संपत्ति न ले जाएं इसलिए आपस में समझौता करके इनकम टैक्स वालों को थोड़ी संपत्ति दे देते हैं, किंतु मन में टीस होती है कि मुझे उनको धन देना पड़ गया। बहुत बचाने के लिए कुछ देना पड़े तो उसे मंजूर कर लेते हैं। क्योंकि वैसा करने से बचाव हो जाएगा नहीं तो फँस जाएंगे। खुद भी बच जाएं और संपत्ति भी बच जाए, इसलिए 100 करोड़ रुपये की जगह 10-20 करोड़ देने के लिए तैयार हो जाते हैं।

10-20 करोड़ देने से 100 करोड़ का चालान कटने से बचाव हो जाए तो क्या करना ठीक रहेगा? 10-20 करोड़ देना ठीक रहेगा या 100 करोड़ का चालान कटाना ठीक रहेगा? 10-20 करोड़ मंजूर करोगे तो वह सच्चाई होगी या बेईमानी?

शांत मन से सोचें सच्चाई क्या है? सच्चाई अलग रहेगी तो मन में द्वंद्व पैदा होगा या नहीं। मन का द्वंद्व शांति-समाधि कैसे देगा। आनंदघन जी कह रहे हैं-

बीजो मन मंदिर आणुं नाही...

आनंदघन जी कह रहे हैं कि मैं दूसरी बात को, दूसरे विषय को अपने

मन में नहीं लाता। जो मेरा लक्ष्य बन गया है, जो मेरा ध्येय बन गया, मैं उससे विपरीत नहीं जाऊंगा।

एक बहन की बात चली थी, वह दुखी हो गई। क्योंकि वह अपने मन में दूसरी बात ले आई। उसके मन में आ गया कि मैंने इतना धर्म किया पर मुझे पोते की प्राप्ति नहीं हुई। उसके मन में भौतिक आकांक्षा हो गई कि मैंने इतना समय धर्म में लगाया तो मुझे इतना तो (पोता तो) मिलना ही चाहिए। मैंने इतना दान दिया तो मुझे उतना सम्मान तो मिलना चाहिए। बंधुओ! ये धर्म या दान नहीं है। ये सारे विनिमय हैं। धर्म कभी विनिमय नहीं करेगा। वह तो कुल्हाड़ी-फावड़ा चलाएगा। वह घटाता रहेगा, हटाता रहेगा। जितना भी जोड़ा उसको हटाएगा। जब तक तुम नहीं हटाओगे तब तक परिपूर्ण सुख नहीं मिलेगा। तब तक समाधि नहीं मिलेगी। जिसमें तुम सुख समझ रहो हो वह तुम्हारी भ्रांति है। जिस दिन भ्रांति टूटेगी, उस दिन वही दुख हो जाएगा।

सूपनखा कौन थी?

(लोगों ने कहा कि रावण की बहन थी)

सूपनखा ने लक्ष्मण से क्या कहा?

(लोगों ने कहा कि लक्ष्मण को शादी करने के लिए कहा)

सूपनखा ने बहुत सुंदर रूप बनाया था। उसने लक्ष्मण को शादी करने के लिए कहा तो लक्ष्मण ने उसको रिजेक्ट कर दिया। फिर वह राम के पास गई तो राम ने भी इनकार कर दिया। वह वापस लक्ष्मण के पास आई तो लक्ष्मण ने कहा कि तुम मेरे भाई के पास जाकर आई हो इसलिए मेरी माँ के समान हो गई हो क्योंकि भाभी माँ के समान होती है। हम इसको बारीकी से देखें। भले ही वह कितनी ही रूप वाली थी, किंतु उसका परिणाम क्या हुआ? उसके रूप को राम और लक्ष्मण दोनों भाँप गए। वे समझ गए कि यह सौंदर्य केवल फँसाने वाला है। वे जान गए कि यह रूप कुछ और ही है। असली रूप कुछ अलग ही है। बात समझ में आई या नहीं आई बोलो?

(लोगों ने कहा कि समझ में आ गई)

वैसे ही जिस लक्ष्मी को हम गले लगा रहे हैं उसको अच्छी तरह से देखना कि वह सर्प तो नहीं है? हमको डस तो नहीं जाएगी? हमारे मन को

जहरीला तो नहीं बना देगी? दिखने में उसका रूप बड़ा सुंदर है। जितना सौंदर्य उसका दिख रहा है उतनी सुंदरता उसमें है नहीं। उससे हमने अपने मन को कुरूप बना दिया है। हमारे मन को उसने कभी भी शांति नहीं दी, बल्कि हमारी शांति को छीना है। उसने हमको कभी भी शांति नहीं दी और न कभी दे पाएगी क्योंकि उसका स्वभाव भिन्न है। उसको चंचल कहा गया है। वह चंचल वृत्ति वाली है। चंचलता भय का प्रतीक है। हमारा मन चल-विचल हो रहा है तो उसका कारण यह लक्ष्मी है। जिसके भीतर चंचलता है उसके भीतर भय रहा हुआ है। धर्म भय को निकालने वाला है और लक्ष्मी आपको भय देने वाली है।

कभी आप अकेले यात्रा कर रहे हो, आपके पास सोना, आभूषण या धन नहीं है और कभी आप सौ करोड़ की संपत्ति या बेशकीमती हीरे लेकर यात्रा कर रहे हो तो आपको भय कौन-सी यात्रा में रहेगा? पहली यात्रा में आपके पास कुछ भी नहीं था और दूसरी यात्रा में आपके पास संपत्ति, बेशकीमती हीरे हैं तो आपको भय किस यात्रा में रहेगा?

(लोगों ने कहा कि दूसरी यात्रा में भय रहेगा)

हमको काया का भय नहीं है। माया का भय है। इतना स्पष्ट होते हुए भी हम नासमझ बने हुए हैं। हम जान-बूझकर भय को गले लगाने की कोशिश कर रहे हैं। इतना होने के बावजूद हमारी निगाह धन खोजती रहती है। हमारी निगाह ऐसी बन गई है कि थोड़ा और धन मिल जाए। थोड़ा और हो जाए।

ऐसी ही बात उस बहन की थी। वह धर्म करती थी और सोचती थी कि धर्म की आराधना से मेरे पोता हो जाए। ऐसी भ्रांति में बहुत सारे लोग हैं। बहुत सारे लोग मनौतियाँ मानते हैं कि ऐसा होगा तो मैं तेला कर लूंगा और ऐसा हो गया तो सारे परिवार वालों को गुरु के दर्शन करा दूंगा। वे अपने हित के लिए ये सब कुछ कर रहे हैं। वे धर्म की आराधना नहीं कर रहे हैं। धर्म की आराधना शुद्ध मन से होती है, उस प्रकार से की गई धर्म की आराधना ही सफल होती है। यदि कोई पोते या किसी अन्य चीज का हेतु बनाकर अपने परिवार वालों को गुरु का दर्शन करा रही है तो वह धर्म आराधना नहीं है। जो यह मानकर धर्म आराधना कर रहे हैं उनका हेतु सही नहीं है, गलत है। ऐसी मनौतियाँ नहीं होनी चाहिए। ऐसा हमारा हेतु नहीं होना चाहिए। परिवारवालों

को संत दर्शन कराने का कार्य अच्छा हो सकता है, लेकिन इस तरह का उद्‌देश्य रखते हुए दर्शन कराने की दिशा गलत है।

धर्म निष्काम भाव से होना चाहिए। उसमें किसी प्रकार की कोई कामना नहीं होनी चाहिए। कुछ भी प्राप्ति की आशा नहीं होनी चाहिए। ऐसी धर्म आराधना ही परिणाम देने वाली होती है। वही आराधना, वही धर्म भीतर को बदलने वाला होगा। उसी से दृष्टि बारीक बनेगी। दृष्टि सूक्ष्म बनेगी। उसी से दृष्टि पैनी बनेगी। उसी से दृष्टि गहरी बनेगी। अन्यथा ऊपर-ऊपर से धर्म करते रहेंगे। ऊपर-ऊपर से खाली तरंगें मिलती हैं।

समुद्र में तरंगें बहुत उठती हैं। वे तरंगें हवा के प्रभाव से उठती हैं। समुद्र में जाने से ही मालूम पड़ेगा कि समुद्र कितना गंभीर है। ऊपर-ऊपर से समुद्र को देख रहे हो और कह रहे हो कि समुद्र बहुत चंचल है। ऊपर-ऊपर से उसकी पहचान कर रहे हो और कह रहे हो कि समुद्र बहुत चंचल है। उसमें बहुत लहरें उठती हैं। पर ध्यान रखना कि उन लहरों को थामने की ताकत समुद्र में ही है। किसी कुएं और तालाब में नहीं है। लहरों को थामने का सामर्थ्य समुद्र में होने से वह गंभीर बना रहता है।

संत और बहन की बात अभी पूरी नहीं हुई है। संत ने बहन से कहा कि बाई जी यह बताओ कि आपका लड़का कैसा है?

बाई जी ने कहा कि बावजी धर्म के प्रताप से मुझे ऐसा बेटा मिला है जो देव पुरुष है। जहाँ मैं कहती हूँ वहीं खड़ा हो जाएगा।

संत ने पूछा कि आपकी पुत्रवधू कैसी है? तो कहा कि बावजी धर्म के प्रताप से वह विनयी है, आज्ञाकारी है। मेरी हर बात मानने वाली है। मुझसे बिना पूछे एक कदम भी इधर से उधर नहीं रखती। एकदम सती सावित्री है। उसने कहा कि बावजी, यह धर्म का प्रताप है, मेरा पुण्य है जो मुझे ऐसा बेटा-बहू मिले हैं।

संत ने पूछा कि आपके पड़ोस की पुत्रवधू कैसी है?

उसने कहा कि बावजी, उसका नाम मत लो। रोज उसके घर में क्लेश होती रहती है। वह किसी का कहना नहीं मानती है। अपनी मनमर्जी से चलती है।

संत ने उससे पूछा कि उसका लड़का कैसा है?

बहन ने कहा कि उसके लड़के का म.सा. क्या बताऊं। जब तक मुँह बंद रहता है, तब तक ठीक है। मुँह खुलने पर वह क्या-क्या नहीं बोलता। वह सारे व्यसनों का सेवन करता है। ऐसा एक भी व्यसन नहीं है जिसका वह आदी नहीं हो। उसके घरवाले परेशान हैं। सारे दिन लड़ाई होती रहती है।

म.सा ने पूछा कि क्या कारण है कि तुम्हारे पड़ोसी को वैसा बेटा-बहू मिले और तुम्हें ऐसा बेटा-बहू?

उसने कहा कि म.सा. ये तो मेरे धर्म का प्रताप है। मेरी पुण्यवानी है।

संत ने कहा कि धर्म से बेटा बढ़िया मिल गया, बहू आज्ञाकारी, सुशील मिल गई और एक पोता नहीं मिला तो कह दिया कि धर्म में क्या पड़ा है। संत ने कहा कि ध्यान रखना, ये सब धर्म से नहीं मिलते हैं। बेटा-बहू आज्ञाकारी हैं, यह सब पुण्यवानी का खेल है। धर्म इससे एकदम भिन्न है। धर्म दिखता नहीं है, किंतु भीतर काम करता है। पुण्य दिख जाता है। पाप दिख जाता है। कठिनाई दिख जाती है। किसी का आभूषण दिख जाता है, रूप लावण्य दिख जाता है, मकान दिख जायेगा, बिल्डिंग दिख जायेगी। किंतु धर्म दिखता नहीं। धर्म अदृश्य है। धर्म रूह-रूह में रमेगा। कण-कण में रमेगा, वह जीवन को रूपांतरित करने वाला बनेगा।

बात बहन को समझ में आ गई कि मेरी सोच सही नहीं थी। मेरी पकड़ गलत थी। यह समझ उलटी थी कि धर्म से पोता नहीं मिला तो और कुछ भी नहीं मिलने वाला। हकीकत में ये सारी चीजें पुण्यवानी और संयोग से मिलने वाली हैं और धर्म कहता है कि संयोग का त्याग करो। नमिराज उसी धर्म की दिशा में अग्रसर हैं।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय, जय, जय, जयकार...

राजर्षि ने उस ब्राह्मण रूपधारी शक्र को कहा कि संयोग का त्याग करना मुनि का धर्म है, मैंने भी मुनित्व धारण करने का संकल्प किया है। मैंने जान लिया है कि संयोग कभी भी सुख देने वाले नहीं होते। भले ही थोड़ी देर के लिए सुख देने जैसा लगे, किंतु वह सुख नहीं सुखाभास है। जब संतान नहीं थी तो बड़े दुखी थे, बड़ी चाह थी कि संतान हो जाए। संतान हो गई। वह लूला-

लंगड़ा हो गया तो भी दुख है कि ऐसी संतान हो गई। संतान बहुत रूपवान है। उसका चेहरा सुंदर है, किंतु बाप कहता है कि बेटा ऐसा कर तो वह कहता है कि ऐसा नहीं करूंगा। बाप जिस कार्य के लिए मना कर रहा है बेटा वही कार्य सबसे पहले करेगा। अब वह बाप सुखी है या दुखी?

(लोगों ने कहा कि वह बाप दुखी है)

संतान से यदि सुख होता तो संतान होने के बाद बाप को सुखी हो जाना चाहिए था। वस्तुत: जितने भी संयोग हैं उनका अंत वियोग रूप होता है।

नमिराज कहते हैं कि संयोग कभी भी सुख देने वाले नहीं हैं। उनसे कभी सुख पैदा नहीं होता है। उससे दुख ही पैदा होता है। जिसकी परिणति दुख रूप है उसको मैं स्वीकार कैसे करूँ। इसलिए मिथिला के जल जाने से मेरा कुछ नहीं जल रहा है। मुझे अब इन सबसे कोई लेना-देना नहीं है।

राजर्षि के वचन सुनने के बाद ब्राह्मण रूपधारी शक्र ने दूसरी बात रखी। नमिराज उसकी बात शांति से सुनते हैं। शांति से सुनना बहुत महत्त्व की बात है। जीवन व्यवहार की बात है। समुदाय की बात है कि कोई कुछ बात कह रहा है तो सबसे पहले उसकी बात को शांति से सुना जाए। वह बात चाहे मन के अनुकूल हो या प्रतिकूल, कैसी भी हो उस बात को सुनना है। बहुत शांति से उस बात को सुनिए। यदि आपके पास सुनने का समय न हो तो आप स्पष्ट कहें कि अभी मेरे पास समय का अवकाश नहीं है। यथासमय देखा जाएगा। नमिराज बहुत शांति से बात को सुन रहे थे। उन्होंने हलचल नहीं दिखाई।

बहुत-से लोगों में ऐसा भी होता है कि वे जब किसी की बात सुनते हैं तो उनके भीतर उफान आने लगता है। बीच में बोलने की कोशिश करने लगते हैं। सामने वाले को रोकने की कोशिश भी करते हैं। उसकी बोली बंद करने की कोशिश करेंगे और उत्तर देना शुरू कर देंगे। ऐसा नहीं होना चाहिए। उत्तर देने से पहले उसकी पूरी बात को सुनें, समझें कि वह कहना क्या चाह रहा है। उसके बाद जो उत्तर देना है, उसे शांति से दें। जैसे शांति से सुना वैसे ही शांति से उत्तर देने की कोशिश करनी चाहिए। कैसी भी स्थिति में शांति हटनी नहीं चाहिए। उत्तेजना से उत्तर देने पर उस बात का प्रभाव जीरो हो जाता है। उसका महत्त्व

समाप्त हो जाता है। उसका प्रभाव जीरो हो जाएगा। किस कारण से जीरो हो जाएगा।

(लोगों ने कहा कि उत्तेजना के कारण से)

नमिराज उस बात को शांति से सुनते हैं। ब्राह्मण कहता है कि राजन आप अभी मिथिला की रक्षा करने में समर्थ हो। आपको पहले पूरी सुरक्षा का इंतजाम करना चाहिए। आपकी संतान वीर है, इसमें कोई बात नहीं है, फिर भी अभी उसका अनुभव आपके जैसा नहीं है। आप इतने वर्षों तक उस नगरी में जीए हैं इसलिए आपका अनुभव है। अपने अनुभव के आधार पर पहले मिथिला को ऐसा चाक-चौबंद कर दें कि कोई दुश्मन उस पर नजर नहीं गड़ा सके। इसके लिए आप दुर्ग बनवाएं, द्वार बनवाएं। ऐसा द्वार बनवाएं कि बंद करने के बाद कितने भी हाथी उस पर टूट पड़ें, दरवाजा टूटे नहीं, दरवाजा खुले नहीं। दुर्ग पर कब्जा करने में कोई सक्षम न हो सके। जैसे भरत आदि राजाओं ने अपने-अपने नगरों को सुरक्षित किया वैसे ही आप भी इस मिथिला को सुरक्षित बना दें।

यह बात कौन कह रहा है?

(लोगों ने कहा कि यह बात ब्राह्मण रूपधारी शक्रेंद्र कह रहा है)

नमिराज ने उसकी बात ध्यान से सुनी। ध्यान से सुनने के बाद उन्होंने क्या उत्तर दिया उसको समझने की आवश्यकता है। यदि वे जल्दी में आधी-अधूरी बात सुनकर उत्तर देना शुरू कर देते तो संभव है बहुत महत्त्वपूर्ण बात छूट जाती।

दुर्ग सुरक्षित स्थान माना गया है। बहुत मजबूत होता है। उसमें रहने वाले लोग सुरक्षित होते हैं। लेकिन ध्यान रहे, उसमें रहने वाले दुश्मनों से तो सुरक्षित हो सकते है, किंतु मौत से, रोग से, बुढ़ापे से नहीं। क्या कोर्ट और किले मौत से, रोग से, बुढ़ापे से सुरक्षित कर पाएंगे? क्या उनसे हमारी सुरक्षा हो जाएगी?

(लोगों ने कहा कि नहीं यह तो आने वाले हैं)

मौत और बुढ़ापे से कोई नहीं बचा सकता। किले में रहने वाला कोई रोगी नहीं होगा, कोई बीमार नहीं होगा, किले में मौत नहीं आएगी, ऐसा संभव

नहीं है। यदि कोई ऐसा स्थान मालूम पड़ जाए कि जहाँ पर रहने से कभी मौत आ नहीं सकती, तो अमर हो जाएंगे।

बहुत सपंत्ति का मोह रखना या संपत्ति से उस स्थान का रिजर्वेशन करा लेना?

(लोगों ने कहा कि रिजर्वेशन करा लेना चाहिए)

कहाँ पर रिजर्वेशन कराएं? मंगल ग्रह पर या चाँद पर? रिजर्वेशन कहाँ कराएं यह आपको विचार करना है।

(लोगों ने कहा कि हमें सिद्ध सिला पर रिजर्वेशन कराना है। सिद्ध सिला मतलब जहाँ पर मौत नहीं आएगी)

(एक श्रावक ने कहा कि सिद्ध भगवान के पास जाने से जीवन का जन्म-मरण नहीं होता)

यह किसने कह दिया?

जहाँ सिद्ध भगवान हैं वहाँ भी जीवों का जन्म-मरण होता रहता है, किंतु सिद्ध भगवंतों का जन्म-मरण नहीं होता। सिद्ध सिला पर चले जाने से मृत्यु नहीं टलेगी। सिद्ध बनने पर मृत्यु टलेगी। सिद्ध भगवंतों के बीच जाकर छिप जाएंगे तो भी मौत से नहीं बच पाएंगे। वहाँ भी मौत आपको खोज लेगी। कहीं भी आपका बचाव नहीं है। सिद्ध बनने के बाद मौत के हाथ-पैर बँध जाते हैं। वहाँ पर उसका वश नहीं चलता। यदि सिद्ध बनकर जगह सुरक्षित करनी है तो वह असंभव नहीं है। यहाँ रहते हुए भी बुकिंग हो सकती है। यहाँ रहते हुए भी फाइनल हो जाता है कि अमुक जगह से मुझे सिद्ध होना है। यह जगह मेरी सुरक्षित है। जगह सुरक्षित कराने की जिम्मेदारी आपकी है। आप चाहो तो जगह सुरक्षित हो सकती है।

जब तक दृष्टि पाने में रहेगी, संग्रह करने की रहेगी, थोड़ा और, थोड़ा और में रहेगी तब तक उस छोर को प्राप्त नहीं कर पाओगे, जहाँ मृत्यु जा नहीं सकती। नमिराज जवाब देते हैं कि-

हे ब्राह्मण देव, आप कह रहे हो कि मैं दुर्ग बनाऊं, दरवाजा बनाऊं, कोट बनाऊं, किंतु इन सबसे मेरी सुरक्षा नहीं हो सकती। मेरे लिए सुरक्षित यह नहीं है। उन स्थानों पर भी मौत आ जाएगी। मैंने ऐसा दुर्ग, किला बनाने का

सोचा है या बनाया है कि जहाँ पार मौत हावी नहीं हो सके। श्रद्धा का मैंने नगर बसाया, सम–संवेग का द्वार बनाया और संवर रूपी अर्गला लगा दी है, जिसको तोड़ने की क्षमता किसी में नहीं है।

यदि हमने वास्तविक रूप से स्वयं को संवृत्त किया है, अपने आप को संवर की ढाल से सुरक्षित किया है तो वहाँ पर कर्मों का वश नहीं चलेगा। कर्म उसमें प्रवेश नहीं कर पाएंगे। किंतु हम खुले रह जाते हैं। अभी जिसने तीन करण, तीन योग के सारे दरवाजे खुले रख रखे हैं, नौ–दस खिड़कियों में से एक खिड़की बंद कर भी दी तो क्या होगा? बाकी खिड़कियों से धूल आती रहेगी।

संवर, अर्गला के समान मजबूत है, जिसको सहसा कोई तोड़ने में समर्थ नहीं हो पाता। क्षमा का कोट बनाया और मन, वचन, काया की तोप लगा दी जिससे मेरा नगर इतना सुरक्षित हो गया, मेरा जीवन इतना सुरक्षित हो गया कि मिथ्यात्व आदि मेरे पर हावी नहीं हो सकेंगे। इनसे मैंने अपने जीवन को अजेय बना दिया है, इतना सुदृढ़ बना दिया कि इस श्रद्धा रूप नगर में अब मिथ्यात्व प्रवेश नहीं कर पाएगा। मेरा कोट इतना मजबूत बन गया व मैंने अपने मन, वचन, काया की गुप्ती कर ली है कि कैसा भी अवसर आ जाए मेरा मन खंडित नहीं होगा, कैसी भी स्थिति बन जाए मेरा मन खंडित नहीं होगा। मेरे मन, वचन, काया इतने कुशल हो गए हैं कि कोई भी मेरा कुछ भी बिगाड़ने वाला नहीं बनेगा। भयंकर शत्रु मिथ्यात्व है, जब उसका भी वश नहीं चलेगा तो दूसरे किसी का वश चलना कहाँ से चल पाएगा अर्थात् नहीं चल पाएगा।

वासुदेव अजेय होते हैं। उनको पराजित करने वाला कोई नहीं होता। वे केवल कर्म और आयु से पराजित होते हैं। किसी राजा में ताकत नहीं कि उनको पराजित कर सके। वे अपने आप पराजित होते हैं। मरण उनका भी होता है। चक्रवर्ती अपने आप में सर्व समर्थवान होते हैं। उनको भी कोई पराजित करने में समर्थ नहीं होता। राजा या कोई अन्य उनको हराकर उनके राज्य पर अधिकार जमा ले ऐसा नहीं होता, फिर भी वे अजेय नहीं हैं। वहाँ पर भी मृत्यु का जोर चलेगा और एक दिन मृत्यु उनको मौत के घाट उतार देगी।

नमिराज ने अपनी बात कही। आगे क्या बात होती है, वे क्या प्रस्तुत करते हैं, किस प्रकार से प्रस्तुत करते हैं और शक्र कौन–से प्रश्न पूछते हैं, ये

केवल सुनने के हिसाब से मत सुनना, बल्कि ऐसा विचार करना कि हम सुरक्षित होना चाहते हैं तो सुरक्षा का उपाय क्या है?

दस प्रकार के धर्म यदि जीवन में आएंगे तो वे सुरक्षित करेंगे। मन, वचन और काया की गुप्ति से अपने आपको सुरक्षित कर लेते हैं तो कोई भी शक्ति पछाड़ने में समर्थ नहीं हो पाएगी। इस तरह का विचार, चिंतन, मनन करते हुए अपने मन को सुदृढ़ बनावें, अपने मन को गुप्त करें, जिससे मन, वचन और काया की रक्षा हो सके। ऐसा प्रयत्न करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

22 अक्टूबर, 2021

साधुमार्गी पब्लिकेशन

7

बीज, बीज नहीं वटवृक्ष है

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं...

हम चाहते हैं कि हमारे जीवन में परेशानी नहीं आए। समस्याएं नहीं आएं, पर सोचना यह है कि समस्याओं का जन्म कहाँ से होता है, परेशानी पैदा कहाँ से होती है! इसकी खोज करना बहुत महत्त्वपूर्ण बात है।

जब खोज करेंगे तो आश्चर्य होगा कि मन में उसकी पैदाइश है। मन उसको पैदा करता है। अनसुनी बातों को मन में भरने से, मन में जमा लेने से परेशानियाँ आती हैं, समस्याएं आती हैं, दुविधाएं खड़ी हो जाती हैं।

भगवान महावीर ने कहा कि

'संजोगा विप्पमुक्कस्स अणगारस्स भिक्खुणो...'

अर्थात् संयोग दुख देने वाले होते हैं। कष्ट देने वाले होते हैं। पीड़ा देने वाले होते हैं। संयोग कभी बड़े मधुर भी लगते हैं, किंतु उनका माधुर्य शहद लिपटी तलवार के समान है। शहद मीठा लग सकता है, किंतु तलवार जिह्वा को काट देती है।

आचार्य पूज्य नानालाल जी म.सा. के साथ डॉक्टर नेमीचंद जैन ने 24 घंटे बिताए। 24 घंटे साथ रहने का मतलब यह नहीं कि वे दिन-रात साथ में रहे। भिन्न-भिन्न समयों में वे एक घंटा, आधा घंटा या दो घंटे रहते हुए कुल-मिलाकर 24 घंटे साथ रहे। गुरुदेव का सान्निध्य प्राप्त करके नेमीचंद जी ने एक निष्कर्ष निकालकर गुरुदेव को '**आगम पुरुष**' के रूप में निरूपित किया। किसी ने कहा कि आपने उनको आगम पुरुष कैसे कह दिया, यह तो बहुत ऊँची बात हुई तो नेमीचंद जी ने उनसे कहा कि मैं उनके साथ 24 घंटे जीया हूँ। 24 घंटे जीने के बाद मुझे अनुभव हुआ कि उनमें आगम की झनकार झंकृत होती है। वे

एकदम सहज हैं, सरल हैं। उनमें कोई दिखावा नहीं है। उन्हें पद, प्रतिष्ठा या प्रशंसा की चाह नहीं है।

ये तीन चीजें परेशान करती हैं। जहाँ पद, प्रतिष्ठा या प्रशंसा की चाह जगेगी वहाँ पर परेशानी पैदा होगी। इसलिए उनकी चाह न जगे ऐसा प्रयत्न होना चाहिए। यदि पद प्राप्त होता है तो उसमें जुड़ें नहीं, उससे किनारा बनाए रखें।

पद, प्रतिष्ठा और प्रशंसा से किनारा बनाए रखें। उनसे अलग ही रहें। उससे जुड़ें नहीं, अपितु अपने कर्तव्य को सशक्त बनाएं। अपने कर्तव्य को, अपने कर्म को भूलें नहीं। अपना कर्तव्य निभाते चलें। अपना दायित्व, अपनी जिम्मेदारी निभाना अपना लक्ष्य होना चाहिए। पद, प्रतिष्ठा और प्रशंसा कुछ भी नहीं है। हालांकि यह बड़ी मनमोहक लगती है। प्रशंसा सुनने के लिए कान खड़े होते हैं, किंतु जो उनमें डूबेगा वह तिर नहीं पाएगा। प्रशंसा से उपरत रहने वाला तिर जाता है। उसमें डूबने वाला बह जाता है। वह तिर नहीं सकता।

नाना गुरु ने ये बातें बहुत अच्छी तरह से समझी और जानी थीं। न केवल समझा और जाना, बल्कि उसे जीया भी। गुरुदेव ने जब अपने गुरु से आगम वाचना ली तो केवल शब्दों का उच्चारण नहीं हुआ, व्यवहार का उच्चारण नहीं हुआ। उन्होंने उनके साथ जीना सीखा।

संजोगा विप्पमुक्कस्स...

अणगार की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि जो संयोगों से मुक्त होता है वह अणगार होता है। जो भिक्षु होता है उसकी चर्या विनय की होती है। विनय चर्या का मतलब केवल झुक जाना नहीं है। इसका मतलब बहुत विशाल है। बहुत ऊँचा है। उसकी चर्या का पूरा लक्ष्य कर्म क्षय करने का होता है। कर्म क्षय होंगे तो मुक्ति स्वत: मिलेगी। मुक्ति की इच्छा करने के बजाय अपने कर्म पर विचार करो और उनको नष्ट करने का विचार बनाओ। कर्म बंधन की प्रक्रिया संसार से जुड़ी हुई है। जब तक उसका परिमार्जन नहीं होता, तब तक यह रुकने वाली नहीं है। संयोग, संयोग को जोड़ता है, वह और संयोगों को मिलाने की कोशिश करता है। संयोग कोशिश करेगा कि थोड़ा और बढ़ाओ, और बढ़ाओ।

जब तक हम विस्तार की भूमिका में रहेंगे, तब तक कर्मबंध की प्रक्रिया से मुक्त नहीं होंगे। संयोग हमसे विस्तार की बात करता है, किंतु संयोग को हम अपने आप ही जोड़ लेते हैं, हम उसके अधीन होते हैं। इसलिए भगवान ने कहा कि यदि तुम सुख चाहते हो, मुक्ति चाहते हो, कर्मों का क्षय करना चाहते हो तो निस्पृह बनो, निष्काम साधना करते रहो, निष्काम भाव से आगे बढ़ते रहो। सीधे चलते रहो। न प्रशंसा की चाह करो, न प्रतिष्ठा के भाव बनाओ और न ही पद की इच्छा रखो। पद, प्रतिष्ठा और प्रशंसा की चर्चा हमने पहले भी की कि युवाचार्य पद के लिए गुरुदेव का नाम आया तो उन्होंने पूज्य आचार्य गणेशलाल जी म.सा. से निवेदन किया कि भगवन् इस पद पर सेवाभावी, क्षमाशील करणीदान जी म.सा. को नियुक्त करना ज्यादा ठीक रहेगा। मैं उनके चरणों में रहकर दायित्व निर्वाह करूंगा। यह बात अलग है कि उनकी भावनाओं को महत्त्व नहीं मिला।

'गुरुणामाज्ञामविचारणीया'

गुरु की आज्ञा अविचारणीय होती है, अर्थात् उस पर अपनी बुद्धि लगाने की जरूरत नहीं होती। गुरुदेव पद, प्रतिष्ठा और प्रशंसा से जितने बचते रहे वे तीनों चीजें उतनी ही उनके पीछे दौड़ती रहीं। मैंने अपनी दीक्षा के बाद ऐसा कभी नहीं देखा जब उन्होंने गर्व किया हो कि मैं आचार्य हूँ।

सीताराम जी बलाई नागदा में दर्शन के लिए खड़े थे। गुरुदेव ने कहा कि क्या बात है तो वे कहने लगे कि गुरुदेव हम लोग बलाई जाति के हैं। हिंदू लोग हमसे घृणा करते हैं, हमारे साथ दुर्व्यवहार करते हैं और मुस्लिम लोग हमें अपनाने के लिए तैयार हैं। गुरुदेव हमारी एक लाख की संख्या है, हम जहाँ भी जाएंगे एक साथ जाएंगे। एक साथ मुड़ेंगे। सीताराम जी ने यह बताया कि यहाँ से नजदीक ही गुराडिया गाँव है, जहाँ 70 गाँवों के हमारे प्रतिनिधि इकट्ठा होने वाले हैं। उन्हें आप उपदेश दे सकें तो हम निहाल हो जाएंगे। गुरुदेव एक संत को साथ ले निर्धारित समय पर पधार गए। गुरुदेव ने धर्मनाथ भगवान की प्रार्थना करते हुए उन्हें प्रतिबोधित किया।

गुरुदेव ने कहा कि जो काला तिलक लगा हुआ है उसको दूर करो। अपना खान-पान सुधारो। अपना रहन-सहन सुधारो। खान-पान, रहन-सहन

सुधरेगा तो अपने आप काला तिलक धुलता चला जाएगा। उन लोगों ने एक साथ खड़े होकर प्रतिज्ञा ग्रहण कर ली कि अब से हम मांस–मीट का सेवन नहीं करेंगे। शराब का सेवन नहीं करेंगे। उसके पश्चात् गुरुदेव ने एक–एक गाँव में घूमकर साढ़े सत्रह हजार लोगों को प्रतिज्ञाबद्ध कराया, त्याग दिलाया। जहाँ एक मनुष्य को त्याग दिलाना बहुत कठिन काम होता है, वहाँ साढ़े सत्रह हजार लोगों को त्याग दिलाना सामान्य बात नहीं है। यह बहुत बड़ा परिवर्तन था। युगांतकारी परिवर्तन था। हमारे लिए भले ही उसकी पूछ न हो यह बात अलग है। यदि हम अन्य क्षेत्र में विचार करें तो इसका मायना बहुत बड़ा रहता है फिर भी आचार्यदेव के मन में यह बात नहीं आई कि मैंने ऐसा कर दिया। यह बात नहीं आई कि मैंने इतना कुछ कर दिया।

बहुत सारी बातें हैं। बहुत सारे विषय हैं। आप लोगों में से बहुत लोगों ने अनुभव किया है, क्योंकि बहुतों ने उनका दर्शन किया, उनका सान्निध्य लाभ लिया। उनकी निष्पृहता, उनकी साधना सदैव हमारे मानसपटल पर बनी रहे। समता उनका पर्यायवाची बन गया था। वे समता विभूति बन गए। समता को उन्होंने जीया। आचार्य पद प्राप्त होते ही उनके मन में एक विचार स्फुटित हुआ कि तुम जिस दायित्व के पथ पर आए हो, वहाँ पर कोई भी आकर पूछ सकता है कि म.सा. हम कैसा जीवन जीएं। हमारे लिए आप दिशा निर्देश दें। हमारा मार्गदर्शन करें। उनके मन में समता दर्शन और व्यवहार पर चिंतन उभरा। अपने विचारों को उन्होंने कागज पर नोट कर अपने पास रख लिया ताकि कोई भी जिज्ञासु आकर पूछे कि म.सा. हम कैसे जीएं तो उसे बोध दिया जा सके।

इलाहाबाद कॉलेज में अध्ययन करने वाला दर्शनशास्त्र का छात्र एक बार गुरुदेव के दर्शन करने के लिए आया। उसने आचार्यश्री से जीवन जीने के बारे में पूछा तो आचार्यश्री ने अपने पास रखे हुए कागजों को पढ़ाया और कहा कि सच्चा जीवन जीने का यह उपाय है। उसने गुरुदेव से कहा कि ये तो बहुत ऊँची चीजें हैं। इसको कॉलेज बुक के रूप में लगाना चाहिए। इसे पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए। उसने कहा कि यह हर छात्र के लिए, हर इनसान के लिए बहुत आवश्यक है। बहुत महत्त्वपूर्ण है।

हमने समता दर्शन और व्यवहार को क्या जाना ?

छगन जी शास्त्री बीकानेर के जाने-माने विद्वान थे। एक बार अपने भाषण में, अपने व्याख्यान में उन्होंने कहा कि 'समता दर्शन और व्यवहार' पुस्तक समग्रता लिए हुए है। उसमें कुछ भी छूटा नहीं है। काफी समय तक ब्यावर में रहे डॉक्टर कमल सोगाणी ने कहा कि यह पुस्तक तो मेरे लिए गीता है। जब तक इसका एक पेज नहीं पढ़ लूं, तब तक मुझे चैन नहीं पड़ता। डॉक्टर शिवा शंकर त्रिवेदी ने कहा कि सारा विश्व जलने लगे, उस समय मुझसे कोई कहे कि आप क्या बचाना चाहोगे तो मैं कहूंगा कि पूज्य आचार्य भगवन् का ग्रंथ (समता दर्शन और व्यवहार) बचाना चाहूंगा। उन्होंने कहा कि यह ग्रंथ बचेगा तो मानवता की पुन: संरचना हो सकेगी।

क्या है उस ग्रंथ में ? हमने क्या पाया उस ग्रंथ से ?

जैसी जिसकी दृष्टि होती है वैसा उसको मिलता है। हमारी दृष्टि गहरी नहीं होगी तो हम उसको पहचान नहीं पाएंगे। रत्न हमारे सामने पड़े हुए हैं, पर हम उनकी खोज कर रहे हैं। क्योंकि हमें उनकी पहचान नहीं है। पहचान नहीं होने से वे हमारे लिए पत्थर, कोयला या काँच के कंचे के समान हैं। हमारे लिए उनकी कोई कीमत नहीं है। गाय और भैंस के सामने रत्नों को रख दें तो वे उसे सूँघकर चली जाएंगी। उनको रत्नों से कोई मतलब नहीं है। जो रत्नों को पहचानते हैं उनके लिए उसका मूल्य हो सकता है।

एक सेठ के प्रतिष्ठान की कई ब्रांचें थीं। एक ब्रांच में सेठ का चहेता मुनीम था। वहाँ खर्चा भेजना पड़ता था। आवक कुछ नहीं थी। मुख्य मैनेजर ने इस संबंध में कई बार सेठ से निवेदन भी किया, पर सेठ यही कहकर टाल देता कि जो हो रहा है, अच्छा ही हो रहा है। एक बार मैनेजर ने जोर देकर कहा कि सेठ सा. आप उस ब्रांच पर इत्तिला करें कि वहाँ जो भी राशि इकट्ठी हुई है, उसे भेजे। कहानी लंबी है। ब्रांच में कार्यरत चहेते मुनीम ने मखमल के कपड़े में पैक करके एक प्रस्तर भेजा। मैनेजर ने सेठ से वह प्रस्तर खंड बताते हुए कहा कि वहाँ से यह पत्थर आया है। सेठ, मैनेजर के मनोभावों को समझ गया। उसने शांत भाव से कहा कि ऊपर जाने के जो पगथिए हैं उनमें से एक टूट गया है। यह पत्थर शायद वहाँ फिट हो जाएगा। इसे वहाँ फिट कर दिया जाए। वैसा ही किया गया।

कुछ समयांतर से एक जौहरी का आना हुआ। वह उन्हीं पगथियों के रास्ते ऊपर जा रहा था। उस प्रस्तर को देख उसके पैर ठिठक गए। उसने सेठ से कहा कि यह पत्थर विक्रय करना है क्या? यदि बेचना हो तो मैं सवा लाख रुपये दे सकता हूँ। सेठ ने कहा कि यह अन्य ब्रांच से आया हुआ है। वहाँ से जानकारी प्राप्त किए बिना विक्रय नहीं कर सकता। उस जौहरी ने कहा– मित्र तुमको मालूम है। इसमें पाँच कीमती हीरे हैं, जिनकी कीमत लाखों में आँकना भी मुश्किल है। सेठ सुनकर अवाक् रह गया। किसी के भीतर कैसे रत्न भरे हुए हैं, उसको देखने वाला ज्ञान जिसके पास हो वही बता सकता है। एक कैमरा होता है और एक होती है एक्स–रे मशीन, सी.टी. स्कैनर। कैमरा केवल ऊपर की आकृति को दिखा देगा, किंतु एक्स–रे और सी.टी स्कैन मशीन भीतरी स्थितियों को बताएगी। उसकी दृष्टि बहुत पैनी है। इसी प्रकार जिसकी दृष्टि परिकर्मित है, पैनी है वह पहचान लेगा कि किस पत्थर में क्या भरा हुआ है। जैसे वह जौहरी उस पत्थर को देखकर जान गया कि इसमें क्या है, वैसे ही आचार्य श्री नानेश ने पैनी निगाह से समता दर्शन और व्यवहार को आम पब्लिक के लिए प्रस्तुत किया।

सारे लोग गहन आगमों का अध्ययन कर सकें यह संभव नहीं है। उन लोगों के लिए समता दर्शन और व्यवहार सार संक्षेप है। समता, दर्शन और व्यवहार में समता सिद्धांत दर्शन, समता जीवन दर्शन, समता आत्म दर्शन और समता परमात्म दर्शन चार विभाग हैं। चार अनुच्छेद हैं। ये चारों समग्रता लिए हुए हैं। इसको चार विभागों में इस प्रकार विभक्त किया गया है कि मनुष्य जीवन की सारी समस्याओं का समाधान हो जाए। पूरे विश्व की समस्याओं का समाधान इससे संभव है।

हमारे पास समता दर्शन और व्यवहार है। इसमें केवल बातें नहीं हैं। इसमें जीवन की सच्चाई है। वह सच्चाई आचार्यश्री के साथ जीवन में जुड़ी हुई थी। जो जीवन के साथ जुड़ जाए, वही वस्तुत: सच्चा जीवन होता है। आचार्यदेव ने स्वयं वैसा जीवन जीया था। उन्होंने समता को स्वीकार किया। गुरु चरणों में रहकर आगमों का गहन अध्ययन करते हुए उन्हें भावों से जीया है। उन्होंने उन भावों की परख की। उनकी पहचान की। तब उनकी निगाह में आया

कि समझ ही सार है। यह कैसी विचित्र स्थिति है जिसको जो सहज में मिल जाता है, वह उसकी कीमत नहीं करता है। धर्म हमें सहज में मिल गया तो हमारे लिए कीमती नहीं है, किंतु धर्मपाल धन्य हो गए। आज भी वे लोग आस्था लेकर चलते हैं। समता का दर्शन भी हमें बिना परिश्रम के मिला है। बिना परिश्रम के जो चीजें मिलती हैं उनकी कीमत आँक नहीं सकते क्योंकि हमारी दृष्टि ऐसी नहीं कि उनकी कीमत आँक सकें। वैसे ही नाना गुरु की भी कीमत हम आँक नहीं पाए। जिसने नाना गुरु का सान्निध्य प्राप्त किया उसने उनको जान लिया। डॉक्टर नेमीचंद, गुरुदेव को 'आगम पुरुष' कह गए। उनके कण-कण में आगम रम गया। आगम केवल किताब नहीं है। वह केवल शास्त्र नहीं है।

जिनके रोम-रोम में आगम रमा हो, अठखेलियां कर रहा हो उस जीवन की महिमा हम जितना गाएं उतना कम है। थोड़े समय में उनकी बातें कही नहीं जा सकतीं। जो उन्होंने दिया वैसा हम जीना सीख लें तो धन्य हो जाएंगे। फिर न हमारे लिए कोई परेशानी रहेगी, न ही समस्या रहेगी और न रहेगी कोई दुविधा। दुविधा हमारे मन की है। यदि हमने मन को साध लिया तो सारी सुविधाएं उपलब्ध हो जाएंगी। सारी दुविधाएं खत्म हो जाएंगी।

आचार्य पूज्य गुरुदेव ने बहुत सारी कठिनाइयों को सहा। बहुत सारे परीषहों का सामना किया किंतु सारी कठिनाइयों को, सारे परीषहों को भूल गये। वे सारे पर्दे के पीछे चले गये। गुरुदेव उन पर गौर नहीं करते थे। जैसे सर्प सीधा होकर बिल में घुसता है उसी प्रकार वे सीधे होकर अपने लक्ष्य की ओर चलते रहे। वे एक लक्ष्य लेकर चले कि मुझे अपने रास्ते को देखना है। मुझे अपने रास्ते को तय करना है। वे सदा **'चरैवेति-चरैवेति'** को ध्यान में रखे रहे अर्थात् चलते रहो, चलते रहो।

हकीकत में जीवन में कठिनाइयां नहीं आएं तो जीवन को तराशा नहीं जा सकता। हीरे को तराशने के लिए घिसना पड़ता है। उसको आरी या छेनी से घिसना पड़ता है तब वह हीरा बनता है। सोना भी जब तक आग में नहीं तपे, तब तक कुंदन नहीं हो सकता। वैसे ही जीवन बिना कठिनाइयों के तराशा नहीं जा सकता। उसके बिना अनुभूतियां प्राप्त नहीं हो सकतीं। किताबें पढ़ने से वह अनुभूति नहीं होती जो जीवन जीने से होती है। अनुभव के आधार पर उन्होंने

समता, दर्शन और व्यवहार की बात की। उन्होंने अनुभव किया कि जीवन की वर्तमान आवश्यकता क्या है। उन्होंने समीक्षण ध्यान का निरूपण किया। बहुत सारी ऐसी बातें हैं जो आदमी कह नहीं पाता। समय की एक सीमा होती है और बोलने के लिए अनुभूतियां बहुत ज्यादा होती हैं। ऐसे महापुरुष का जीवन स्मरण करने से, उनके जीवन की अनुभूतियों को अपने साथ जोड़ने से कोई दुख-दर्द नहीं रहेगा।

आज पूज्य आचार्य नानालाल जी का पुण्य दिवस है। आज ही के दिन उनका संथारा करवाया गया था। हालांकि उन्होंने संलेखना पहले से ही शुरू कर दी थी। खाना-पीना पहले ही बंद कर दिया था। डॉक्टर को दिखाना भी बंद कर दिया था। डॉक्टर आते तो मुँह फेर लेते। बात तक नहीं करते। कहते कि मुझे किसी को नहीं दिखाना है। 26 तारीख कार्तिक दूज को सिर को दबा रहे थे तो मैंने पूछा कि क्या दर्द हो रहा है? उन्होंने मुँह से एक शब्द नहीं निकाला। किसी ने सुना तो डॉक्टर को बुला लिया। डॉक्टर ने आकर पूछा कि क्या हो रहा है तो उन्होंने हाथ से इशारा किया कि मुझसे दूर रहो। हमने कहा आपकी अनुमति होगी तभी डॉक्टर पास आएगा, किंतु हमारी बात को सुनने के लिए तैयार नहीं थे। 27 अक्टूबर के दिन सुबह संथारा करवाया, शाम को चौविहार संथारा करवाया और रात्रि 10.41 के आस-पास उन्होंने जीवन लीला समेट ली। वे अनंत में लीन हो गए। ऐसे आचार्य भगवन् के लिए मेरे पास इतने शब्द नहीं हैं कि मैं उनका बखान कर सकूं। जितना भी बोल सकूं कम है। आचार्य भगवन् के जीवन को स्वीकार करें। ऐसा करेंगे तो जीवन धन्य बनेगा। इतना ही कहते हुए विराम।

23 अक्टूबर, 2021

8

अरुज बनाना अपना मन

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं...

धर्म दो प्रकार का होता है; चल और अचल। प्रतिलेखन, प्रतिक्रमण आदि प्रवृत्यात्मक धर्म चल धर्म है और जो मन को स्थिरता देता है वह अचल धर्म माना जाता है।

उपाध्याय यशोविजय जी कहते हैं कि **'सामायिकं स्थिरतारूपम्'** अर्थात् सामायिक स्थिरता देने वाली है। वह काया, मन और वचन को स्थिरता देती है। तीन प्रकार की गुप्ति; मन, वचन, काया को अचल धर्म का अंग माना गया है। तीन गुप्तियां यानी मन, वचन और काया का गोपन करना। गोपन करना यानी रक्षा करना।

एक दिन पहले मैंने बताया था कि कोई व्यक्ति नंगी तलवार लेकर खड़ा हो तो वह तलवार भय पैदा करने वाली होगी। यदि तलवार म्यान में पड़ी हो तो वह भय पैदा नहीं करेगी। मन, वचन और काया को म्यान में रखने का नाम गुप्ति है। मन, वचन और काया से कोई अशुभ प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। मन से कोई ऐसा प्रयोग नहीं करना चाहिए जिससे किसी भी जीव को दुख पहुँचे। उसे पीड़ा हो। उसे दर्द हो। वाणी का ऐसा प्रयोग नहीं करना जो किसी को पीड़ा दे। काया से ऐसी कोई प्रवृत्ति भी नहीं होनी चाहिए जिससे किसी को पीड़ा या दुख हो। तीनों का गोपन होने से धीरे-धीरे अयोग अवस्था की तरफ बढ़ा जाता है। अयोग अवस्था का दूसरा नाम है नीरोग अवस्था। यानी कोई रोग नहीं है, बीमारी नहीं है। अब मुक्ति का किनारा है। पहुँचना भी वहीं पर है। वहाँ तक पहुँचने के लिए पहले मन, वचन और काया का गोपन करना जरूरी है। उन्हें स्थिर करना चाहिए।

हममें से बहुतों की स्थिति यह रहती है कि मन स्थिर नहीं होता। मन वश में नहीं होता। मन अपने नियंत्रण में नहीं रहता। इसका कारण है कि हमने अपने मन को स्थिर रखने के लिए प्रयत्न ही नहीं किया। यदि प्रयत्न किया होता तो शायद शिकायत नहीं करते। हम क्या प्रयत्न करते हैं मन को स्थिर करने के लिए? मन को नियंत्रित करने के लिए क्या प्रयत्न करते हैं? क्या उपाय करते हैं? कई लोग सोचते हैं कि मैं अपने मन को बाँधकर रख लूँ, दबाकर रख लूँ तो वह सक्सेज नहीं होगा।

मन को कंट्रोल करने के लिए उसको साधना होता है। उसको कंट्रोल में लेने के लिए अपने को प्रयत्न करना पड़ेगा। पुरुषार्थ करना पड़ेगा। उसको कंट्रोल करने से पहले देखना होगा कि मन किधर जा रहा है। वह कहाँ जा रहा है। उसकी गतिविधियों को देखते रहना होगा। जब तक वह गलत काम नहीं करे, तब तक उसको नहीं टोकना। तब तक नहीं रोकना। उसे चलने देना। यदि हमने अपने मन को देखना शुरू कर दिया तो मन नियंत्रित होने लगेगा। हम अपने मन को जब तक नहीं देखते हैं, तब तक वह भटकता है। यदि देखना शुरू कर दिया, उसकी गति और प्रवृत्ति को देखना शुरू कर दिया तो वह जल्दी से गलत दिशा में नहीं जाएगा, विपरीत दिशा में नहीं जाएगा।

अर्जुन माली दीक्षित हुए, साधु बने। उन्होंने अपने मन को देखना शुरू कर दिया। उनके मन में तरंगें उठती हैं, किंतु मन को निरंतर देखने से उनकी तरंगें, उनकी विचारधारा धीरे-धीरे शांत होती गई।

मन के कई प्रयोग भी हुए हैं। काया पर प्रयोग किया गया। एक व्यक्ति के हाथ में दर्द हो रहा था। उस व्यक्ति का हाथ उठ भी नहीं रहा था। उसको लग रहा था कि बड़ी भयंकर वेदना है। उससे कहा गया कि तू केवल दर्द वाले स्थान को देख। आप इसको दूसरी तरह से अनुभव कर सकते हैं। अपना अंगूठा अपनी आँखों के सामने करके अंगूठे के ऊपरी भाग को देखें। हाथ पूरा लंबा किया हुआ है किंतु अभी केवल अंगूठे के ऊपरी भाग को देखना है।

कैसा लगा उपयोग?

(एक श्रावक ने कहा- शांत हो गया)

क्या शांत हो गया? आपको पूरा अंगूठा दिख रहा था या अंगूठे के

ऊपर वाला भाग ही दिख रहा था?

(लोगों ने कहा- पूरा अंगूठा दिख रहा था)

अंगूठा दिखना धीरे-धीरे ओझल हो जाता। आपको केवल ऊपर का भाग देखना था, किंतु आपको पूरा अंगूठा दिख रहा था। फिर से प्रयत्न करना है। अभ्यास दशा में अंगूठा दिख रहा था या ओझल हो गया। इसी तरह जिस व्यक्ति को दर्द हो रहा था, जब उसने दर्द पर ध्यान केंद्रित किया तो उसके हाथ का दर्द कम हो गया। दर्द पूरे हाथ की जगह एक छोटे-से भाग में रह गया। हाथ के किसी स्थान पर हुई फुँसी पूरे हाथ को दर्द देने लगती है। शरीर में भी दर्द होने लगता है। यह तब होता है जब हम उस पर ध्यान नहीं देते। ध्यान देते ही दर्द सिकुड़कर एक छोटे हिस्से में हो जाता है। ऐसे प्रयोग कई लोग करते हैं। इन प्रयोगों से सामने आता है कि हकीकत क्या है।

स्वामी रामदास के विषय में मैंने पढ़ा था कि किसी विद्यालय में भाषण देते समय उनके हाथ में काँच की एक गिलास थी। उस गिलास में पानी था। उन्होंने विद्यार्थियों से पूछा कि इसमें कितना पानी है? विद्यार्थियों ने बताया कि यह 100 एमएल की गिलास है तो इसमें पानी भी 100 एमएल ही होगा। स्वामी ने कहा कि मैं जब तक प्रवचन दूं तब तक यदि इसको ऐसे ही पकड़कर रखूं तो पानी का वजन बढ़ेगा या घटेगा?

पानी का वजन न तो बढ़ेगा और न ही घटेगा, किंतु हाथ दुखने लग जाएगा। प्रवचन देते समय हाथ ऐसे ही रहा तो दुखेगा। यदि चार-पाँच घंटों तक हाथ वैसे ही रहा, 12 घंटों तक वैसे ही रहा तो बहुत कठिन है कि गिलास हाथ में रहे। हाथ सुन्न हो जाएगा और गिलास नीचे गिर जाएगी।

ये प्रसंग हमें क्या बता रहे हैं, क्या दिखा रहे हैं?

बात भले ही छोटी हो किंतु उसको पकड़कर रखने से उसका परिणाम अनुकूल नहीं होगा, प्रतिकूल हो जाएगा।

दुर्योधन ने द्रौपदी की बात को पकड़ लिया कि अंधे के अंधे ही होते हैं। दुर्योधन को वह बात चुभती रही। उस बात का बदला लेने के लिए कई सारे प्रयोग हुए। पांडवों के संग जुआ खेलना भी भीतर पड़ी हुई उस बात का एक अंग था। चीरहरण की स्थिति व 12 वर्ष तक वनवास, एक वर्ष तक

अज्ञातवास के बाद भी सूई जितनी जगह भी पांडवों को नहीं देने की भावना पकड़ का परिणाम थी। उस पकड़ से उसका अहंकार सिर पर चढ़कर बोल रहा था कि मैं बताता हूँ, मैं क्या हूँ। पकड़ रहने से महाभारत का भयंकर युद्ध हो गया।

जैसे गिलास को एक बार उठाने पर कोई वेदना नहीं होगी, किंतु लंबे समय तक हाथ में रहेगी तो भार लगने लगेगा, वैसे ही यदि हम कोई बात मन में पकड़ लेते हैं तो वह बहुत भारी बन जाती है।

अर्जुन माली ने 1141 मानवों की घात की, किंतु भगवान का उपदेश सुनने के बाद प्रतिक्रमण कर लिया।

अईयं पडिक्कमामि...

अतीत का प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रतिक्रमण करना यानी उसको वापस दिमाग में नहीं लाना। भगवान महावीर के वचन अनमोल हैं। भगवान ने कहा कि प्रतिक्रमण करने के बाद पहले वाली बातें, घटनाएं मन में लानी नहीं। वे सब खलास हैं। खत्म हैं। अब उनको दिमाग में, बुद्धि में नहीं लाना। प्रतिक्रमण कर लेने के बाद सारी पुरानी बातें खत्म। जैसे कपड़े मैले होने पर धो लेते हैं वैसे ही पुरानी बातों को धो डालो। प्रतिक्रमण का मतलब मन के दोषों को धो डालना। कोई दोष मन में रहना नहीं चाहिए। मन एक दम क्लीन हो जाना चाहिए।

अर्जुन माली ने भले ही 1141 व्यक्तियों की घात की, किंतु प्रतिक्रमण करने के बाद दिमाग पर उसका कोई बोझ नहीं रहा। उसने अतीत का प्रतिक्रमण किया और वर्तमान का संवर किया। संवर मतलब अब पहली वाली क्रिया में नहीं रहना। भविष्य के लिए प्रत्याख्यान यह एक विधि है। प्रत्याख्यान से पहले संवर व प्रतिक्रमण होना चाहिए। जब तक उसको साफ नहीं करेंगे, जब तक वे दिमाग में भरे रहेंगे तब तक प्रत्याख्यान सफल नहीं होंगे। संलेखना अर्थात् अपनी पकड़ को, अपने कषायों को कृश करना, उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना। दोष तुम्हारे दिमाग में भरे पड़े हैं तो वे चैन से जीने नहीं देंगे। उनको पहले साफ-सुथरा करना पड़ेगा।

आप जिस भूमि पर बैठे हैं, वहाँ टाइल्स लगी है तो आप आराम से

बैठे हैं। टाइल्स की जगह भ्रुंट के काँटे बिखरे होते और उस पर आप बैठे होते तो क्या आराम से बैठ पाते?

(लोग कहते हैं– नहीं बैठ पाते)

काँटे आपको आराम से बैठने नहीं देते। कभी एक तरफ चुभते तो कभी दूसरी तरफ। वैसे ही हमारे मन में जब तक द्वंद्व भरा रहेगा, तब तक वह शांत नहीं होगा। इसलिए पहले अतीत का प्रतिक्रमण करें। भूतकाल में जो भी अपराध किए उनका प्रतिक्रमण करें। गलतियाँ होनी असंभव नहीं हैं। छद्मस्थ हैं तो गलतियाँ होंगी। बहुत-सी चीजें हम नहीं जानते। अनुमान के आधार पर बातें हो जाती हैं। इसलिए भगवान कहते हैं कि पहले प्रतिक्रमण कर लो। अपने माइंड को साफ कर लो। माइंड वॉश कर लो। माइंड वॉश होने के बाद जो भरा जाएगा वह शुद्ध होगा।

नाना गुरु फरमाया करते थे कि घी लेने जा रहे एक व्यक्ति ने जल्दबाजी में उस बरतन को नहीं देखा जिसमें उसे घी लेना था। वह बरतन घासलेट (मिट्टी का तेल) का पीपा था। दुकानदार को पीपा देकर उसने घी देने के लिए कहा तो दुकानदार को लगा कि पीपे में से घासलेट की बदबू आ रही है। उसने कहा कि इस पीपे से तो घासलेट की बदबू आ रही है, मैं इसमें घी नहीं दे सकता। दुकानदार ने कहा कि तुम तो घी लेकर चले जाओगे, किंतु बाद में हमारे ऊपर ही आएगा कि दुकान वाले ने घी अच्छा नहीं दिया। उसमें से बदबू आ रही है। इसलिए मैं तुम्हें इस पीपे में घी नहीं दे सकता।

बास (बदबू) घी में थी या डब्बे में?

(लोगों ने कहा– डब्बे में थी)

बास डब्बे में थी, किंतु घी डब्बे में डाल देने पर पूरे घी में बास आती। पहले कई बार चूल्हा जलाने के लिए घासलेट का काम पड़ता था। पहले घासलेट डालकर चूल्हा जलाते थे। चूल्हे पर बरतन रखकर खाना बनाया जाता था। उस खाने में भी कई बार घासलेट की बदबू आ जाती थी।

भगवान कहते हैं कि पहले तुम्हारा मन क्लीन होना चाहिए अर्थात् प्रतिक्रमण होना चाहिए। तत्पश्चात् जो प्रतिज्ञा स्वीकार की जाएगी वह पालन करने में बहुत सुविधा होगी। वे प्रतिज्ञाएं पालने में बाधाएं नहीं होंगी। इसके

विपरीत मन साफ नहीं होगा तो ली गई प्रतिज्ञा का पालन करने में कठिनाई होगी। पुरानी बातें बार-बार मन में आती रहेंगी, वे चैन नहीं लेने देंगी। प्रतिक्रमण का अर्थ है रिवर्स होना। जहाँ हो वहाँ से लौट आना। मतलब क्या हुआ?

एक दुकानदार सोचता है कि सामान की थोड़ी सजावट कर लूँ। ऐसा सोचकर उसने अपनी दुकान फुटपाथ तक आगे बढ़ा ली। एक-एक दिन थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ते हुए उसने पाँच-दस दिन में फुटपाथ को अपनी दुकान में शामिल कर दिया। उसने उस जगह को घेर लिया। उसके इस काम पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। एक बार नगरपालिका के लोगों को ध्यान आ गया और उन्होंने नोटिस दिया कहा कि यहाँ से सारी चीजें हटाओ।

उसने कहा कि यह तो मेरी जगह है। मैं इन सारी चीजों को कैसे हटाऊं। मैं नहीं हटाता। वह दुकानदार यह मानने लगा कि यह जगह मेरी ही है, जबकि सच्चाई यह थी कि वह जगह उसकी नहीं थी। वह जगह नगरपालिका की थी। काफी वर्षों से वह उस जगह को उपयोग में ले रहा था इसलिए उसने उस जगह को अपना ही समझ लिया। इसके बाद नगरपालिका वाले उस पर आक्रमण करते हैं। अतिक्रमण का प्रतिक्रमण नहीं हुआ तो आक्रमण हुआ। उसके बाद वह वहाँ से दुकान हटा देता है। दुकान हटाने के बाद उसके मन में पीड़ा होती है कि मेरी जमीन चली गई। वह स्वयं प्रतिक्रमण कर लेता तो उसे पीड़ा नहीं होती। प्रतिक्रमण को नहीं समझने से धीरे-धीरे अपने संस्कार ऐसे बना लेते हैं कि जो अपना नहीं है उसको भी अपना मान लेते हैं। प्रतिक्रमण का पालन करना आवश्यक है। प्रतिक्रमण के पाँचवें आवश्यक में आप बोलते हैं-

पायच्छित्त विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं

बोलते हैं या नहीं बोलते?

(बोलते हैं भगवन्! हम ध्यान करते हैं)

क्या ध्यान करते हैं आप?

जब तक नवकार मंत्र नहीं गिन लें, तब तक के लिए काया का त्याग। काया आदि त्याग का मतलब है कि काया मेरी नहीं है। हमने अनादिकाल से काया से संबंध जोड़ा है। यह शरीर मेरा है, पर हकीकत में यह आत्मा का

अपना नहीं है। हमें यह बोध कराने के लिए काया का त्याग कराया जाता है कि जिसे हम अपना मान रहे हैं वह हमारा नहीं है। यह समझ हमारे भीतर पैदा होनी चाहिए। हम लोगस्स का ध्यान करते हैं। लोगस्स का ध्यान हमारे अपराध की दशाओं का प्रायश्चित कराने वाला बनेगा। हम लोगस्स का ध्यान करते हैं, किंतु जो होना चाहिए वह पूरा नहीं होता।

एक मच्छर कान पर बैठ गया तो वह हमारे ध्यान में आ रहा है या नहीं आ रहा है? आना चाहिए क्या?

गजसुकुमाल ने काया का त्याग किया। त्याग करने के बाद उनके सिर पर अंगारे धधके फिर भी उनको अपनी काया की कोई फिक्र नहीं रही। उन्होंने जान लिया था कि अब काया मेरी नहीं है।

लगभग डेढ़ सौ साल पुरानी बात है। एक साध्वी जी अपनी स्थिर अवस्था में थी। वहाँ पर एक सियार पहुँचा और उसने साध्वी जी को नोंचना शुरू कर दिया। शरीर को खाना शुरू कर दिया। उसने शरीर का बहुत सारा भाग काट लिया, किंतु साध्वी जी नहीं बोली। वह अपनी ध्यान अवस्था में रही। उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। यह चौथे आरे की बात नहीं है। भगवान महावीर के समय की बात नहीं है। लगभग डेढ़ सौ साल पुरानी बात है। इन सालों में हम कहाँ आ गए? हमारी सहनशीलता, हमारी सहिष्णुता घटी या बढ़ी?

(लोगों ने कहा– हमारी सहनशीलता और सहिष्णुता घटी है)

हमारा धर्म बढ़ा या घटा?

(लोगों ने कहा– हमारा धर्म घटा)

इसलिए मैंने शुरू में कहा कि धर्म दो प्रकार का है। एक चल और दूसरा अचल। स्थिर धर्म है, आत्मभावों में रत रहना, अस्थिर धर्म के भिन्न-भिन्न भेद हैं जैसे अगार, अनगार धर्म। अनगार धर्म मतलब साधुता का पालन करना। श्रावकों के कर्तव्यों का भी पालन करना अगार धर्म है। साधु चलता है, खाता है, घूमता है, उस समय उसमें साधुपना है या नहीं? श्रावक खाते-पीते हुए भी श्रावक है या नहीं है? भोजन करते हुए वे श्रावक-श्राविका हैं या नहीं? श्रावक केवल सामायिक में श्रावक है या उसके बिना भी श्रावक है? जिसने 12

व्रतों को स्वीकार कर लिया है, वह सामायिक नहीं कर रहा है उस समय भी श्रावक है। उसी प्रकार से तीन करण, तीन योग से जिसने त्याग लिया है, उसमें भी साधुता मौजूद है। वह विहार कर रहा है तो भी उसमें साधुता मौजूद है। वह किसी साधु की सेवा कर रहा है तो भी उसकी साधुता मौजूद है, क्योंकि साधुता उसमें रमी हुई है।

दीक्षा होने के बाद कई बार नए नाम दिए जाते हैं। कोई साध्वी या साधु सोया हुआ है और उसको नये नाम से पुकारने पर उसकी नींद नहीं खुली फिर उसको पुराने नाम से पुकारा गया तो उसकी नींद खुल गई। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब बहुत स्पष्ट है कि पुराना नाम उसके संस्कारों में इतना गहरा बसा हुआ है कि उस नाम से पुकारते ही उसकी नींद खुल गई। उसे लगता है कि उसे कोई पुकार रहा है। जब तक उसके भीतर नए नाम की धारणा नहीं घुसती है, तब तक उसके ध्यान में नहीं पड़ता। उसके भीतर नये संस्कार अभी बने नहीं हैं। नया संस्कार भीतर जाने में समय लगेगा। धीरे-धीरे नया नाम उसके भीतर घुसेगा तो वह नए नाम से जागृत होगा। नया नाम पुकारने से उसकी नींद खुलने लगेगी। उसके भीतर से पुराना नाम हटेगा और नया नाम बस जाएगा।

इसलिए इसे चल धर्म कहा गया है। हम कह सकते हैं कि जो भी हमारी क्रियाएं हो रही हैं, वे चल धर्म में आती हैं। अचल धर्म अयोग अवस्था में ले जाने वाला होता है। आत्मा की स्थिरता स्थिर धर्म है। उस समय चाहे कैसा भी उपसर्ग आ जाए, कैसा भी परीषह आ जाए उसमें स्थिरता बनी रहेगी। उसकी सहनशीलता बनी रहेगी। क्योंकि उसमें स्थिर धर्म का जागरण हो गया है। उसके अंग-अंग में धर्म रम गया है। जहाँ ऐसा होगा वहाँ कोई असुविधा नहीं होगी।

साधु रात में सोता है। लगभग सोता ही है। सोना या नहीं सोना अलग बात है। सुबह उठते ही साधु को सबसे पहले अपने स्वभाव का ध्यान करना होता है। नींद से उठने के बाद उसे सबसे पहले यह विचार करना चाहिए कि मैं कौन हूँ! ऐसा इसलिए करना चाहिए ताकि उससे कोई असंयम की प्रवृत्ति नहीं हो जाए। उसके संस्कारों में ये बात आ जानी चाहिए कि मैं साधु हूँ। उसके मन

में यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि मैं साधु हूँ। यह ध्यान नहीं लगायेगा कि मैं कौन हूँ तो उसकी प्रवृत्ति गड़बड़ा सकती है। इसलिए पहले उसको सोचना चाहिए कि मैं कौन हूँ।

उसके बाद उसको विचार करना चाहिए कि मैं कहाँ हूँ! किस स्थान पर हूँ! क्यों विचार करना चाहिए कि मैं कहाँ हूँ। क्योंकि साधु विचरणशील होते हैं। आज कहीं तो कल और कहीं। उसके ठहरने का स्थान ऊपरी तल भी हो सकता है। कोई मंच आदि भी हो सकता है। यदि वह अपनी स्मृति में नहीं लाएगा कि मैं कहाँ हूँ तो कभी हादसा भी हो सकता है।

पूज्य गुरुदेव का मोमासर की तरफ विहार हो रहा था। पूज्य सेवंत मुनि जी म.सा. रात को उठे तो चबूतरे से नीचे उतरने में पगथियों की तरफ न उतरकर सीधे उतर गए। परिणामस्वरूप कमर में चोट आ गई। मैं उस समय वैरागी अवस्था में था। अतः साधु को उठने पर विचार करना चाहिए कि वह कहाँ पर है। खतरा हो जाने पर वह सोचे कि मुझे कहाँ जाना है और किधर से जाना है। ठहरने का स्थान उसके ध्यान में आएगा तो वह उठकर सही चलेगा। हड़बड़ी में नहीं जाएगा तो गड़बड़ी नहीं होगी। वह असंयम से नहीं जाएगा। संयम की आराधना करते हुए जाएगा, तब वह न तो संयम की विराधना करेगा और न आत्मा की विराधना करेगा। हड़बड़ी में जाने पर कई बार संयम और आत्मा की विराधना भी संभव है। संयम की विराधना का मतलब बिना पूंजे चलना। एक कदम भी बिना पूंजे चले गए तो संयम की विराधना होगी। बिना पूंजे जाने पर पगथियों से चूक जाए व नीचे गिर जाए तो आत्म विराधना हो जाएगी। उसके शरीर को चोट लग जाएगी। इसलिए साधु को यह पहले सोचना चाहिए कि मैं कहाँ हूँ और कहाँ जाना है।

उसे यह ध्यान तो रखना ही चाहिए कि कहाँ जाना है, साथ ही यह भी ध्यान रहना चाहिए कि किधर से जाना है, कैसे जाना है। यह भी ध्यान रहना चाहिए कि पगथियों से उतरना है या सीधे मैदान में जाना है। मकान का सारा दृश्य उसकी स्मृति में आ जाना चाहिए। ऐसा होगा तो वह ठोकर नहीं खाएगा अन्यथा कई बार दुर्घटना घट जाती है।

थोड़ी बात नमिराज की कर लेते हैं। नमिराज जब तक नहीं जगे, तब

तक उनकी चर्या भिन्न थी किंतु जग गए तो उनकी चर्या भिन्न हो गई।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय, जय, जय, जयकार...

ब्राह्मण का रूप धारण करके शक्र नमिराज के पास आया हुआ था। उसने कहा कि पहले आप मिथिला को सुरक्षित कर लें। उसमें दुर्ग बनाएं। उसमें कोट बनाएं। किले बनाएं और चारों ओर खाई खुदवाएं। चारों ओर खाई रहेगी तो कोई भी शत्रु उसे लाँघकर आने में समर्थ नहीं होगा।

नमिराज ने कहा कि श्रद्धा का शुभ नगर बसाया है। मिथिला की सुरक्षा के स्थान पर आत्मा की सुरक्षा के लिए श्रद्धा नगर बसाया है। उससे मेरी आत्मा सुरक्षित हो गई है। सम-संवेग उसके द्वार हैं, संवर उसकी अर्गला है, मैंने उसे स्वीकार करने का ठाना है अर्थात् मैं अबसे किसी जीव की हिंसा नहीं करूंगा, न ही किसी से करवाऊंगा और न हिंसा की अनुमोदना करूंगा। उन्होंने यह भी बताया कि मेरे नगर में क्षमा रूपी कोट है और मन, वचन व काया की गुप्ति रूपी तोप भी है, जिससे मिथ्यात्व मेरे नजदीक नहीं आ पाएगा। उन्होंने आगे कहा कि पराक्रम का मैंने धनुष बनाया है और इर्या रूपी जिह्वा को चढ़ाया और उसको पकड़ने की मूठ उनका धैर्य है। उन्होंने कहा कि इर्या समिति मेरा साधन रहेगा और धैर्य मेरा आधार रहेगा। इसके आधार पर मैं कर्म और आत्मा से युद्ध करने में तत्पर बनूंगा।

आत्मा और कर्मों का युद्ध अनादिकाल से चला आ रहा है। कभी आत्मा, कर्मों को झटका देती है तो कभी कर्म, आत्मा पर हावी हो जाते हैं। कभी कषाय, आत्मा पर हावी हो जाते हैं तो कभी आत्मा के कषाय मंद हो जाते हैं और कभी आत्मा का पुरुषार्थ जागृत हो जाता है। जब कषाय वेग अवस्था में आते हैं तो आत्मा का पुरुषार्थ मंद पड़ जाता है। आत्मा उस समय जागृत नहीं रह पाती। यहाँ आत्मा का मतलब ज्ञान चेतना से है। कषायों के सद्भाव में जो क्रिया होती है वह क्रिया आत्मा को विस्मृत बनाने वाली होती है।

जैसे जिस समय अर्जुन माली ने 1141 व्यक्तियों की घात की, उस समय उस पर कौन हावी रहा? मुद्गरपाणि यक्ष हावी रहा। मुद्गरपाणि यक्ष के प्रभाव से या उसी की छाया से वह सारी क्रिया कर रहा था। क्रिया करानेवाला

मुद्गरपाणि यक्ष था। आह्वान अर्जुन माली ने ही किया था किंतु उसके बाद वह उसका मेहमान बन गया। उसकी क्रिया का परिणाम उसको ही भोगना पड़ेगा। जैसे यक्ष से आवेष्टित होने से वह उसी के अनुसार कार्य कर रहा था, वैसे ही हम कषायों से आवेष्टित हो जाते हैं।

क्रोध, मान, माया और लोभ हम पर इतने हावी हो जाते हैं कि आत्मा की झलक गौण हो जाती है। आत्मा की अनुभूति विस्मृत हो जाती है। हम कषायों में डूबे रहते हैं। कषायों का वेग हमारे साथ जब तक बना रहेगा, तब तक आत्मा कमजोर रहेगी। जैसे शुद्ध हवा चलने से बादल बिखर जाते हैं, वैसे ही आत्मा के शुद्ध अध्यवसायों की हवा चले और उसके पुण्य योग से कषायों के बादल तितर-बितर हो जाएं तो आत्म रूपी सूर्य की किरणों का अनुभव कर पाएंगे। उस समय ग्लानि भी होगी कि मैंने क्रोध क्यों कर लिया। मेरा अहंकार क्यों फुफकारने लगा। मेरे काषायिक भाव क्यों तीव्र हो गए।

भगवान महावीर ने कहा कि '**कोहो पीइं पणासेइ**' अर्थात् क्रोध से प्रीति का नाश होता है। आप देखना कि जिसको तीव्र क्रोध आता है उसकी निगाहें दूसरों के साथ मिल नहीं पातीं। वह दूसरों के साथ घुल-मिल नहीं पाता। वह कटा-कटा-सा रहता है। दूसरों के साथ मिलने की उसकी इच्छा होती है, पर अपराधबोध के कारण मिल नहीं पाता। अपराधबोध उसको उठने नहीं देता। वह धीरे-धीरे जब अपने कषायों से ऊपर हो पाता है, तब जाकर नॉर्मल हो पाता है।

ऐसा कभी आपको अनुभव हुआ है क्या?

कैसे होवे अनुभव! जब क्रोध ही नहीं आए तो अनुभव होगा कैसे! जिनको क्रोध आएगा वे अनुभव कर सकते हैं। वे किसी से संपर्क जोड़ना चाहें तो एक उपाय है तत्काल क्षमा-याचना करना।

अशोक मुनि जी म.सा. किसी को बोल देते, किसी को सुना भी देते, किंतु अगले ही क्षण वे उससे क्षमा-याचना के लिए तैयार भी हो जाते थे। कहते कि मुझसे गलती हो गई, मुझे क्षमा करना। वे जल्दी क्षमा-याचना कर लेते थे। तत्काल क्षमा-याचना यानी हाथों-हाथ मामला रफा-दफा कर दिया। दिमाग में उस अपराध के प्रति कोई भाव नहीं और उससे खमतखामणा कर लेते।

जब तक सरल भावों में नहीं आएंगे, तब तक हमारा (आत्मा) और कर्मों का युद्ध चलता रहेगा। यह युद्ध तब थमेगा, जब आत्मा कर्मों को पछाड़ देगी।

नमिराज की बात सुनकर शक्र विचार करने लगा कि इतना गहरा अध्यात्म उन्होंने कब बढ़ाया। हम भी ये विचार कर सकते हैं कि एकदम से कैसे वैराग आ गया। उनमें ऐसा बदलाव कैसे आया। उनके भाव बदले और उनके भीतर संस्कार घुस गए। उनके विचारों में वैसे ही परिवर्तन आ गया जैसे किसी कन्या के विचारों में शादी के बाद बदलाव आता है। वह समझ जाती है कि अब मैं बेटी नहीं हूँ। अब मैं बहू हूँ। यह समझते ही उसके विचारों में फर्क आ जाता है।

फर्क आता है या नहीं?

(लोगों ने कहा- फर्क आता है)

वैसे ही कुँवारे से शादीशुदा होने के बाद हमारे भीतर क्या परिवर्तन आएगा? अब सोच-समझकर कार्य करना पड़ेगा। सोच-समझकर बोलना पड़ेगा। शादीशुदा को कहा जाता है कि सोच-समझकर बोलना, अब तुम टाबर नहीं हो। अब तुम जवान हो गए हो। तुम्हारी शादी हो गई। साथ ही सुनना कम क्योंकि इधर-उधर की बातें भी आएंगी। उन बातों को अनसुना कर देंगे तो घर में शांति से रहेंगे। इधर की सुनी उधर करेंगे और उधर की सुनी इधर करेंगे तो आपस में द्वंद्व पैदा हो जाएगा। सुनना भी है और बोलना भी है, किंतु सोच-समझकर बोलना। बिना सोचे-समझे कभी मत बोलना।

साधु के मुँह पर मुँहपत्ती क्यों रहती है?

इसलिए ही नहीं रहती है कि वायुकाय के जीवों की विराधना नहीं हो। इसलिए भी रहती है कि छानकर बोलना। जैसे पानी छानकर पीते हैं, वैसे ही वाणी को छानकर बोलना है। कोई ऐसी बात नहीं निकल जाए मुँह से जो असत्य का पोषण करने वाली हो। जो किसी को कष्ट पहुँचाने वाली हो। अपनी वाणी से सामने वाले में उत्तेजना पैदा होने की संभावना हो तो वैसी वाणी नहीं बोलनी चाहिए।

नमिराज के दिल में तत्काल परिवर्तन आ गया। यद्यपि वे अभी साधु नहीं बने थे, तथापि दीक्षा लेने की तैयारी में थे। उधर शक्र ब्राह्मण नमिराज की

बात सुनकर, अध्यात्म वाणी सुनकर इतने अभिभूत हो गए कि क्या इनका वैराग है, क्या इनकी साधना है, क्या समझ है। थोड़े-से समय में क्या-क्या अनुभव कर लिया। फिर भी कुछ और प्रश्न करना चाहते हैं शक्र ब्राह्मण।

नमिराज की बात सुनकर शक्र ने एक नया प्रश्न खड़ा किया। एक नई बात उनके सामने प्रस्तुत की कि आपको उत्तम भवन बनाने चाहिए। मेरे खयाल से इस पर समय से विचार करेंगे तो उपयुक्त रहेगा। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

24 अक्टूबर, 2021

साधुमार्गी पब्लिकेशन

9

पुरुषार्थ परम पाथेय

शांति जिन एक मुज विनति...

शांतिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए यह जिज्ञासा व्यक्त हुई कि शांति के स्वरूप को कैसे जानें? शांति कैसे मिले, इसकी बात नहीं की गई। बनी-बनाई शांति की बात नहीं की गई। रेडिमेड शांति की बात नहीं की गई। बात की गई शांति के स्वरूप को जानने की। बना-बनाया भोजन नहीं चाहिए। भोजन बनाने की विधि चाहिए। उसकी विधि आ जाए, तब भोजन अपने आप ही बनाया जा सकता है।

केवल भोजन की बात नहीं है। किसी भी कार्य को संपन्न करने के लिए उसकी तरकीब, उसकी तकनीक जान लेने पर कार्य को आसानी से संपन्न किया जा सकता है। जिसे हीरे की परख करनी आ गई वह बता पायेगा कि यह हीरा है। जिसे रत्न की परख नहीं होगी उसके सामने कितने भी रत्न आ जाएं वह उनको सुरक्षित नहीं रख पाएगा। जैसे हीरे की परख करने वाला हीरे की सुरक्षा कर सकता है, वैसे ही शांति के स्वरूप को जाननेवाला शांति की रक्षा कर पायेगा।

हमने सुना है कि मनुष्य जीवन दुर्लभ है।

दुल्लहे खुले माणुसे भवे चिरकालेण वि सव्वपाणिणं...

मनुष्य जन्म मिलना बहुत दुर्लभ है। प्रश्न खड़ा होता है कि हमें यदि दुर्लभ जीवन मिल गया तो हमने इसको कितना साधा, कितना सफल बनाया, कितना लाभ उठाया, इस जीवन का क्या उपयोग किया? प्रश्न है कि मेरे पास यदि कीमती हीरा आ गया तो उसका किस रूप में उपयोग किया?

यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। समीक्षण प्रज्ञा से विचार करें कि मैंने

अपने जीवन के इतने वर्षों को किसमें लगाया। अपने जीवन के कितने वर्ष गँवाए। यदि आँकड़े निकाले जाएँ तो…

…तो सोने में कितने वर्ष निकाल दिए। एक दिन में आदमी छह, सात या आठ घंटे सोता होगा। इस तरह से जीवन का एक तिहाई या चौथाई समय किसमें चला गया?

(लोगों ने कहा कि सोने में चला गया)

24 घंटे के दिन-रात होते हैं। उसमें आठ घंटे सोने में निकल गए तो 60 में से 20 साल निकल गए। बचे 40 साल। खाने-पीने में एक-दो घंटे रोज के हो गए तो कितने हो जाएंगे? दो घंटे के औसत से कितने हो जाएंगे? 60 वर्ष की उम्र में एक बटा बारह साल यानी पाँच वर्ष खाने-पीने में गए। व्यापार में कितने वर्ष गए, बातों में कितना समय गया, टी.वी देखने में कितने वर्ष गए? इन सबके बाद कितने वर्ष बचे? जीरो बटा जीरो। धर्म की आराधना के लिए कुछ समय निकाला, उसमें भी धर्म को साधा या नहीं! सामायिक के लिए बैठते समय मन शांत रहता है या घर-गृहस्थी में चला जाता है?

मंदिर की परिक्रमा करनेवाला मंदिर में प्रवेश नहीं कर सका। प्रसाद वितरण हो रहा था, किंतु लाइन लंबी होने से वहाँ तक नहीं पहुँच पाया और खाली हाथ ही आ गया। दूसरे, तीसरे, चौथे दिन भी नम्बर लगा, किंतु वहाँ तक नहीं पहुँच पाया। वैसे ही औपचारिकता सामायिक आदि धर्मानुष्ठानों की है। भावपूर्वक, श्रद्धापूर्वक जो अनुष्ठान होगा, लाभ उसी से हो पाएगा।

लोग चाहते हैं कि उन्हें शांति मिले किंतु कोई शांति का उपाय बताता है तो वह उपाय करने को तैयार नहीं होते। सबको रेडिमेड शांति चाहिए। बनी-बनाई खीर चाहिए। कुछ करना नहीं पड़े, बस आशीर्वाद से सब काम हो जाए। किससे हो जाएंगे सारे काम?

(लोगों ने कहा- आपके आशीर्वाद से)

सारे काम आशीर्वाद से कैसे हो जाएंगे? काम कैसे होगा?

(लोगों ने कहा- पुरुषार्थ करने से)

आशीर्वाद अपने आप मिल जाएगा क्या?

(लोग कहते हैं- नहीं भगवन्! उसके लिए तपना पड़ेगा)

आचार्य पूज्य जवाहरलाल जी म.सा. एक आख्यान फरमाया करते थे कि मोतीलाल सेठ की दो पत्नियां थीं। एक बड़ी थी और एक लोड़ी (छोटी) थी। बड़ी पत्नी ने सोचा कि अब मेरा काम नहीं है। अब सारा काम लोड़ी जी देख लेगी। मैं तो अब सेठजी के नाम की माला जपूंगी। सेठजी के नाम की माला गिनूंगी।

मोतीलाल जी एक दिन तपती गरमी में घर आए। उन्होंने दरवाजा खटखटाया तो बड़ी पत्नी ने कहा मैं आपके नाम की माला गिन रही हूँ, आप थोड़ा रुको। सेठ जी कहते हैं- मेरा गला सूख रहा है, दरवाजा जल्दी खोलो। वह कहती है कि बस थोड़ी-सी माला बची है, पूरी होते ही खोलती हूँ। लोड़ी जी ने आवाज सुनी तो उसने आकर दरवाजा खोला। सेठ जी को अंदर लिया, छाया में बिठाया, पानी से पाँव पखारे, चलने की क्लांतता कुछ कम हुई तो उसने पानी पिलाया। फिर विश्राम की व्यवस्था की। मोती जी को थोड़ी शांति हुई।

अब आप बताओ आशीर्वाद किसको मिलेगा? बड़ी पत्नी को या लोड़ी जी को?

(लोगों ने कहा- लोड़ी जी को आशीर्वाद मिलेगा)

लोग कहते हैं कि बावजी आपका आशीर्वाद मिल गया तो सब कुछ हो जाएगा। मेरा काम हो जाएगा। मेरा कल्याण हो जाएगा।

आशीर्वाद ऐसे मिलने वाला नहीं है। कुछ करोगे तो आशीर्वाद मिलेगा। इसलिए अपने पुरुषार्थ को जाग्रत करना चाहिए। भौतिक संपत्ति, वैभव, धन का लाभ बहुत बार प्राप्त हुआ है। बेटे, पोते, पड़पोते, लड़पोते बहुत बार मिले हैं। दास-दासी, नौकर-चाकर बहुत बार मिले, किंतु इन सबसे कार्य क्या सिद्ध हुआ? वर्तमान में संपत्ति मिल गई, उससे क्या हासिल किया? हम उल्टे तो नहीं हो गए। चौबे जी गए छब्बे बनने और बन गए दुबे जी। मुक्तेश्वर मुनि जी म.सा. कह रहे थे कि मुझे कुछ गीत की कड़ियां गानी हैं।

ओ मतवाले, प्रभु गुण गा ले, तू अपनी जबान से
तुमको जाना ही पड़ेगा संसार से...

कोई उपाय नहीं है। कुछ भी जैक लगाने वाला नहीं है। आपका

आशीर्वाद हो तो हम संसार से क्यों जाएंगे? अब बोलो ना आप क्यों जाएंगे?

(लोग कहते हैं– भगवन्! जाना तो सबको ही है। एक दिन हम भी चले जाएंगे)

जब जाना पड़ेगा तो अपने कर्मों को कौन भोगेगा?

(लोगों ने कहा– हम स्वयं ही भोगेंगे)

लोग कहते हैं कि बावजी आपका आशीर्वाद होगा तो सब कुछ होगा। यदि आशीर्वाद से ही सारे काम सफल हो जाते तो दुनिया से पुरुषार्थ नाम की चीज गायब हो जाती। लोग कामनाओं में लगे रहते हुए कहते कि मैंने पूजा–पाठ कर ली अब मुझे कोई चिंता नहीं है। अब मैं चिंतामुक्त हूँ।

भगवान कहते हैं कि ऐसा नहीं होता। जिन्होंने कर्मों को बाँधा है उन्हीं को भोगना पड़ेगा। कर्मों का भुगतान उसी को करना पड़ेगा। चाहे वह समभाव से करे या रुदनकर। कैसे भी करे भोग उसी को करना पड़ेगा। जब कर्म किए उस समय धर्मगुरुओं ने समझाया था कि भाई हिंसा मत करो, झूठ मत बोलो, बेईमानी मत करो, बेईमानी से धन मत इकट्ठा करो, किसी की अमानत को मत हड़पो। उस समय ये बातें सुहानी नहीं लगी क्योंकि तब सोच रहे थे कि इतना मेरे कब्जे में आ रहा है। सत्ता, संपत्ति, वैभव मेरे हाथ में आ रहे हैं। एकदम हथेली में पानी भरा। चुल्लू में पानी भरा हुआ नजर आता है, वैसे ही संपत्ति नजर आती है। थोड़ी देर चुल्लू में पानी देखेंगे तो कितना पानी मिलेगा?

(लोगों ने कहा– दिखेगा ही नहीं)

क्यों नहीं दिखेगा?

क्योंकि अंगूठे व अंगुलियों के बीच में छेद (जगह) है। उसमें से पानी झर–झर करके चला जाएगा। वैसे ही संपत्ति रुकने वाली नहीं है। वह भी चली जाएगी। पाप का उदय होने पर संपत्ति चली जाती है। वैभव चला जाता है।

परिवार को अपना मानते हैं। किसी को मानते हैं कि यह बहुत नजदीक का आदमी है। मानते हैं कि मेरे बिना इसका जिंदा रहना मुश्किल हो जाएगा। ऐसा सोच लेते हैं, विचार कर लेते हैं कि मेरे बिना परिवार का क्या होगा।

आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. जब गृहस्थ अवस्था में थे

तो वे द्वंद्व में आ गए। उनके मन ने कहा कि जवाहर तू यह क्या कर रहा है! तू विचार कर कि छोटी उम्र में तुम्हारी माता जी का देहांत हो गया, तू थोड़ा समझने लगा तो तुम्हारे पिता जी भी चले गए। तुम्हें तुम्हारे मामाजी ने पाला-पोसा, योग्य बनाया किंतु वह भी चले गए। मामा जी का छोटा बच्चा तुम पर आश्रित है और तुम दीक्षा की बात कर रहे हो! इस लड़के की जिम्मेदारी लेने से मत भाग। अपने कर्तव्य से भाग मत। इसका पालन कर। तुम्हारे ऊपर इसका दायित्व आया है तो निर्वाह कर। जवाहरलाल जी सोचने लगे कि बात तो सही है कि मुझे मामाजी के लड़के को, इस परिवार को ऐसे छोड़कर नहीं जाना चाहिए। उनको छोड़कर जाना उचित नहीं होगा।

फिर उनके भीतर एक बात उठी कि जवाहर तुम्हें बहुत अहं है कि मामाजी के परिवार का लालन-पालन तुम्हें करना है। जवाहर, तुमने मामाजी के परिवार का लालन-पालन करने को ठेका लिया है तो लालन-पालन कर। यदि आज तुम्हारी मौत आ जाए, तुम्हारे माता-पिता, मामाजी की तरह यदि तुम्हारी भी आज मौत हो जाए तो तुम्हारे मामाजी के परिवार का लालन-पालन कौन करेगा? उस बच्चे की देखरेख कौन करेगा? जवाहर तू क्यों भूल रहा है कि तू जब दो साल का था तो तुम्हारी माता चली गईं। क्या तुम्हारा लालन-पालन नहीं हुआ? फिर तुम्हारे पिताजी भी चले गए तो क्या तुम्हारे रहने की व्यवस्था नहीं हुई? तुम्हारा जीवन निर्वाह नहीं हो रहा था क्या? जवाहर तू फालतू की चिंता मत कर कि तेरे रहने से ही तेरे मामाजी के लड़के का लालन-पालन होगा। उसका अपना पाप है। उसका अपना पुण्य है। उसका अपना कर्म है। यदि उसका पुण्य होगा तो तू रहे या ना रहे उसकी देखरेख अपने आप हो जाएगी।

भूत मरे तो पलीत जागे। मैं नहीं रहूंगा तो भी कोई-न-कोई उसका लालन-पालन करनेवाला, उसकी देखरेख करनेवाला मिल जाएगा। कोई-न-कोई मौजूद होगा। यदि पाप कर्म का उदय आ गया तो बहुत प्रयत्न कर भी मैं उनको सुरक्षित बचाने में समर्थ नहीं हो पाऊंगा। शेर के मुँह में जाते हुए को कौन बचा सकता है। माँ मृगी खड़ी है और उसके बच्चे को सिंह ने मुँह में दबोच रखा है। उस बच्चे में इतनी शक्ति नहीं है कि वह सिंह के मुँह से निकल सके

और माँ में इतनी ताकत नहीं है कि वह सिंह से लड़कर अपने बच्चे को उसके मुँह से बाहर निकाल सके। उस माँ को दुख हो सकता है, किंतु उसके दुखी होने से बच्चे को जीवनदान नहीं मिल सकेगा। उसका बचाव मुश्किल है। भले ही उसकी माँ देखती रहे, आँखों से आँसू बहाती रहे, किंतु वह अपने बच्चे को बचा नहीं पाएगी।

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखनहार।।

मैं आपको क्या उपदेश दूँ क्योंकि आपको तो इतनी महत्त्वपूर्ण बातें पता हैं। तरस तो मुझे तब आती है, जब मनुष्य अपने दल-बल से बड़बोला बनकर कहता है कि मैं जैन हूँ, मैं अमुक पार्टी का हूँ, मैं अमुक कौम का हूँ, मेरा कोई क्या बिगाड़ कर सकता है। मौत के सामने उसकी हुंकार ठंडी पड़ जाती है। आवाज गायब हो जाती है। उसकी दयनीय दशा देखते ही बनती है। इसलिए हर इनसान को चाहिए कि वह गर्वोक्ति से बचे क्योंकि देवी-देवता, माता-पिता, भाई-बहिन, परिवार वाले या सगे-सम्बन्धी कोई भी मौत रूपी सिंह के जबड़े से बचानेवाला नहीं है।

प्रश्न होगा कि उक्त स्थिति में इनसान किसलिए संसार की उलझन में उलझता है? इसका उत्तर होगा कि मोह का चश्मा उसे निकलने नहीं देता। वह भ्रमित कर देता है और इनसान भ्रमित हो जाते हैं। लोग सोच लेते हैं कि यह तो उपदेश की बातें हैं। शास्त्रों की बातें हैं। सारी बातें आचरण करने की थोड़े ही होती हैं। सारे लोग दीक्षा ले लेंगे तो गोचरी कौन बहराएगा?

अरे भाई, तू पहले दीक्षा तो ले ले। पहले ही क्यों व्यर्थ चिंता कर रहा है कि सारे लोग दीक्षा ले लेंगे तो गोचरी कौन बहराएगा। सभी साधुओं की सार-संभाल कौन करेगा।

लोग क्या-क्या अर्थ निकाल लेते हैं। अपने बचाव के लिए क्या-क्या उपाय ढूँढ लेते हैं। यह तर्क कितना लचर है कि साधुओं की सार-संभाल कौन करेगा। साधुओं की सार-संभाल के लिए हमें तो संसार में रहना ही पड़ेगा। भगवान महावीर ने हमको साधुओं के सार-संभाल की जवाबदारी सौंपी है। अत: हम साधु कैसे बनें।

भगवान ने यह नहीं कहा कि साधु मत बनना। भगवान का कहना था कि साधु नहीं बन सकते तो श्रावक बनकर श्रावक के दायित्व का निर्वाह करो। साधु नहीं बन सकने की स्थिति में दूसरा विकल्प है। पहला विकल्प तो साधु बनने का ही है। साधु बननेवाला यह चिंता नहीं करेगा कि कल मुझे गोचरी कौन बहराएगा। वह किसी गाँव में गया, वहाँ पर कोई गोचरी बहराने वाला नहीं हुआ तो फिर क्या होगा। कई गाँव ऐसे भी होते हैं जहाँ साधु गोचरी नहीं करता। आपको ज्ञात होगा कि साधु किन-किन कुलों से, किन-किन घरों से गोचरी नहीं कर सकता।

(लोगों ने कहा- मांसाहारी घरों से)

जिसके चौके में मांस पकता हो, वहाँ से भिक्षा लेना वर्जित है। साथ ही किसी ने कह दिया कि मेरे घर आने की जरूरत नहीं है, किसी ने घर के बाहर बोर्ड लगा दिया हो कि कोई भी साधु-संत मेरे घर में प्रवेश नहीं करे, वैसे घरों में प्रवेश भी नहीं करना चाहिए, गोचरी तो दूर की बात है। यदि कुछ घर गोचरी वाले मिल भी गए, पर वे असूझते हो जाए तो क्या करे। इसका समाधान शास्त्र देते हैं कि कभी गोचरी मिले तो मस्ती से खा लो और नहीं मिले तो मौज करो। दो दिन, पाँच दिन या दस दिन तक गोचरी नहीं मिली तो कोई बात नहीं। यदि अंतराय कर्म का योग है तो भरी हुई पातरी उलट जाएगी, खाना नीचे गिर जाएगा।

गुरुदेव जब भीनासर विराज रहे थे उस वक्त का एक प्रसंग है। उनकी तबीयत खराब थी। देशनोक में दीक्षा प्रस्तावित थी। गुरुदेव ने कहा कि तुझे वहाँ जाना है। साथ में अन्य संत भी थे। हम सभी पलाना में स्कूल के एक कमरे में रुके थे। हमने गोचरी लाकर कमरे में रख दी। पीछे से कुत्तों की जात आई और पातरियां पलट दीं। उसी गाँव में दूसरी बार जाने का प्रसंग बना। पहली बार गये तो गौतम मुनि जी साथ में थे। दूसरी बार में वे साथ नहीं थे। उन्होंने सूचना भेजी कि ये वही पलाना स्कूल है ध्यान रखना। मैंने विचार किया कि जो एक बार ठोकर खा जाए, उसे दूसरी बार ठोकर नहीं खानी चाहिए। बार-बार ठोकर खाना नासमझी है। आदमी को एक बार ठोकर खाने से अक्ल आ जानी चाहिए।

कहने का आशय यह है कि अंतराय कर्म का योग होता है तो मिली हुई चीज का उपयोग होना भी संभव नहीं होता। परोसी हुई थाली भी आदमी खा नहीं पाएगा। थाली में पड़ी हुई चीज भी उसे मिल नहीं पाएगी।

कहते हैं कि मगध सम्राट श्रेणिक के पिता प्रसेनजित के सौ संतानें थीं। वे विचार करने लगे कि किसको अपना राज्य सौंपा जाए। किसको इस राज्य का राजा बनाया जाए। कौन इस राज्य का योग्य राजकुमार होगा। उन्होंने विचार किया कि इसके लिए मुझे परीक्षा लेनी चाहिए। उन्होंने एक परीक्षा का आयोजन किया।

एक बहुत बड़े हॉल में भोजन की व्यवस्था की गई। सारे राजकुमारों को बुलाया गया। सभी को एक ही पंक्ति में बिठाकर भोजन परोसा गया। राजा ने कहा कि भोजन परोसने के बाद एक घंटी लगेगी। उसके बाद ही भोजन चालू करना है। घंटी से पहले कोई भोजन चालू नहीं करेगा।

सभी राजकुमारों को भोजन परोसा गया। जैसे ही घंटी लगी वैसे ही शिकारी कुत्तों को छोड़ दिया गया। शिकारी कुत्ते झपट्टा मारने लगे तो 99 राजकुमार अपनी-अपनी थाली छोड़कर भाग गये, किंतु श्रेणिक नहीं भागे। श्रेणिक ने नजदीक वाली थाली सामने कर ली और उसमें से एक-एक रोटी कुत्तों के सामने फेंकते गए और स्वयं की थाली का खाना खाते रहे। यह दृश्य प्रसेनजित राजा देख रहे थे। यह देखकर उन्होंने जान लिया कि मैदान छोड़नेवाले कितने हैं और कितने डटे रहनेवाले हैं।

(लोग बोल उठते हैं- भगवन् सौ में से एक मैदान में रहा)

ऐसे कई प्रयोग करने के बाद उन्होंने श्रेणिक को मगध राज्य सौंप दिया। उसको राज्य की गद्दी पर बैठा दिया। वह राजा बना।

अंतराय कर्मों का योग हो तो परोसा गया भोजन भी उदरस्थ नहीं हो पाता। वैसे ही जैसे राजकुमारों को भोजन परोसने के बाद शिकारी कुत्ते छोड़ दिए गए तो एक के सिवाय किसी का भी भोजन नहीं हुआ। हम कितना भी कुछ कर लें, जब तक अंतराय होगा तब तक न हमको कोई सहयोग देनेवाला होगा और न कोई सहयोगी होगा।

आप लोग स्वयं जानते होंगे कि कोई सहयोगी नहीं होता। यदि ऐसा

होता तो अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा नहीं देना पड़ता। केवल एक वोट कम होने से उन्हें प्रधानमंत्री पद छोड़ना पड़ा। अभी मुख्यमंत्री अशोक जी गहलोत के समक्ष भी समस्या उत्पन्न हो गई थी। लोग कहते हैं कि ये तो राजनीति के खेल हैं। वे राजनीति के खेल हैं तो ये कर्म नीति के खेल हैं। जिस समय हमारा पुण्योदय होगा उस समय समझ लो कि पूरी दुनिया हमारी होगी। यदि हमारा पुण्य नहीं होगा तो ठोकरें खाते रहेंगे। कोई भी बचानेवाला नहीं मिलेगा।

राजा हरिश्चंद्र राजमहल में रहनेवाले थे। एक दिन वे कहाँ रहने को मजबूर हुए? तारा किसके वहाँ पहुँच गई? तारा अपने बेटे रोहिताश्व के साथ एक ब्राह्मण के यहाँ पहुँच गई। ब्राह्मण ने कहा कि मैं आपको तो काम पर रख सकता हूँ पर बच्चे को नहीं रख सकता। यह काम के लायक नहीं है। मैं इस लड़के को खाना नहीं दे सकता। तब तारा ने कहा कि हम दोनों एक ही में भोजन कर लेंगे। तारा ने कहा कि मैं आपसे इसके लिए भोजन नहीं माँगूंगी।

तारा ने अपना और रोहिताश्व का जीवन निर्वाह किया। किंतु कुदरत को परीक्षा लेनी थी तो रोहिताश्व को सर्प ने डस लिया। तारा रोहिताश्व को लेकर कहाँ पहुँची?

(लोगों ने कहा- तारा रोहिताश्व को लेकर राजा हरिश्चंद्र के पास पहुँची)

वह राजा से बोल रही है कि मुझे इसका दाह-संस्कार करना है।

हरिश्चंद्र ने कहा कि आप एक टका दो तो लड़के का दाह-संस्कार यहाँ हो सकता है।

तारा कहती है कि क्या बेटा मेरा ही है! यह आपका पुत्र नहीं है!

हरिश्चंद्र का दिल भर रहा था। उन्हें मन में रोना आ रहा था, किंतु अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ थे। उन्होंने कहा कि तारा कुछ भी समझो, अभी बेटे और बाप का संबंध नहीं है। मैं जिस मालिक के यहाँ काम रहा हूँ उसका आदेश है कि कोई भी दाह-संस्कार करने आये तो उससे एक टका लेने के बाद ही दाह-संस्कार करने देना है। जब तब मुझे टका नहीं मिलेगा, तब तक मैं आपको दाह-संस्कार करने की अनुमति नहीं दे सकता। उनके सामने कैसी विकट

परिस्थिति खड़ी हो गई।

उस विकट परिस्थिति में क्या किया हरिश्चंद्र राजा ने?

तन जाये तो जाए, मेरा सत्य धर्म नहीं जाए...

सत्य के लिए उन्होंने सारा राज्य छोड़ दिया। तारा को छोड़ा। रोहिताश्व को छोड़ा। हरिश्चंद्र ने कहा कि सत्य को नहीं छोड़ सकता। यह उनकी दृढ़ता थी, उनकी समझ थी।

हम विचार करें कि राजा हरिश्चंद्र मर्यादा में बँधे हुए थे, नहीं तो तैयार हो जाते। हम नादान नहीं हैं, नासमझ नहीं हैं, किंतु समझते हुए भी कान में तेल डालकर ऐसी नींद में सोना चाहते हैं कि कोई जगाए नहीं। बस सोते रहें और मौज मनाते रहें।

सोते रहने से क्या जिंदगी निकल जाएगी?

(लोग कहते हैं– नहीं भगवन्)

बहुत जिंदगी निकल गई। जो थोड़ी बची है वह भी निकल जाएगी। क्या उसको सफल नहीं करना चाहिए?

घी की कटोरी उलटने से कटोरी का आधा घी नीचे गिर जाए तो आधे घी को बचा लेना है या पूरा ही गिरा देना है? कौन सोचता है कि आधा गिर गया है तो आधा बचाकर क्या करूंगा? ऐसा नहीं सोचकर ऐसा सोचा जाता है कि जितना बचा है उसको उपयोग में लेना है। उसको फालतू में क्यों गिराना। इसी प्रकार जो जिंदगी बची है उसको तो सही तरीके से उपयोग में लो। जो व्यक्ति जल्दी समझ लेते हैं, अपनी जिंदगी को ठीक कर लेते हैं, वे मालामाल हो जाते हैं।

पाछली खेती को हाथ से जाने मत देना। वह हाथ से निकल गई तो फिर पछताते ही रह जाओगे।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय, जय, जय, जयकार...

शक्र ने कहा कि हे राजर्षि! आप दीक्षा लेना चाहते हो तो यह बहुत अच्छी बात है। आप कह रहे हो कि मुझे मिथिला से कोई लेना-देना नहीं है। आपने मिथिला की सुरक्षा की बात नकार दी, किंतु मैं यह कहना चाहूंगा कि आप उत्तम भवन, वर्धमान गृह बनावें और उसके चारों ओर ऐसी पोतिका

बनाएं जिस पर बैठकर कबूतर आदि बहुत-से जीव-जंतु समाधि को प्राप्त करें। इतना करके फिर आप दीक्षा ले लेना।

ऐसी बात सुनकर उन्होंने कहा कि हे ब्राह्मण देव! आप जो कह रहे हैं वह बात मेरी समझ में आ रही है, किंतु जिसको अपना लक्ष्य सामने दिख रहा हो वह अन्य कार्य में समय क्यों लगाए।

नमिराज ने कहा कि मुझे मोक्ष जाना है। मुझे कोई संशय नहीं है। मेरा दृढ़ आत्मविश्वास बोल रहा है कि मेरे लिए वहाँ पर स्थान है। मैं वहीं जाना चाहता हूँ और मैं वहीं जाऊंगा। ऐसी स्थिति में मैं बीच में भवन क्यों बनाऊं। बीच में समय क्यों लगाऊं। उन्होंने कहा कि जिसको विश्वास नहीं होता है वह भवन आदि बनाने में समय लगा सकता है, मैं नहीं। फिर उन्होंने पूछा कि उत्तम भवन बनाने से क्या हो जाएगा? क्या वह भवन शाश्वत होगा? क्या मैं सदा उसमें रह सकूंगा? यदि नहीं तो वैसे भवन आदि बनाने में समय क्यों लगाना। ऐसे समय गँवाने में हाथ क्या आएगा। जिससे कोई आत्मिक प्रयोजन सिद्ध न हो, समयज्ञ को उसमें हाथ नहीं डालना चाहिए।

नमिराज आगे कहते हैं कि ब्राह्मण देव! जिसको जहाँ बसना होता है वह वहाँ की बात करता है। किसी को ब्यावर में बसना है तो ब्यावर में घर बनाएगा। उसको मुंबई से क्या लेना-देना है। जिसको मुंबई में रहना है वह ब्यावर में क्यों घर बसाएगा। कुछ लोग ऐसा कर लेते हैं कि कभी आवश्यकता पड़ी तो वहाँ चले जाएंगे। कभी भागना पड़े तो वहाँ पर सुरक्षित हो जाएंगे, पर हर बार ऐसा भी संभव नहीं होता। कई बार व्यक्ति को कहीं पर भी सुरक्षा नहीं मिल पाती जैसा कि सौराष्ट्र में हुआ।

सौराष्ट्र कहने से आपको कुछ ध्यान में आ रहा है? सौराष्ट्र कहाँ है?

(लोगों ने कहा- गुजरात का हिस्सा है)

गुजरात का एक भाग है। जैसे राजस्थान का पार्ट मारवाड़ है, मेवाड़ है, वैसे ही गुजरात का एक पार्ट सौराष्ट्र है। सौराष्ट्र की बात को ध्यान में लो। वहाँ जब भूकंप की विभीषिका आई, तब मकान के मकान जमीन में धँस गए थे। कौन रक्षक बना? यह बात अलग है कि जो बच गए थे पर फँसे हुए थे उन फँसे हुए लोगों की सुरक्षा के लिए अनेक लोग, अनेक संस्थाएं पानी, भोजन

और सुरक्षा के साधन, जीविका के साधन पहुँचाने के लिए कटिबद्ध थीं। कई लोग अपने हाथों से अन्न वितरित कर रहे थे। वे दूसरों पर विश्वास नहीं कर रहे थे। दूसरे लोग कहीं बीच में ही न रख लें इसलिए कई लोग और संस्थाएं अपने हाथों से उन लोगों को सहायता देने लगे।

एक जगह की बात है। अन्न के कुछ पैकेट्स बच गये तो उन्होंने किसी से कहा कि ये आप रख लो आगे काम आएगा। पाँच-सात दिनों तक आपका ज्यादा चल जाएगा। जिसको दे रहे थे, उसने कहा कि हमको नहीं चाहिए। आज का मिल गया यही बस है। आगे की आगे सोचेंगे। उसने कहा कि संग्रह किया हुआ ही काम आता तो हमारे पास क्या कमी थी। हमने भी भंडार भर रखे थे। सोचा था कि कठिन समय में काम आएगा, पर वह काम नहीं आया। यदि काम आया होता तो आज आपको देने की नौबत नहीं आती। उसके समझ में आ गई, किंतु हममें अभी वह समझ नहीं आ पाई है।

भगवान ने साधु को बहुत सुरक्षित किया है। कोई टेंशन नहीं। कोई फिक्र नहीं। क्योंकि संग्रह करना नहीं है।

भगवान ने कहा कि पहले पहर का भोजन तीसरे पहर के आगे रखना नहीं और दूसरे पहर का भोजन शाम के बाद रखना नहीं। कुछ भी नहीं रखना। ऐसा नहीं सोचना है कि आगे भोजन कहाँ मिलेगा, इसलिए यहाँ से पोट बाँध लो। एक दिन बाँध लेने से जिंदगी निकल नहीं जाएगी। इसलिए चिंतामुक्त बनो। कइयों की चिंता रहती है कि ज्यादा घर नहीं तो आहार कहाँ मिलेगा। आहार नहीं मिलेगा तो शरीर कमजोर हो जाएगा।

भगवान ने कहा कि साधु जीवन में टेंशन करने का कोई काम नहीं है। आदमी की सेहत वैसे ही खराब हो जाती है। खाना नहीं मिलने से जितनी तबीयत खराब नहीं होती है उतनी चिंता से तबीयत खराब हो जाती है।

नमिराज कहते हैं कि जिसके लिए शाश्वत घर होगा, वह अशाश्वत भवन की बात क्यों सोचेगा। अतः ऐसा घर बनाने की मेरी इच्छा नहीं है जो भूकंप से घर गिर जाए, तूफान से ढह जाए। उन्होंने कहा कि मैं शाश्वत घर बनाना चाहता हूँ। मेरा प्रयत्न ऐसे घर के लिए हो रहा है जिसको कोई बिगाड़ नहीं सके।

ऐसे वचन सुनकर इंद्र सोचता है कि इनकी दृढ़ता अपूर्व है। ये मेरी बात को कहीं टिकते ही नहीं देते। इनका अंगूठा भी पकड़ने का मौका मिल जाए तो हाथ भी पकड़ने का मौका मिल जाएगा। वह सोचता है कि जब तक मुझमें क्षमता है, तब तक अलग-अलग तरीके से अपनी बात प्रस्तुत करता रहूंगा और प्रश्न करता रहूंगा। वह कहता है कि राजन, आप जो कह रहे हो वह ठीक है। दीक्षा लेना मैं बुरा नहीं मान रहा हूँ, किंतु प्रजा की रक्षा करना राजा का धर्म होता है। जनता की रक्षा करना राजा का कर्तव्य होता है। आप इस तरह उदासीन रहेंगे तो नगर में लूटपाट मच जाएगी। जनता में आतंक फैल जाएगा। आदमी के लिए घर से निकलना दूभर हो जाएगा। दीक्षा लेना है तो लीजिए, किंतु मेरा ऐसा निवेदन है कि पहले आप नीति को व्यवस्थित कर लो। नीति की व्यवस्था सुंदर बना लो। प्रजा में आतंक नहीं फैले, कोई लूटपाट नहीं करे। चोरी नहीं हो। नगर की रक्षा हो। यह सब करना आपका दायित्व बनता है। इसके बाद आप चाहें तो दीक्षा ले लेना।

नमिराज आगे क्या उत्तर देते हैं यह समय के साथ विचार करेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

25 अक्टूबर, 21

10

बहे धार संवेग

शांति जिन एक मुज विनति...

व्यक्ति को शांति की चाह क्यों है? यदि शांति की चाह है तो शांति मिल क्यों नहीं रही है? कहा जाता है कि जैसी चाह वैसी राह, फिर शांति की चाह है तो क्या कारण है कि शांति नहीं मिल रही है? क्या कारण है कि अशांति बनी हुई है?

बहुत बार ऐसा लगता है कि हमने जाना ही नहीं कि शांति क्या है और उसे कैसे प्राप्त करें। उसको पाने का उपाय भी कुछ पता होगा, कुछ पता नहीं होगा। अगर पता होगा तो विश्वास नहीं होगा। बहुत बार हम अविश्वास की अवस्था में रह जाते हैं। हमारा विश्वास घनीभूत नहीं बन पाता। जहाँ आत्मविश्वास कमजोर होता है, वहाँ पर शक्ति मिलना मुश्किल है। सफलता मिलनी मुश्किल है।

धम्मसद्धाए णं भंते जीवे किं जणयइ?

भगवान से पूछा गया– धर्म की श्रद्धा से जीव को क्या लाभ होता है?

यहाँ श्रद्धा का अर्थ धर्म की अनुभूति से है। उस अनुभूति से जीव को क्या लाभ होता है, धर्म की अनुभूति कैसे हो, धर्म का अनुभव कैसे होगा या कैसे होता है, ये जानने की बात है। जब अनुभव होगा तो धर्म होगा और धर्म की अनुभूति होगी तो शांति के स्वरूप को फिर अलग से जानने की आवश्यकता नहीं होगी।

सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ...

जीव, अशांति के कारणों से अलग हो जाए तो उसको अशांति सता नहीं पाएगी। उसके निकट फटक भी नहीं पाएगी। किंतु जब हम धर्म की आराधना करते हुए भी अशांत बने रहते हैं तो यह बात समझ में नहीं आती कि

धर्म की श्रद्धा से जीव को शांति और समाधि कैसे मिल जाएगी। इसको अच्छी तरह से समझना होगा। जो इसको समझ लेंगे वे कभी दुखी नहीं होंगे।

अर्हन्नक श्रावक का वर्णन आगमों में प्राप्त है। उसके धर्म की चर्चा देवलोक में चली कि वह ऐसा श्रावक है जिसे धर्म से चलायमान नहीं किया जा सकता।

हमारी चर्चा भी किसी देवलोक में हो रही है या नहीं?

अर्हन्नक की धर्म चर्चा को सुन एक देव को यह विश्वास नहीं हो रहा था कि मनुष्य जैसा चंचल प्राणी लोभ-लालच से निकलकर धर्म श्रद्धा में अटल रहेगा। यह बहुत कठिन है। उसकी ऐसी धारणा थी कि मनुष्य या तो भय से फिसल जाएगा नहीं तो लोभ से। आँख दिखाने से भी वह धर्म से हट जाएगा। कहने लगेगा कि मुझे बचा लो। ऐसी उसकी अपनी कल्पना थी। ऐसी सोच एकांत गलत भी नहीं है।

राजा जयचंद क्यों फिसल गए?

उनको बड़ा ओहदा मिल गया और वह फिसल गए। केवल राजा जयचंद की ही बात नहीं है। बहुत सारे राजाओं का ऐसा हश्र हुआ है। देव ने विचार किया कि यहाँ बात करने के बजाय पहले मुझे अर्हन्नक श्रावक के पास जाकर उसकी परीक्षा लेनी चाहिए। उस समय वह समुद्र यात्रा पर गतिमान था। वह जहाज पर बहुत सारा माल लेकर व्यापार के लिए निकला था। देव वहाँ पहुँचा और जहाज को अपनी दो अंगुलियों पर उठाकर कहता है कि तू धर्म को छोड़, सत्य को छोड़, नहीं तो मैं जहाज को गिरा दूंगा। जहाज गिरा दूंगा तो उसके भीतर तुम्हारी जितनी भी संपत्ति है, वह समुद्र में बह जाएगी। तुम जितना भी माल लेकर जा रहे हो वह नष्ट हो जाएगा।

ऐसे समय में भी अर्हन्नक अपनी धर्म साधना में लीन था। उसने कोई जवाब नहीं दिया। देव दूसरी बार कहता है कि तुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा क्या, सोच ले, विचार कर ले। उसके मन में एक ही विचार गतिशील था कि यदि धर्म तिराने वाला नहीं होगा तो अधर्म तो कभी नहीं तिरा सकता। जहाज धर्म से तिर सकता है, अधर्म से नहीं।

कहा जाता है कि साथ वालों ने अर्हन्नक से कहा कि 'जैसा देव बोल

रहा है वैसा आप कर लो तो संकट टल जाएगा।' हमारे सामने यदि ऐसा ही संकट आ जाए, बंदूक की नाल सामने करके कोई कहे कि हाँ कर लो नहीं तो अभी गोली मार दूंगा तो हम क्या बोलेंगे?

ऐसे में बहुत-से लोग फिसल जाते हैं। उसके साथ मिल जाते हैं, किंतु मौत तो वहाँ भी खड़ी है। ऊपर से जहाज को नीचे गिराएगा तो कौन बचेगा! उसके बावजूद अर्हन्नक के मन में कोई भय नहीं था।

उसके मन में निर्भयता कहाँ से आई?

धर्म की अनुभूति से, आत्मविश्वास से निर्भयता आई। जब आत्मानुभूति होती है, आत्मविश्वास जगता है, धर्म की अनुभूति होती है तो कैसा भी संकट आ जाए, कैसी भी विपत्ति आ जाए व्यक्ति विचलित नहीं होता। हम बहुत सारे उदाहरण सुनते हैं। शूली का सिंहासन हो जाने की बात सुनते हैं। इस संबंध में भगवान कहते हैं-

'नत्थि जीवस्स नासुत्ति'

अर्थात् जीव का कभी नाश नहीं होता। जिसे धर्म की अनुभूति हो जाती है उसके लिए सारे पदार्थ, सारे पुद्गल, सारा वैभव नाकुछ हो जाता है।

'मुझ मन तुझ पद पंकजे रे, लीनो गुण मकरंद'

तुम्हारे पद-पंकज से गुण मकरंद प्राप्त करने के बाद इंद्रचंद्र, नागेंद्र की रिद्धि तुच्छ हो जाएगी। नागेंद्र की रिद्धि अर्थात् भवनपति व ज्योतिषी देवों की रिद्धि उसके सामने फीकी है। उसको उससे कोई लेना-देना नहीं रहता। इस बात को स्पष्ट करने के लिए आप विचार करें जंबू कुमार की बात पर। अथाह संपत्ति घर में होते हुए भी जंबू कुमार को वैराग आया। उन्होंने विचार नहीं किया कि इतनी सारी संपत्ति का क्या होगा। बल्कि यह विचार किया कि बहुत बार इन संपत्तियों का भोग हो गया, किंतु इनसे कोई कार्य सिद्ध नहीं हुआ। इससे स्पष्ट है कि जिसके मन में धर्म रम जाए, उसे मेरु पर्वत जितना धन भी मिल जाए तो उसका मन लालायित नहीं होगा। उसका मन फिसलेगा नहीं। उसे अशांति नहीं होगी। अशांति तब आती है जब किसी बात पर मन फिसल जाता है।

जैसे रोटी दिखने पर कुत्ता दुम हिलाने लगता है, वैसे ही हमारे सामने थोड़ा-सा धन-संपत्ति आ जाए तो मन डोलने लगता है। वहाँ हमें अशांति प्राप्त

होती है।

यदि हमने तीर्थंकर देवों के पद-पंकजों का मकरंद प्राप्त कर लिया, अर्थात् धर्म को प्राप्त कर लिया तो जिंदगी में अशांति की बात नहीं आएगी, किंतु हम तो धर्म का नाटक कर रहे हैं। एक बहुरूपिया भी साधु की पोशाक पहन सकता है। कोई डाकू की पोशाक पहन सकता है। बुद्धदास का उदाहरण ले लीजिए। उसने इतनी अच्छी तरह से नाटक किया कि किसी को मालूम न पड़े कि यह सच में श्रावक है या कुटिल है। सुभद्रा से शादी करने के लिए उसने सामायिक, पौषध, संवर सीखे।

ये सारे अनुष्ठान उसने किसलिए सीखे?

(लोगों ने कहा- सुभद्रा से शादी करने के लिए सीखे भगवन्)

उसने सुभद्रा के लिए इतना सारा नाटक किया। उसको कर्म निर्जरा से कोई लेना-देना नहीं था। धर्म साधना से कुछ लेना-देना नहीं था। जब उसने जाना कि सुभद्रा जैन धर्म वाली है और वह स्वधर्मी के साथ ही शादी करेगी तो उसने श्रावक बनने का नाटक किया। वह ऐसा श्रावक बना कि कोई नहीं कह सकता कि असली नहीं है। नकली व्यक्ति सामान्य से ज्यादा सावधान रहता है कि मैं कहीं पकड़ में न आ जाऊं।

धर्म के लिए यतनालीन होना जरूरी है। यदि यतना नहीं होगी तो क्रियाएं कितनी भी क्यों न हों धर्म की आराधना नहीं होगी। आप लोग सामायिक, पौषध में होते हैं तो हाथ में पूंजनी व डांडिया होता है। पूंजनी व डांडिया यतना के लिए होता है लेकिन क्या सचमुच यतना हो पाती है। हाथ में रहे पूंजने का साधन डांडिया कहाँ फिरता है व हम कहाँ चलते हैं! हम उसे जब नीचे रखते हैं तो उसकी आवाज तो नहीं होती! एक चुटकी बजाने में भी जब हम वायुकाय की विराधना मानते हैं तो क्या उस आवाज से वायुकाय की विराधना नहीं होगी। ऊपर से गिराने से आवाज होती है। उससे वायुकाय की यतना होना कठिन है।

अत: यतना की महिमा हमारे जीवन में आनी चाहिए। धर्म पैदा होता है यतना से। अगर यतना नहीं होगी तो धर्म नहीं होगा। खाली मुँहपत्ती में धर्म होता तो लोग राली बाँध लेते। माला में धर्म होता तो लोग माला बेचते ही

नहीं। हम केवल माला और उसकी बात को सोच लेते हैं, किंतु इस पर ध्यान नहीं देते कि यतना हमारे जीवन में कितना असर कर रही है। हमारा बैठना-उठना सब कुछ यतना से होना चाहिए।

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सुवे...

उठना, बैठना, सोना साधु के लिए भी जरूरी है और सभी के लिए भी जरूरी है। आप देखो सारी चीजें व्यावहारिक हैं। पर यतना से होते ही धर्म पैदा हो जाता है। इसलिए बताया गया है कि यतना से पाप कर्म का बंध नहीं होगा।

किसी नदी में इतना पानी होता है कि आदमी डूब जाए, जबकि किसी नदी में आदमी के पैर भी नहीं डूबते। नदी रूप से दोनों हैं। जिसमें आदमी डूब जाए वह नदी है या जिसमें आदमी के पैर डूब जाएं वह नदी है?

(लोगों ने कहा कि दोनों ही नदियाँ हैं)

जो प्रवाहित होती है वह नदी है अर्थात् जिसमें पानी बहता है वह नदी है। जो पानी रुका हुआ है वह कुआँ, तालाब, बावड़ी कहलाता है। वैसे ही हमारे में कषाय अनंतानुबंधी नहीं होगा, किंतु संज्वलन का अभाव नहीं है। उसका सद्भाव दसवें जीवस्थान तक मौजूद रहता है, पर वह कषाय निर्वेग रूप से है इसलिए कर्मबंधन की प्रक्रिया रुकी तो नहीं, किंतु उसका घना बंध भी नहीं है। उसमें हम अपने आपको नियंत्रित कर सकते हैं कि मेरे पाप कर्मों का बंध न हो।

दुख देने वाला कौन-सा कर्म है, संसार में जीव को दुख देनेवाला कौन-सा पाप है?

वैसे तो मोह कर्म दुख देने वाला होता है। मोह कर्म पाप रूप है। पाप कर्म दुख देने वाला होता है। पाप कर्म कष्ट-पीड़ा देने वाला होता है। हम यदि चाहते हैं कि आगे के जन्मों में, क्षणों में, हमें दुख पैदा नहीं हो तो ऐसी प्रवृत्ति करें कि पाप कर्मों का उपार्जन ही न हो। यदि 24 घंटे यतना में चलें तो बहुत अच्छी बात है। 24 घंटे नहीं चल सकते तो जिस समय धर्मक्रियाएं कर रहे हैं उस समय कैसी भी स्थिति आ जाए यतना नहीं छूटनी चाहिए।

उपदेश देना मेरा काम है। कहना मेरा काम है। किसी एक को भी मेरी बात लग गई तो मेरा बोलना सार्थक हो जाएगा।

होगा या नहीं होगा?

(लोगों ने कहा- होगा भगवन्)

भगवान महावीर ने बहुतों को उपदेश दिया तो क्या सब लोग साधु बन गए?

(लोगों ने कहा- नहीं बने भगवन्)

सब लोग साधु नहीं बने, किंतु उनमें से कई लोग बने। यहाँ मुमुक्षु आत्माएं बैठी हैं। कितनी बैठी हैं?

(लोगों ने कहा- तीन)

ध्यान से देखो, तीन ही हैं क्या? आपको तीन ही दिखाई दे रही हैं क्या? ये तीन तो दीक्षार्थी हैं। जिनकी दीक्षा फाइनल हो गई वे दीक्षार्थी हैं, बाकी मुमुक्षु हैं। कितनी बहनें मुमुक्षु हैं, आपको नहीं पता है। आप बोलेंगे कि हम वहाँ नहीं जा सकते। हमें वहाँ जाने की अनुमति नहीं है। कोई बात नहीं। किंतु उनमें ये भाव जगे कैसे? उनको क्या कमी थी? उनके घर में सुख-सुविधा की क्या कमी थी? उनको फैंसी कपड़ों की क्या कमी थी?

साधु जीवन में ये सब नहीं मिलेंगे। घर में रंग-बिरंगे कपड़े मिलेंगे पर साधु जीवन में ऐसा कुछ नहीं मिलनेवाला है। उनके भी शौक थे, पर उन्होंने त्याग दिए।

'लद्धे विप्पिट्ठि कुव्वई'

जिसको यह बोध हो जाता है कि बाहरी पदार्थों में शांति मिलनेवाली नहीं है, उसको फिर आप चाहे कितना भी घुमाओ-फिराओ, प्यार से, मोहब्बत से, वह आपकी बातों में आनेवाला नहीं है। कहीं भी घुमा लो इनका मन घूम जाएगा क्या?

(लोगों ने कहा- नहीं घूमेगा भगवन्)

क्यों प्रकाश जी! मेहंदी तो आपने भी रचाई है और इनके भी लगी हुई है। उनको मेहंदी के प्रति अपने मन में कितना राग है। क्या ये ऐसा सोचेंगी कि दीक्षा लेने के बाद मैं पानी में हाथ नहीं डालूंगी, नहीं तो मेरी मेहंदी उतर जाएगी, मेहंदी का रंग धूमिल हो जाएगा! विचार करें ये परिवर्तन कैसे आया!

'सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ'

यह धर्म श्रद्धा का प्रमाण है। धर्म श्रद्धा के भाव गहरे होते हैं तो साता रूपी सुख में निमग्न व्यक्ति का मन ऐसा बदल जाता है कि मिलने वाली चीजों में मन नहीं लगता। उसका मन विरक्त हो जाता है। वह कहता है कि नहीं चाहिए मुझे ये चीजें। मैंने बहुत स्वाद लिया, बहुत जायका लिया, उससे कर्म बंधन के अलावा और क्या हुआ। क्षण भर के लिए स्वाद ने मुझे कहाँ डाल दिया। ये रसगुल्ले बहुत अच्छे हैं, ये आलू की सब्जी बहुत मनोज्ञ है, ये गुलाबजामुन बहुत पसंद है, इस पसंद और स्वाद आदि ने क्या-क्या कहर नहीं ढाया है। इन्हीं के कारण हम अनादिकाल से यातनाएं सहते आए हैं।

वह दृश्य हमें यदि टीवी पर आने वाले चलचित्रों की तरह नजर आ जाए तो हमारा दिल हिल जाएगा। यह तो ठीक है कि बीच में दीवार खड़ी है जिससे हम एक से दूसरे जन्मों को देख नहीं सकते। यदि पिछले जन्मों की सारी बातें याद भी आ जाएं तो पता नहीं हमारी दशा कैसी हो जाए। अरे, यह पिछले जन्म में मेरा भाई था, पहले यह मेरा दोस्त था, ये तो मेरे माता-पिता थे। हमने किसके साथ क्या व्यवहार किया। जिनको मैं अपना मान रहा हूँ उन्होंने मेरे साथ क्या खेले खेले। मैंने उनके साथ कैसे-कैसे खेल खेले, इन सबका चिट्ठा सामने आ जाएगा, किंतु कुदरत की देन है कि बीच में दीवार डाल दी, जीवन में पीछे की बातें याद नहीं आती। नया खेल खेला और पुराना खेल छोड़ा। हमने पहले से लेकर सातवीं तक कोई भी नरक बाकी नहीं छोड़ा। छठे आरे में भी हमने जन्म-मरण किए।

दो-चार बार नहीं, आगम के भाषा के अनुसार चर्चा करेंगे तो अनंतानंत बार हमने उन स्थानों, कष्टों को भोगा। उनकी हमें अनुभूति नहीं हो रही है इसलिए आज भी पाप कर रहे हैं। झूठ बोलने में संकोच नहीं हो रहा है। क्रोध, मान, माया, लोभ, अहंकार करने में हमें कहीं भी भय नहीं होता। भय नहीं होता कि मैं क्या कर रहा हूँ और इसका क्या परिणाम होगा।

एक बार जिसका हाथ आग में चला जाए वह दूसरी बार आग में हाथ नहीं डालेगा। वह सावधान रहेगा। एक बार दूध पीते हुए किसी की जीभ जल जाए तो वह छाछ भी फूँक-फूँककर पीएगा। वह छाछ पीएगा तो भी सोचेगा कि दूध तो नहीं है।

एक व्यक्ति ने कुत्ते को रोटी डालकर ऊपर से जोरदार डंडा मारा। उसने दूसरे दिन फिर कुत्ते को रोटी डाली। अब कुत्ता एक बार रोटी को देखता और एक बार रोटी डालने वाले को, उसके हाथ में रहे हुए डंडे को भी देखता। उसकी जीभ रोटी खाने के लिए लपक रही है। उसकी जीभ से पानी टपक रहा है। वह रोटी को देख रहा है फिर आदमी को देख रहा है। उसको भूख भी है फिर भी रोटी में मुँह नहीं डाल रहा है।

क्यों नहीं डाल रहा है?

(लोगों ने कहा- उसको डंडे की चोट याद है)

कल की चोट अभी भी उसको याद है, इसलिए वह रोटी को दूर से देख रहा है। कुत्ते को याद है किंतु हमको नरक की चोट याद नहीं है। निगोद के दुख हमको याद नहीं हैं। इसलिए हम और चोटें खाने की तैयारी करते जा रहे हैं।

एक व्यक्ति को किसी कारण से पुलिस ने पकड़ लिया और जेल में डाल दिया तो वह व्यक्ति कह रहा है कि डाल दिया तो डाल दिया, क्या हुआ। वह हा-हा करते हुए हँस रहा है। उसे न लाज है और न शर्म ही। ऐसे लोगों को कैसे समझा जाए। हम लोगों ने भी इतने-इतने थपेड़े खाए फिर भी लाज-शर्म कहाँ है? अब भी बेधड़क झूठ बोल रहे हैं और हिंसा करने में पीछे नहीं हट रहे हैं। मन में एक बार भी संवेदना की बात नहीं आती है कि मैं हिंसा कर रहा हूँ।

श्रावक के लिए बताया गया है कि उसके मन में विवशता रहती है। उसके भीतर लाचारी के भाव रहते हैं। वह जानता है कि हिंसा पाप का कारण है, किंतु परिवार और अपने जीवन निर्वाह के लिए मुझे ऐसा करना पड़ रहा है। माँगकर खाना मेरा धर्म नहीं है इसलिए मुझे यह सब करना पड़ रहा है। मुझे पता है कि कच्चे अनाज में जीव हैं फिर भी मुझे भोजन पकाकर खाना पड़ रहा है। परिवार के लिए मुझे हिंसा करनी पड़ रही है। परिवार के प्रति मेरी जवाबदारी है इसलिए मुझे जीवों की हिंसा करनी पड़ रही है।

एक बात ध्यान में लें कि वह गुलछर्रे उड़ाने के लिए हिंसा नहीं कर रहा है। वह प्रदर्शन के लिए हिंसा नहीं कर रहा है। जो हिंसा को जान रहा है वह दिखावा, प्रदर्शन किसलिए करेगा, क्यों करेगा। वह जानता है कि प्रदर्शन में

अनावश्यक जीवों की हिंसा होती है, अनर्थ हिंसा होती है। अत: वह ऐसी प्रदर्शनकारी हिंसा को बढ़ावा नहीं देता, अपितु अपनी आवश्यकता को सीमित करने का प्रयास करता है।

हिंसा उसको लाचारी और विवशता से करनी पड़ रही है। ऐसी स्थिति में उसमें उसे आनंद तो आ ही नहीं सकता। उसको खुशी हो नहीं सकती। हिंसा में खुश वे होते हैं जो मौज-शौक के लिए जीवों की विराधना करते हैं। ऐसे लोग प्रतिस्पर्धा करते हुए देखे जाते हैं। महेश इतनी मौज मनाता है तो दिनेश क्यों पीछे रहेगा। बहुत बार अपनी धाक जमाने के लिए भी लोग हिंसा को बढ़ावा देते हैं। ऐसे व्यक्ति भूल जाते हैं कि जो करेगा मजा वह पाएगा सजा।

कुदरत में देर हो सकती है पर अंधेर नहीं होती।

बंधुओ! यह जन्म बड़ा महत्त्वपूर्ण है। बाजी आपके हाथ में है। उसको उल्टी करो या सुल्टी करो। पांडव बाजी हारते गए वैसे ही हम हारते जाएंगे क्या? उन्होंने द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया था। क्या आप भी अपने जन्म को दाँव पर लगाने के लिए तैयार हैं?

बंधुओ! क्या हमने हारने के लिए जन्म लिया है या वस्तुत: जीतने के लिए आये हैं?

मन संकल्पित करो कि हम इस संसार में हारने के लिए नहीं, जीतने के लिए आये हैं, पर ध्यान रखना! मुरझाए मन से जीत होने वाली नहीं है। आत्मविश्वास होना चाहिए कि बाजी जीतेंगे। बाजी मारेंगे। किंतु हमारा आत्मविश्वास है कहाँ? हम तो कहते हैं कि म.सा. बाजी कांई मारा, मन कहणो कोनी करे। नैराश्य से ऊपर उठो, अपनी हिम्मत को जगाओ। अंतर्मन से यह विश्वास जगाओ कि हम जीतेंगे, हम भी सफल होंगे और हम भी सिद्ध बनेंगे, हम उसी डगर पर आगे बढ़ेंगे।

ये विचार 'ऊँची दुकान फीके पकवान' की कहावत को चरितार्थ न करें। यथार्थ के धरातल पर विचार करना चाहिए कि संसार का सुख, संसार का वैभव, संसार की साता हमने कितनी बार पाई है। हमें सब साधन मिले। खाना-पीना, घूमना-फिरना सब मिला। क्या बाकी रहा? क्या हम इसी में खो जाएं? यदि इसी में रमते रह गए तो हो सकता है कि वापस नरक में जाएं,

निगोद में जाएं अथवा पशु योनि में चले जाएं।

उस स्थिति में क्या होगा? वहाँ समझाने वाला कौन मिलेगा?

यदि कोई मिल भी जाए समझाने वाला तो हमारी समझ कितनी कामयाब हो पाएगी। इसलिए सोचें कि यह जीवन इस बार भी हाथ से निकल गया तो पता नहीं वापस कब मनुष्य जन्म प्राप्त हो। कब तीर्थंकर देवों की वाणी सुनने को मिले और कब बोध जगे।

आपको दो दिन से अनन्य मुनि जी सुना रहे थे कि असंख्येय बार हमारा जन्म-मरण पृथ्वीकाय आदि रूप से हुआ है। असंख्येय बार का मतलब ऋषभदेव भगवान से लेकर भगवान महावीर तक का काल। बल्कि उससे भी ज्यादा काल। वनस्पतिकाय में यदि चले गए तो कोई छोर ही नजर नहीं आएगा। जैसे समुद्र के किनारे खड़े आदमी को समुद्र के दूसरी ओर का छोर नजर नहीं आता, वैसे ही अपना कोई छोर नजर नहीं आएगा। अनंतानंत तक केवल निगोद में ही जन्म-मरण होता रह सकता है। जन्म-मरण का यह चक्र बार-बार चलता ही रहेगा। अभी हममें समझ है, जैसा चाहे वैसा कर सकते हैं। यह समझ वहाँ नहीं मिलेगी।

यदि दस आदमियों को संयुक्त बेड़ी बँधी हुई हो और उनमें से अकेला आदमी कुछ करना चाहे तो नहीं कर पाएगा। यदि उनको जाना है तो दसों को साथ चलना पड़ेगा। उनको एक साथ रहना पड़ेगा। निगोद में अनंतानंत जीव एक शरीर में रहते हैं। वे अंनतानंत जीव एक साथ रहेंगे। आहार, जन्म-मरण सबका एक साथ होता है क्योंकि उनका शरीर एक ही है।

अभी हमारा शरीर स्वतंत्र है। हमारी बुद्धि स्वतंत्र है। हमारा मन स्वतंत्र है। हम चाहें तो कुछ भी कर सकते हैं। अभी बाजी हमारे हाथ में है। यह बाजी हाथ से निकल गई और निगोद में चले गए तो अभी जो बताया उसके अनुसार मरेंगे तो सब साथ और जीएंगे तो सब साथ। अनंतानंत जीवों को एक साथ जन्म लेने और एक साथ मरण होने का जो प्रवाह चल रहा है उसी प्रवाह में हम भी प्रवाहित होते रहेंगे। ऐसे ही प्रवाह में बहना चाहते हैं या इससे बचना चाहते हैं, यह निर्णय हमें ही करना है।

नाना गुरु ने विचार किया कि मुझे ऐसे जन्म में नहीं जाना है। मुझे छठे

आरे में जन्म नहीं लेना है। उन्होंने एक व्याख्यान में सुना कि छठे आरे में जीवन की क्या दशा होती है। छठे आरे में जीवन कैसा होता है। सुनने के बाद जब वे घोड़े पर सवार होकर जंगल के रास्ते से जाने लगे तब उनके भीतर वे शब्द गूँजने लगे। जैसे टीवी पर सीरियल आता है उसी प्रकार उनके भीतर शब्द आने लगे। उनको वहीं पर रोना आ गया। वे रुदन करने लगे। रुदन करते हुए सोचने लगे कि क्या होगा मेरी आत्मा का।

आपके मन में भी क्या कभी ऐसे भाव जगे? क्या कभी ऐसा भाव आया कि मेरी आत्मा का क्या होगा?

नानालाल जी रुदन करते हुए विचार करने लगे कि मैंने पेड़ों को कटवाया। अपने स्वार्थ के कारण मैंने हिंसा की। मैंने बड़ा पाप किया। मुझे छठे आरे में जाकर दोबारा जन्म लेना पड़ेगा किंतु मुझे छठे आरे में नहीं जाना है। मैं अपने आपको छठे आरे में जाने से बचाऊंगा।

म्हाने अब के बचा लो जिनराज, म्हाने तो थारो आसरो...

हमारी आत्मा ही हमको बचाने वाली है और वही डुबोने वाली है। **'अप्पा कत्ता विकत्ता य'** अर्थात् आत्मा ही कर्ता है और आत्मा ही विकर्ता है। आत्मा ही नरक में ले जाने वाली होती है और वही तिर्यंच में ले जाती है। हम कहते हैं कि हे प्रभु मुझे बचा लो किंतु कोई भी बचाने वाला नहीं हैं। कर्म हमने किया तो भोगना भी हमें ही पड़ेगा। न परिवार बचा पाएगा न परमात्मा।

कर्म तुमने किया तो भोगना किसे पड़ेगा?

(लोगों ने कहा– कर्म हमने किया तो भोगना स्वयं को ही पड़ेगा)

इसलिए ऐसा कुछ करें कि अपने निमित्त से पाप न हो। कहीं-कहीं लोग ऐसा ढोंग करते हैं कि मैं खाना बनाऊंगा तो मुझे पाप लग जाएगा।

आपके लिए रसोई बनेगी तो उसका पाप किसको लगेगा? रसोई बनाने वाले को या खाना खाने वाले को?

(लोगों ने कहा– दोनों को ही लगेगा)

खाने वाला यदि आसक्त भावों से खा रहा है तो वह पापकर्मों का उपार्जन करेगा, पर पहला निवाला लेते ही उसको यह बोध जग जाए कि न जाने कितने जीवों की घात होने के बाद यह निवाला मेरे मुँह में आ रहा है तो

क्या वह उसके स्वाद में आशक्त हो पाएगा? शायद नहीं। सोचा हमने कभी कि कितने जीवों की घात हुई, तब जाकर भोजन का एक निवाला बना और हम उस निवाले को मुँह में ले रहे हैं। असंख्येय किंवा अनंत जीवों की घात होने के बाद वह निवाला मुँह में आ रहा है। उसे खाते हुए कोई कहे या सोचे कि अहा! क्या स्वाद है तो ऐसा होने पर क्या होगा?

पाप कर्मों का बंध होगा। इसलिए खाते वक्त निर्वेद भाव होने चाहिए न कि आसक्ति के भाव। निर्वेद भाव होंगे तो विचार बनेगा कि रे जीवड़ा! कब तुम्हारा खाना छूटेगा। एक जीव के लिए कितने जीवों की घात करनी पड़ रही है, कितने जीवों की हिंसा हो रही है। वह दिन धन्य हो जाएगा जिस दिन मेरा जीव संथारा, संलेखना स्वीकार कर लेगा। ऐसी गहरी अनुभूति हमारे भीतर जगनी ही चाहिए और जग जाएगी तो संसार सर्पिणी की कुंडली से बाहर छिटक जाएंगे। उसके जबड़े में नहीं जा पाएंगे। कितने लोग हैं जो उस सर्पिणी की कुंडली से बाहर निकलना चाहते हैं?

(लोगों ने कहा- तीन मुमुक्षु बहनें हैं)

(जिनकी दीक्षा फाइनल हो चुकी है)

ये बहनें आपको नजर नहीं आ रही हैं? (अन्य मुमुक्षु बहनों की तरफ इशारा करते हुए)

जो आत्माएं उस कुंडली से बाहर निकल गईं, वे बच गईं। उन्होंने अपने को जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर लिया। हमें भी अपनी आत्मा को जन्म-मरण के चक्र से बाहर निकालना है।

हमको संसार के, निगोद के दुखों को नहीं झेलना है तो उसके लिए केवल शमसाणिये वैराग्य से काम नहीं चलेगा। क्षणिक निर्वेद काम नहीं आएगा। उसके लिए संवेग और निर्वेद की धारा सतत प्रवाहित होनी चाहिए। एक क्षण के लिए भी हमें कषयों में नहीं जाना है। प्रमाद में नहीं जाना है। हमारा वैराग्य दीप सदा जलता रहे। ऐसा न हो कि हमारी साधना में कोई बाधा आ जाए। ऐसा अवसर न बने कि हमारा दीया बुझ जाए। इसे बुझने नहीं देना है। लालटेन में एक ग्लास लगा रहता है ताकि हवा से लालटेन बुझे नहीं और रोशनी देता रहे। हमको भी संवेग और निर्वेद पर ग्लास लगाए रखना है ताकि

कितना भी हवा का झोंका चले वह वैराग्य को, मेरी भावना को बुझने नहीं दे। मेरी यह ज्ञान ज्योति अखंड रूप से प्रज्वलित रहे। मेरी ज्योति सदा अखंड रहे। इस प्रकार की साधना करनी है।

दीक्षा के निमित्त से कई लोग उपस्थित हैं। उन्हें भी विचार करना चाहिए कि केवल दीक्षा देखने के लिए नहीं आए है। अपनी आत्मा को आलोकित करना है। एतदर्थ लक्ष्य हो कि मेरे भीतर भी ज्ञान जगे, बोध जगे। हमारी आत्मा यतनालीन हो जाए। मेरे निमित्त से अनावश्यक रूप से एक भी जीव की विराधना नहीं हो। इसके लिए नमिराज का जीवन प्रेरणा प्रदीप है।

विप्र वेषधारी इंद्र ने नमिराज से कहा कि आप साधु बाद में बनें, पहले अपने नगर की रक्षा कर लें। चोर–लुटेरों को ठिकाने लगा दें।

नमिराज कहने लगे कि 'महाशय यह संसार बड़ा चकाचौंध वाला है। बहुत बार ऐसी स्थिति बन जाती है कि जिसने अपराध नहीं किया वह हत्थे चढ़ जाता है और अपराध करने वाला खुला घूमता रह जाता है।'

मेरे खयाल से इतना तो हम भी जानते होंगे कि अपराधी निकल जाते हैं और निर्दोष लोगों को दंडित कर दिया जाता है। यह अंधा कानून है। कागजी कानून है। कागजों के आधार पर निर्णय करना होता है।

नमिराज कहते हैं कि यहाँ की व्यवस्था दोषरहित नहीं है। कई बार निर्दोष लोग भी मारे जाते हैं और दोषी व्यक्ति मौज करते रहते हैं। आप कह रहे हो कि चोर से, तस्करों से प्रजा को बचाओ। मैं तो अपने आपको उनसे बचाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय, जय, जय, जयकार...

नमिराज ने कहा कि हे महाशय! उन लुटेरों से मेरा कुछ नहीं लुट जाएगा, किंतु इंद्रियां रूपी चोर भयंकर हैं। जिसने इनका निग्रह कर लिया वह अपने आपमें शुभंकर है। इनका जिसने निग्रह कर लिया, उसने अपनी आत्मनिधि को बचा लिया। मै वैसा ही प्रयत्न करने में लगा हूँ। मैं मोक्ष में बाधक बने चोरों से अपने आपको बचाने में लगा हूँ। अपने भीतर के चोर और तस्करों पर विजय प्राप्त करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। मैं इन्हीं को जीतने के लिए प्रयत्नशील हूँ।

नमिराज की बात सुनकर ब्राह्मण मन में विचार करने लगा कि मैंने इतने तीर चलाए किंतु वे सारे खाली चले गए, फिर भी मैं अभी कुछ तीर और चलाना चाहूंगा। वह क्या कहने वाला है, यह समय के साथ विचार करेंगे।

जीवन जीने के लिए खाना खाना पड़ेगा। पानी पीना पड़ेगा। मकान भी बनाना पड़ेगा। वस्त्र आदि धारण करना पड़ेगा, किंतु अच्छे कपड़े पहनकर खुशी न मनाएं। दर्पण में मत देखें कि मैं कैसा दिख रहा हूँ, कैसा लग रहा हूँ। इसी प्रकार खाने-पीने आदि में मन रूखा रहे, स्निग्ध न हो।

अरिसा भवन में दर्पण के सामने भरत चक्रवर्ती की सजावट हो रही थी। उनके हाथ से एक अंगूठी गिरी और उनको यह ज्ञान हो गया कि यह आभा किसकी है। यह रौनक किसकी है। उन्होंने दूसरी अंगूठी उतारी, तीसरी अंगूठी उतारी। अंगूठी उतारते ही हाथ की चमक कम पड़ गई। उन्हें मालूम हो गया कि ये शोभा पुद्गलों की है। बढ़िया पोशाक, बढ़िया आभूषण केवल शरीर की शोभा है। उन्होंने सोच लिया कि मुझे इन पुद्गलों की शोभा में नहीं जाना है। मेकअप की चमक लंबे समय तक रहने वाली नहीं है। बाल काले भी कर लिए तो एक दिन डाई जरूर उड़ जाएगी और वापस बाल धोले दिखने लगेंगे। इसलिए दिखावे में नहीं जाएं। हिंसा में नहीं रमें।

समय हो गया ज्यादा। बातों में फायदा नहीं है। बातें पूरी होने वाली नहीं हैं। अपने को नियंत्रित करना ठीक होता है। हम इंद्रिय निग्रह के साथ धार्मिक क्रियाओं में जितनी यतना करेंगे, जितना उपयोग लगाएंगे वह लाभकारी होगा।। कई बार हम पूंज रहे होते हैं, पर यह नहीं देखते कि ओघा जमीन पर सामने चल रहा है या साइड में। ओघा-रजोहरण यतना के लिए उपयोग में लेना होता है। इसलिए उसे चलाते हुए पूरी यतना रहनी चाहिए। वायुकाय की विराधना भी न हो और पैर के नीचे आकर किसी जीव की भी विराधना न हो, यह ध्यातव्य है। यतना की आवश्यकता इसलिए है कि यतना होगी तो धर्म पैदा होगा। माँ नहीं होगी तो बेटा कैसे होगा। सही यतना का लक्ष्य रहे। सदाचारमय जीवन जीने का लक्ष्य रहे। ऐसा लक्ष्य होगा तो धन्य बनेंगे। इतना कहते हुए विराम।

26 अक्टूबर, 2021

11

पहले मन की कर पहचान

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।

उपलक्षण से कहा गया कि भगवन् शांति के स्वरूप को कैसे जानें?

इसका उत्तर मिला कि अपने मन की पहचान करो।

अब बात आई मन पर कि मन की पहचान कैसे करें? मन की परीक्षा किस तरह से हो?

एक कहानी के माध्यम से इसको समझने की कोशिश करते हैं। दूधवाला आया और हमने जल्दी से बरतन में दूध ले लिया। सामान्यतया निश्चित होता है कि किस बरतन में दूध लेना है। लेकिन दूधवाला आया तो जल्दबाजी में दूसरे बरतन में बिना देखे दूध ले लिया। बाद में मालूम पड़ा कि उस बरतन में नीबू का रस था। नीबू का रस होने से दूध फट जाएगा। इसलिए जिस बरतन में दूध लेना हो उसे पहले भलीभांति देखना चाहिए कि उसमें कुछ गिरा तो नहीं है, वह कहीं से फूटा हुआ तो नहीं है। बरतन की बात ही नहीं है। हर चीज की परीक्षा होनी चाहिए। खाने के लिए पकाए जाने वाले अनाज की भी परीक्षा होनी चाहिए कि वह कैसा है, किस प्रकार से पका हुआ है।

जिस प्रकार शादी-विवाह के प्रसंग पर व्यक्ति परीक्षा करता है कि लड़का कैसा है, लड़की कैसी है, दोनों में परस्पर निर्वाह होगा या नहीं, परिवार में निर्वाह होगा या नहीं, वैसे ही मन की परीक्षा भी करनी चाहिए। किंतु मन की परीक्षा नहीं करते। बिना परीक्षा किए ही उसमें धर्म उड़ेलते जा रहे हैं। यह नहीं देखते कि मन शांत है या नहीं है। यह नहीं देखते कि उसमें ईर्ष्या के भाव तो नहीं चल रहे हैं, नफरत और डाह के भाव तो नहीं चल रहे हैं, क्रोध और

अहंकार तो नहीं है, किसी को नीचा दिखाने का भाव तो नहीं चल रहा है। बिना ये सब देखे उसमें धर्म डालते जा रहे हैं। सामायिक-पौषध करने से या श्रावक या साधु बनने से ही आराधक नहीं बन पाएंगे। मन को शुद्ध करेंगे तो आराधक बन पाएंगे।

आगम में सोमिल ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है। वह श्रावक था पर बाद में धर्म से विमुख हो गया। वह भ्रष्ट हो गया। फिर देव द्वारा प्रेरित करने पर उसने पुन: श्रावक के 12 व्रतों को स्वीकार किया। अंतिम समय में एक महीने की संलेखना भी की, किंतु यह सब करके भी वह आराधक नहीं बन पाया।

तस्स ठाणस्स अणालोइय अपडिक्कंते...

आराधक नहीं बनने का कारण था कि पूर्व में उसने जो अज्ञान का सेवन किया था, मिथ्यात्व का सेवन किया था, उसकी आलोचना नहीं की। उसका प्रतिक्रमण नहीं किया। उसने बिना आलोचना किए श्रावक व्रत को स्वीकार कर लिया। वह श्रावक व्रत का पालन करता रहा, किंतु मन में पहले से भरी हुई खोट बाहर नहीं निकलने से आराधना नहीं हो पाई।

ये शल्य हमारे भीतर भी पड़े हैं। ये शल्य हैं- माया शल्य, निदान शल्य और मिथ्या दर्शन शल्य। शास्त्र कहते हैं कि यदि शल्य बने हुए हैं तो सामायिक या पौषध की आराधना कर लें चाहे साधु जीवन लेकर चलें, जीतेंगे नहीं, हार जाएंगे। हार जाने का मतलब है कि जितना भी परिश्रम किया, जितनी भी मेहनत की वह कारगर नहीं हो पाई। इसलिए अतीत का प्रतिक्रमण अर्थात् मन की शुद्धि होनी जरूरी है।

दो-तीन दिन पहले मैंने कहा था कि '**अईयं पडिक्कमामि**' यानी मन की शुद्धि जरूरी है। मन की शुद्धि प्रायश्चित से होती है, प्रतिक्रमण से होती है। प्रतिक्रमण करके, प्रायश्चित करके मन को शुद्ध करेंगे तो वह शुद्ध हो जाएगा।

मुझसे किसी के साथ दुर्व्यवहार हो गया हो, मेरे द्वारा किसी को पीड़ा पहुँचाई गई हो, मेरे द्वारा किसी को दुख पहुँचा हो तो पहले उसकी सफाई करनी चाहिए। उसकी धुलाई करनी चाहिए। धुलाई किए बिना सोच लिया जाए कि धर्मक्रिया करके उसको शुद्ध कर लूंगा, तो वह शुद्ध नहीं हो पाएगा। इसलिए शुद्ध नहीं हो पाएगा क्योंकि भीतर शल्य पड़े हुए हैं। जब तक भीतर

शल्य पड़े रहेंगे तब तक दुख देंगे। दुख देने वाले बनेंगे।

बहुत सारे शल्य हमारे भीतर पड़े होंगे। हो सकता है कि पूर्व जन्म के शल्यों का ज्ञान न हो, किंतु वर्तमान जीवन में ऐसी कोई भी प्रवृत्ति की हो जो हमें ध्यान में हो, उसका यदि शोधन हो जाता है, शुद्धिकरण हो जाता है तो मन हलका हो जाएगा। मन को शांति मिल जाएगी।

कभी मन की परीक्षा करें कि मेरा मन धर्म के लिए, शांति के लिए अभिमुख है या नहीं। नल चालू कर उसके नीचे उलटा बरतन रखने से बरतन में पानी नहीं आएगा। बरतन टेढ़ा रहेगा तो भी उसमें पानी नहीं भर पाएगा। बरतन का मुख पानी के अभिमुख नहीं होगा तो पानी कैसे आएगा? वैसे ही जब तक हमारा मन शांति के अभिमुख नहीं है तब तक उसमें शांति कैसे आएगी? अर्थात् नहीं आ पाएगी।

कोई दूसरे प्राणियों के जीवन को लूट रहा हो, किसी का ध्यान दूसरों की संपत्ति को लूटने में लगा हुआ हो और वह मंदिर में जाकर पूजा करे, मस्जिद में जाकर नमाज पढ़े, धर्म स्थान में जाकर धर्मक्रिया करे तो ये सब करना सार्थक नहीं होगा। रँगा हुआ मन धुले ही नहीं तो कैसे सफलता मिलेगी?

हम ध्यान दें कि मन की परीक्षा कैसे होगी। मन की परीक्षा के लिए स्वयं अनुभव करना पड़ेगा। हमारे मन की परीक्षा कोई दूसरा नहीं कर सकता। मन की परीक्षा खुद ही करनी पड़ेगी। हम अपने मन को जितना सूक्ष्म दृष्टि से जानते हैं उतना कोई दूसरा व्यक्ति नहीं जानता। दूसरा व्यक्ति ऊपरी हाव-भाव को जान लेगा, किंतु भीतर की पहचान स्वयं को ही करनी पड़ेगी या फिर विशिष्ट ज्ञानी अथवा मुनि ही पहचान कर सकते हैं। वे बता सकते हैं कि हमारे भीतर क्या-क्या चल रहा है।

एक कहानी में बताया गया है कि एक मुनि प्रतिज्ञा करता है कि मैं किसी को भी वाचनी नहीं दूंगा। किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दूंगा। मैं स्वाध्याय नहीं करूंगा। इसके परिणामस्वरूप वह निकाचित कर्मों का बंध कर लेता है। वह बिना आलोचना-प्रतिक्रमण के मृत्यु को प्राप्त कर देवलोक में जाता है। वहाँ से च्यवकर राजपुत्र के रूप में जन्म लेता है, किंतु उसको आवाज नहीं

मिली। वह गूँगा–बहरा था। किसी को ज्ञान नहीं देने, स्वाध्याय नहीं करने जैसी प्रतिज्ञा से वह मुनि राजकुमार के भव में गूँगा–बहरा हुआ।

मैं स्वाध्याय नहीं करूंगा, मुझे ज्ञान की आराधना नहीं करनी जैसे संकल्प से ज्ञान की अवमानना होती है। उसके परिणामस्वरूप मन विक्षिप्त हो जाता है। मन की शांति विलुप्त हो जाती है। मन को शांत बनाने के लिए हमने पुरुषार्थ किया, प्रयत्न किया कि हम अपने मन को अशांत नहीं होने दें तो दुनिया में कोई भी ताकत हमारे मन को अशांत नहीं कर सकती। अशांत होने के लिए स्वयं तैयार होते हैं।

बड़े शहरों में लोग अपना मकान किराये पर देते हैं। किराये का मकान कितना साफ–सुथरा रहेगा यह आप स्वयं ही जान सकते हैं। विवाह–शादी के लिए किराये पर लिये गये मंगल कार्यालय (धर्मशालाएं) कितने साफ–सुथरे होते हैं? वहाँ चींटियां निकलती हैं। वहाँ पर चिकनी परतें जम जाती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि किराये का स्थान है। वहाँ पर मेहनत कौन करे। यदि वही हाल घर का होता तो उसकी साफ–सफाई अच्छी तरह से होती। दूसरों के लिए यदि जगह खुली छोड़ दी कि करो जो करना है तो लोग उस जमीन का गलत उपयोग करेंगे। वह जमीन साफ–सुथरी नहीं रह पाएगी। वैसे ही अपने मन को किसी दूसरे को सौंप देंगे कि आपको जो करना है वह करो तो हमारा मन ऊँचा–नीचा होता रहेगा।

हमने किसी को घड़ी सौंप दी कि इसमें चाबी तुम्हें भरनी है तो वह घड़ी ठीक चलेगी। उसी घड़ी को चाबी भरने के लिए यदि सार्वजनिक कर दिया कि कोई भी आए और उसमें चाबी भरे तो वह घड़ी कितने दिनों तक ठीक चलेगी?

(लोगों ने कहा– कम दिन ही चल पाएगी)

जो पेन आपके हाथ में है उस पेन से आप जितनी आसानी से लिख सकते हैं उतनी आसानी से किसी अन्य पेन से नहीं लिख पाएंगे। दस आदमियों के चलाने के बाद वापस वह पेन आपके हाथ में आएगी तो भी फर्क पड़ेगा। जब पेन में फर्क हो जाता है, तब दस या सौ आदमियों का मन पर असर होगा तो मन कैसा चलेगा। इसलिए पहले अपने मन को तैयार करना पड़ेगा कि कोई

कितना भी कुछ कहे मन को उससे नहीं भरना।

सड़कों पर आजकल कचरा कम हो गया है। अब गीत सुनाती हुई गाड़ी आती है और कहती है कि कचरा डाल दो। हम भी कचरा गाड़ी जैसा कचरा भरवाने के लिए तैयार रहेंगे तो मन को शांत रखना, सुरक्षित रखना बहुत कठिन होगा। वैसी स्थिति में कोई कुछ भी कहेगा तो हम असंतुलित हो जाएंगे।

विचार करना कि कचरा ढोने वाली गाड़ी भले ही कचरा कहीं बाहर फेंक देती है, किंतु उसमें गंध रहती है या नहीं रहती!

(लोगों ने कहा- उसमें गंध रहती है)

क्या कचरा ढोने वाली गाड़ी के डब्बे एकदम साफ हो जाते हैं?

(लोगों ने कहा- एकदम साफ नहीं होते)

उन डब्बों में से गंध इसलिए नहीं खत्म होती क्योंकि उसकी सफाई जिस तरह से होनी चाहिए उस तरह से नहीं हो पाती। सफाई नहीं होगी तो ऐसा ही होगा।

किसी ने हमारी निंदा या प्रशंसा की तो हमारे कान उसे सुनने के लिए सजग हो जाते हैं किंतु वही कान धर्म सुनने के लिए आतुर नहीं होते। रात के दो-दो बजे तक निंदा की बात होगी तो नींद नहीं आएगी और एक सिद्धांत बत्तीसी फेरने के लिए बैठें तो झपकी आने लगेगी।

अत: मन की परीक्षा करो कि मन क्या चाहता है। मन की चाह शांति की है या अशांति की! अगर शांति की चाह है तो कहाँ है शांति! शांति की चाह होती तो नींद कैसे आती। कहना बहुत सरल है कि शांति चाहते हैं लेकिन शांति की राह उतनी आसान नहीं है। चाह शांति की होगी, किंतु कल्पना अशांति की होती है। उसी कारण से मन अशांत होता जाता है। शास्त्र से सुनी हुई बातों को मैं आज दुहरा देता हूँ ताकि बात ध्यान में आ जाए।

यहाँ बैठने वालों में से मुश्किल से 50 प्रतिशत लोगों ने ही अंतगड सूत्र सुना होगा। 50 प्रतिशत ने भी सुना होगा या नहीं सुना! 100 प्रतिशत तो नहीं कह सकते क्योंकि जो बाद में आएंगे वे नहीं सुन पाएंगे। बात हमने पहले ही सुन रखी है कि अर्जुन अणगार के दीक्षा लेने के बाद कई लोगों ने उन्हें गालियां दीं, कइयों ने डंडे मारे, लाठियां मारीं, पत्थर मारे। अर्जुन अणगार को

भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रताड़ित किया गया, किंतु वह शांत रहा। उसने अज्ञान अवस्था में भले ही 1141 लोगों की घात की होगी, किंतु जब जगा तो सोच लिया कि अब मैं अपनी मनोभूमि का उपयोग किसी को नहीं करने दूंगा। अर्जुन अणगार ने गालियों को अपने भीतर नहीं उतरने दिया। उसने सोच लिया कि गालियाँ कान तक आ सकती हैं किंतु मन तक नहीं। एक भी पत्थर उसके मन को चोट देने वाला नहीं बना। एक भी शब्द उसके दिल को चोटिल नहीं कर पाया।

उसने संकल्प कर लिया कि मुझे अपने मन में बाहर का कचरा नहीं आने देना है। उसने मन बना लिया कि इन बातों को कान से भीतर तक नहीं पहुँचने देना है। उसने अपने को इतना साधा कि छह महीने में सारे कर्मों को खपाकर सिद्ध-बुद्ध मुक्त हो गया।

क्या हमें सिर्फ सुनना ही है? क्या अर्जुन अणगार को ही सुनते रहेंगे या हम भी पुरुषार्थ करेंगे? क्या हमारा ऐसा लक्ष्य बनेगा कि हमें कोई कितना भी सुना दे, मैं अपने मन तक उस बात को नहीं पहुँचने दूंगा?

ऐसा लक्ष्य बने कि मेरे हित की, ज्ञान की, साधना की बात को अपने भीतर रखूंगा बाकी कोई भी बात चाहे कितनी भी मौके की होगी उसको अपने भीतर प्रवेश नहीं करने दूंगा। मेरी आँख बहुतों को देखेगी, बहुत सारे दृश्य मेरे सामने आएंगे, किंतु मैं उन सारे दृश्यों को अपने मन रूपी कैमरे में कैद नहीं करूंगा। मेरा मन कैमरा नहीं बनेगा। वह दर्पण बनेगा।

दर्पण के सामने से कोई हट जाए तो वह उसे अपने पर रखता नहीं, किंतु सीसीटीवी कैमरा कई महीने बाद तक भी रखता है। वह बता देगा कि इस रास्ते से कौन-कौन गुजरा। कौन-कौन-से वाहन गुजरे और उन वाहनों के ड्राइवर कौन-कौन थे। कैमरा सबको कैद करके रखता है। हम भी कैद करेंगे तो मन उन्हीं से भर जाएगा। कैद करते-करते मन इतना भर जाएगा कि उसमें अच्छी बातों के लिए, धर्म श्रुति के लिए थोड़ी-सी भी जगह खाली नहीं बचेगी।

ध्यान में रखना कि जब भी हम कचरा भरते हैं तो मन अशांत ही रहता है। कचरा, मन को शांत नहीं होने देगा। वह अशांति ही देगा। जब तक कचरा

भरा रहेगा, तब तक शांति के स्वरूप को नहीं जान पाएंगे। घासलेट के डब्बे में कितना ही बढ़िया घी डालें वह घी बदबू करेगा। वह थोड़े समय के बाद खराब हो जाएगा।

कचरे वाली गाड़ी में भी दो डब्बे होते हैं। एक सूखे कचरे के लिए और दूसरा गीले कचरे के लिए। उन डब्बों से कचरा खाली कर दें। साफ किए बिना उनमें अगरबत्ती लगाने से क्या वे डब्बे सुगंधित हो जाएंगे? क्या शुद्ध हो जाएंगे?

(लोगों ने कहा– नहीं होंगे)

आप अगरबत्ती लगाने का काम खूब करते हैं। इसमें पीछे नहीं रहते हैं। आपने मंदिर में या घर में बने आले में तो अगरबत्तियां खूब लगाई होंगी, किंतु अपने मन में नहीं जलाई। एक–दो अगरबत्ती जला भी दी तो क्या होगा? उसमें भरा कूड़ा–कचरा खाली नहीं किया और अगरबत्ती जला दी तो क्या वह वहाँ सुगंध पैदा कर पाएगी?

(लोगों ने कहा– नहीं कर पाएगी)

हम स्वयं विचार करें, समीक्षा करें कि मेरे मन में कितना कचरा भरा हुआ है। वहाँ से सुगंध आ रही है या नहीं। जिसने लहसुन खाया होगा उसके मुँह से कैसी गंध आएगी!

(लोगों ने कहा– लहसुन के गंध जैसी आएगी)

खाने में बादाम की कतली खाई, किंतु पाचन तंत्र सही नहीं होने से अजीर्ण हो गया तो डकार में गंध कैसे होगी? ये चीजें अनुभूति की हैं, किंतु धर्म की अनुभूति, मन की अनुभूति कर नहीं पाते हैं। हम शरीर की शुद्धि करते हैं, कपड़ों की शुद्धि करते हैं, खाने–पीने के बरतनों की शुद्धि करते हैं, पर अपने मन की शुद्धि नहीं कर पाते हैं। हमारा दृष्टिकोण मन की शुद्धि का बने।

मन की शुद्धि कैसे होगी? मन की शुद्धि किससे होगी?

मन की शुद्धि होगी समीक्षण घ्यान से। स्वाध्याय से होगी। यदि निरंतर स्वाध्याय चलेगा तो अपने दोष नजर आएंगे। अपने भीतर पड़ी गंदगी ज्ञात हो पाएगी। ये जवाहर भवन जैसा साफ–सुथरा आज लग रहा है, चार महीने पहले ऐसा ही था या इससे अच्छा था?

(लोगों ने कहा– पहले ऐसी साफ–सफाई नहीं थी)

अभी भी किसी कोने में चीजें पड़ी हुई हैं। अस्त–व्यस्त पड़ी हुई हैं। पानी से भीग रही हैं। सड़ रही हैं। सात मामाओं का भांजा भूखा ही रह जाता है। दो जनों के सीर में गाय हो और समझौता हो कि सुबह उसका दूध तू निकालेगा और शाम को मैं निकालूंगा तो जिसने सुबह गाय को दूह लिया वह सोचेगा कि अब मैं इस गाय को चारा क्यों डालूं, क्यों खिलाऊं, मैंने तो गाय को दूह लिया। अब शाम को दूध मुझे मिलने वाला नहीं है। शाम को जो दुहेगा वह इसको घास, चारा देगा। जिसने शाम को गाय को दूह लिया वह भी ऐसा ही सोचे कि अब सुबह मुझे दूध प्राप्त होने वाला नहीं है तो मैं गाय को घास, चारा क्यों दूं तो बेचारी गाय की हालत क्या होगी!

उसकी हालत वैसी ही होगी जैसी जवाहर भवन की है। जैसे प्रायः धार्मिक स्थानों की होती है। जैसे किराये के स्थानों की होती है। उसकी हालत तो यही होने वाली है, किंतु हमारे मन की हालत कैसी होगी? इसकी समीक्षा कौन करेगा, इसकी पहचान कौन करेगा?

(लोगों ने कहा– हम ही करेंगे)

डॉक्टर आपकी शल्य चिकित्सा कर सकता है, हो सकता है कि मनोवैज्ञानिक आपके मन की चिकित्सा कर दे, किंतु जब तक अपनी आदत नहीं छूटेगी तब तक चिकित्सा सार्थक होना मुश्किल है

अपनी आदत स्वयं सुधारनी होगी। आदत बदलनी पड़ेगी। आदत नहीं बदली तो फिर किसी भी शल्य चिकित्सा से कुछ होने वाला नहीं है।

आजकल घरों में लैट्रिन–बाथरूम होते हैं। वे कमरे से अटैच ही होते हैं। यह तो लगभग सभी घरों में होता होगा। उसमें लैट्रिन जाते रहें और उसकी कभी सफाई हो ही नहीं तो क्या दुर्गंध नहीं आएगी, वह बदबू नहीं मारेगा?

(लोगों ने कहा– दुर्गंध आएगी)

आप उसी रूम में रहेंगे तो गंध नहीं आएगी क्या?

(लोगों ने कहा– आएगी भगवन्)

आप उसी रूम में रहते हैं तो जितनी साफ–सफाई कमरे की होती है उससे ज्यादा बाथरूम की होती है। उसका आप रोज ध्यान रखते हैं क्योंकि

वहाँ रहते हैं। महीने में एक बार सफाई करेंगे, एक बार फ्लश करेंगे तो रहना मुश्किल हो जाएगा। आप विचार करें कि कितनी सावधानी, कितनी सजगता से रोज काम आने वाली वस्तुओं की साफ-सफाई करते हैं किंतु रात-दिन साथ रहने वाले मन की साफ-सफाई करने का लक्ष्य नहीं बनता।

हम समता शाखा में बोलते हैं कि हे चैतन्य देव! तू कौन है? कहाँ से आया है? बोलते वक्त ही किसी ने हाथ पकड़कर धक्का दे दिया तो खुशी होगी या झटका लगेगा? जो मन से बोल रहा है उसे खुशी होगी और जो जबरदस्ती बोल रहा है उसको झटका लगेगा। जबरदस्ती बोलने वाले के भीतर से ये बात वैसे उड़ जायेगी, जैसे कपूर हवा में उड़ जाता है। जैसे हल्दी का रंग धूप से उड़ जाता है। हो सकता है कि वह कह दे कि कल से मैं जवाहर भवन में नहीं आऊंगा, मैं समता भवन में नहीं आऊंगा।

नहीं आयेगा तो क्या होगा?

(लोगों ने कहा- कुछ नहीं होगा)

नुकसान किसका होगा?

(लोगों ने कहा- नुकसान खुद का ही होगा)

वह नुकसान झेलने के लिए तैयार है। नरक में जाना पड़े तो जाने के लिए तैयार है। ऐसे भी लोग कम नहीं हैं इस दुनिया में जो सातवीं नरक में जाने के लिए तैयार हैं, पर कहेंगे कि उसको मैं छोड़ूंगा नहीं। उसको तो मजा चखा के रहूंगा। चखा दे मजा। क्या मजा चखाएगा। मजा तो तुमको चखना पड़ेगा, जब मौका आएगा। तब रोना मत। तब हाय-हाय मत करना कि हे भगवान मुझे बचा लो। तब शांतिनाथ भगवान की प्रार्थना मत करना।

साता कीजो जी श्री शांतिनाथ प्रभु शिव सुख दीजो जी...

हमें साता शांतिनाथ भगवान कर देंगे! जो लैट्रिन में जाता है वही फ्लश करता है। वैसे ही अपने मन की साफ-सफाई करते रहेंगे तो वह धूमिल नहीं होगा। वह पारदर्शी बना रहेगा। दर्पण की तरह मन को साफ रखना है। उसमें गंदगी भर दी तो कुछ झलकेगा नहीं। कुछ साफ नजर नहीं आएगा। शांतिनाथ की स्तुति करते हुए पहले अपने मन की परीक्षा करें फिर शांति की बात करें।

नमिराज ऋषि ने मन की परीक्षा कर ली। अब वे किसी को दोष नहीं देते। शक्रेंद्र ने जब कहा कि आप पहले ऐसा कोई उपाय करें जिससे आपके नगर के सारे तस्कर, गुंडे, चोर आदि अपना दाँव नहीं चल पाएं, तब आप दीक्षा लेना। नमिराज ने कहा कि नीति, नियम और कानून ऐसे होते हैं कि कई बार अपराध करनेवाला दूर खड़ा हँसता रहता है। वह मुस्कुराता रहता है और जो अपराधी नहीं होता है वह फँस जाता है। उन्होंने कहा कि मैं उन इंद्रिय रूपी चोरों को जीतने के लिए प्रयत्नशील हूँ, जो निरंतर मेरी आत्मा के धन का हरण करने में लगे हुए हैं। उसी के लिए मेरा पुरुषार्थ निरंतर जारी है।

जय, जय, जय नमिराज ऋषिवर जय, जय, जय, जयकार...

शक्रेंद्र, नमिराज से प्रशंसात्मक बात कर रहा था। उनके अभिमान को तीव्र बनाने वाली बात कर रहा था। वह कह रहा था कि राजन आपने बहुत राजाओं को जीता है, बहुत-से राजाओं का सिर झुका दिया है। वे आपके सामने गरदन नीचे करके खड़े रहते हैं। राजन आपने बड़े-बड़े राजाओं का मानमर्दन किया है, किंतु अभी ऐसे कई राजा हैं जिनका मानमर्दन करना बाकी है। किसी कारण से आपने उनके मान को नहीं नमाया, पर आपमें उनको दबाने का सामर्थ्य है। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आपको इन लोगों का मानमर्दन कर देना चाहिए। उनका मानमर्दन कर देने के बाद आप साधु बन सकते हैं। आप में अभी शक्ति है और मुझे विश्वास है कि आप उन पर विजय प्राप्त कर लेंगे। आप उन सबका मानमर्दन करके फिर दीक्षा ले लेना।

जब अभिमान सातवें आसमान को छूने लग जाएगा तो घाटा किसको होगा? नुकसान किसको उठाना पड़ेगा?

(लोगों ने कहा- घाटा तो स्वयं को ही होगा)

नमिराज बहुत शांति से सुन रहे थे। सामने वाले की बात शांति से सुनना भी बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। पूरी बात को सुने बगैर ही उत्तर देने वाला अधीर होता है। नमिराज धैर्यवान थे। वे धैर्यपूर्वक ब्राह्मण वेषधारी इंद्र की बात सुनते रहे। उनका उत्तर बहुत स्पष्ट था। आप जानते होंगे कि नमिराज ने क्या उत्तर दिया।

भगवान ने बात बताई कि आत्मा को ही जीतो। युद्ध करना है, लड़ाई

करनी है, झगड़ा करना है तो स्वयं की आत्मा से ही युद्ध करो।

'अप्पाणमेव जुज्झाहि'

अर्थात् अपने आपसे युद्ध करो। अपनी आत्मा का ही दमन करना चाहिए। बहुत कठिनाई से उसको जीता जा सकता है। अपने मन को जीतना बहुत दुष्कर है। लाखों दुर्जयों को जीत पाना आसान नहीं है। हजारों, लाखों दुर्जयों को जीतने की अपेक्षा एक अपनी आत्मा को जीतना ही वीरता है। महावीर कौन है? जो अपने आपको जीत ले वह महावीर है।

हम न वीर हैं, न महावीर हैं और न गंभीर हैं। खाली नाम से गंभीर बनना काम में नहीं आता है। आप न वीर हो, न धीर हो और न महावीर हो तो फिर क्या हो? कायर हो। महाकायर हो। किसी के मन में आ रहा होगा कि भगवन् यह बात अच्छी नहीं लगती।

बात तो मुझे भी अच्छी नहीं लगती। क्योंकि श्रावक बहुत ऊँची अवस्था है। यथा 'शासनपूजक श्रावक धीर, जिसका हृदय गहन गंभीर।' श्रावक शासन पूजक होता है। उसका हृदय जल के समान स्वच्छ होता है, साथ ही वह गहन गंभीर होता है।

संघ की पूजा करनेवाला कैसे पूजा करेगा?

संघ की पूजा दिल से, मन से, वचन से और काया से की जाती है।

कैसे की जाती है संघ की पूजा?

(लोगों ने कहा- मन से, वचन से, काया से)

उसकी पूजा करनेवाला श्रावक धीर होता है, वीर होता है। उसका हृदय गहन, गंभीर होता है। वह गली-गली या चौराहे-चौराहे पर इधर से उधर और उधर से इधर आग लगाने जैसी गतिविधियां करनेवाला नहीं होता। श्रावक वीर-धीर और गहन गंभीर होता है। जो हजारों को जीते वह वीर हो सकता है, पर जो अपने आपको जीते वह महावीर होता है।

नमिराज कहते हैं कि महाशय दुनिया में हजारों शत्रुओं को जीत लो फिर भी कोई-न-कोई शत्रु बना रह जाएगा। अपने भीतर के शत्रुओं को जीतने वाले की शत्रुता किसी के साथ नहीं रहेगी। दुनिया शत्रु बन जाए, परंतु अपने मन में शत्रुता नहीं रहनी चाहिए। शत्रुता के भाव नहीं रहने चाहिए। नमिराज ने

कहा कि ब्राह्मण देवता आपने कहा कि दूसरे राजाओं का मान-मर्दन करूँ, उनको दबा दूं, पर उन राजाओं का मानमर्दन करने से मुझे कुछ भी मिलनेवाला नहीं है। मैं अपनी आत्मा को, अपनी इंद्रियों को, अपने कषायों को जीतने की तैयारी कर रहा हूँ। एक आत्मा को जीतनेवाला, मन को जीतनेवाला क्रोध, मान, माया, लोभ और लालच को जीत जाता है। जिसने इन पाँचों को जीत लिया अर्थात् पाँचों इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली, वह सारे शत्रुओं को जीतने में समर्थ हो पाएगा। और मैं वही कार्य करने के लिए तत्पर हुआ हूँ। जिनको जीतना बहुत दुष्कर है मैं उन्हीं शक्तियों को जीत लेना चाहता हूँ।

अप्पा चेव दमेयव्वो...

आत्मा का दमन करनेवाला, अपने मन को जीतनेवाला अपने आप सुखी हो जाएगा। वह इस लोक में भी सुखी होगा और परलोक में भी उसका सुधार हो जाएगा। परलोक में ही लाभ मिले ऐसी बात नहीं है बल्कि तुरंत महाकल्याण हो जाएगा।

नाना गुरु फरमाते थे कि धर्म रोकड़िया धंधा है। इस हाथ से दीजिए और उस हाथ से लीजिए। यह उधारी का धंधा नहीं है। आज दिया, भविष्य में मिलेगा, ऐसा हमारा धंधा नहीं है। हम उधार वाले धंधे पर विश्वास नहीं करते हैं। हमारे यहाँ तो हाथों-हाथ मिलता है। नमिराज की बात सुनकर शक्रेंद्र विचार करने लगा।

शक्रेंद्र देखता है कि मेरे सारे तीर खाली चले जा रहे हैं। निशाना चूक रहा है। कोई भी तीर निशाने पर नहीं लग रहा है। फिर भी वह हार मानने के लिए तैयार नहीं है। नये-नये तरीके उसके भीतर आ रहे हैं।

भारतीय सेना का ऑपरेशन ब्लू स्टार किसको याद है? दूसरा ऑपरेशन हुआ था ऑपरेशन थंडर। पहले ऑपरेशन में सेना मात खा गई लेकिन दूसरे में जीत गई। इससे हमारा कोई सीधा संबंध नहीं है, किंतु बात समझने की है। हम भी अनेक बार मन से हार खाते रहे हैं। हम मन की शक्ति को पहचान नहीं पाए हैं।

कहते हैं कि आतंकियों, नक्सलियों पर सेना वार करती है तो वे इधर-उधर भाग जाते हैं। भागने के सौ रास्ते होते हैं जो सैनिकों को मालूम नहीं

होते। उन रास्तों को जानने में समय लग जाता है। कई बार वर्षों लगने के बाद भी वह जीत नहीं पाते। वैसे ही हमने मन को जीतने की कोशिश की, कई उपाय किए, किंतु मन कभी कहीं भागता है और कभी कहीं। हमको उसका रास्ता मालूम नहीं है। उससे जीतना है तो पहले उसके सारे रास्ते जानो और उन्हें रोक दो। चारों तरफ बाड़ लगा दो। निशान लगा दो। चारों तरफ सेना लगा दो। कहो कि अब तुम्हें मरना है या तो सरेंडर करना है। जैसे सेना कहती है।

फिर सरेंडर (समर्पण) करेगा या नहीं?

(लोगों ने कहा– समर्पण कर देगा भगवन्)

वैसे ही हम अपने मन को, उसकी शक्ति को पहचानें। उसके भीतर कषायों की आग कितनी लग रही है यह जानें। कषायों की आग नल के पानी से बुझने वाली नहीं है। उस पर किसी अन्य साधन से भारी बारिश होगी तब आग बुझेगी। इसलिए मन की परीक्षा करना जरूरी है। मन की परीक्षा हो जाएगी कि उसके पास कितनी ताकत है फिर उस ताकत से मुकाबला करना, मन को जीतना बहुत आसान हो जाएगा।

दूसरा उपाय बताया गया है–

'वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य'

यह उपाय अच्छा है। श्रेष्ठ है। कोई दूसरा बंधन में डाले, रस्सी से बाँधे, हथकड़ियों, बेड़ियों में डाले इससे अच्छा है स्वयं आत्मा का दमन करें। संयम और तप से अपनी आत्मा को जीतने का लक्ष्य बनाएं। ऐसा करेंगे तो स्वयं बंधनों से मुक्त हो पाएंगे।

शक्रेंद्र को जवाब देते हुए नमिराज ने कहा कि मैं उसी पथ पर चल रहा हूँ। आत्मा ही मेरा शत्रु है और मेरा मित्र भी वही है। शत्रुता को हटाकर मित्र बनना चाहता हूँ। वही मेरा प्रयास है। आगे शक्रेंद्र क्या प्रश्न करता है, क्या निवेदन करता है और नमिराज क्या जवाब देते हैं, यह समय के साथ विचार करेंगे। आज के लिए इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

27 अक्टूबर, 2021

12

विजय पथ स्वीकारें

(दीक्षा महोत्सव)

जय जय जय भगवान।

अजर-अमर अखिलेश निरंजन, जयति सिद्ध भगवान।। जय...

जन से जैन, जैन से जिन, जय की यात्रा है। जय की यह यात्रा किन्हीं दूसरों पर नहीं, अपितु स्वयं पर विजय पाने की यात्रा है। दूसरों पर हमने बहुत विजय प्राप्त की है फिर भी मन तृप्त नहीं है। मन अशांत है। मन में कुछ भय है। मन में कुछ ऊहापोह है कि जिसको मैंने जीता है वह कहीं मेरे पर वापस हावी न हो जाए। वह कहीं शक्ति संगठित तो नहीं कर रहा! उसके पीछे खुफिया विभाग को लगाया जाए। अपने अस्तित्व की सुरक्षा करने के लिए प्रयत्न चलता रहता है। ऐसा करते हुए ऊपर से भयभीत नहीं दिखता, किंतु भीतर कहीं-न-कहीं भय छिपा रहता है। छिपा हुआ भय निर्भय नहीं होने देता।

जय का मार्ग निर्भयता का मार्ग है। उस मार्ग पर बढ़ते चलो। चलते चलो। जब तक मंजिल न मिले तब तक विराम नहीं लेना। मंजिल मिलने पर ही पूर्ण विराम लगना चाहिए। उससे पहले कदम निरंतर गतिशील रहने चाहिए। जय का मार्ग यह कहता है कि इंद्रिय पथ से तुम हटो। इंद्रियों के विषय तुमने बहुत बार प्राप्त कर लिए। इंद्रियों के विषयों में जब तक रस लेते रहोगे, तब तक तृप्ति नहीं हो पाएगी। तृप्त होना है और विजय पानी है तो इंद्रियों के विषयों से लगाव मत रखो।

बच्चों को खिलौने बड़े प्रिय लगते हैं। वे खिलौनों से खेलते रहते हैं। उस पर मुग्ध होते रहते हैं। जब तक उनकी समझ तदनुरूप पैदा नहीं होती, तब तक वे खिलौनों से खेलते रहते हैं। नये-नये खिलौनों को बच्चे इकट्ठा करके रखते हैं। वे ही जब 20 साल के हो जाएं, तब यदि उन्हें कोई खिलौना ले

जाकर दे तो वे हँसने लगेंगे कि मैं क्या करूँ इन खिलौनों से। खिलौनों का भी एक समय था। बच्चा उनको देखकर खुश होता था। वह चाहता था कि मुझे और खिलौने मिलें, किंतु बड़ा होने पर उसकी दृष्टि खिलौनों की ओर आकृष्ट नहीं होती।

क्या कारण है कि है कि पहले उसे खिलौने अच्छे लग रहे थे, वह खिलौनों में खोया रहता था, खिलौने उसके मन को भाते थे और अब खिलौनों में उसकी रुचि नहीं बन रही है? कोई तो कारण होगा। क्या कारण हो सकता है? विचार कर सकते हैं कि अब उसमें समझदारी आ गई। अब वह समझने लगा।

लोकाशाह का नाम आप लोगों ने सुन रखा होगा। उनके पिताजी का देहांत हो गया। पिताजी के जाने के बाद घर में कठिनाई आ गई। परिवार की रक्षा, भरण-पोषण में परेशानी होने लगी। तब लोकाशाह की माँ ने कहा कि बेटा तुम्हारे पिता ने एक रत्न खरीदा था। उसमें उन्होंने बहुत सारी पूँजी लगा दी थी। तुम्हारे पिताजी के मित्र बड़े जौहरी हैं। तू उनके पास यह रत्न लेकर जा और कोई खरीदार हो तो इसको बेचकर पैसे ले आ अथवा गिरवी रखकर कुछ पैसे ले आ।

परिवार का भरण-पोषण सही तरह से हो सके इसलिए वह रत्न की डब्बी लेकर जौहरी के पास पहुँचा। जौहरी ने डब्बी खोली और वापस बंद करते हुए कहा कि बेटा इसे अभी तुम घर में सुरक्षित रखो। कोई अच्छा ग्राहक आएगा उस समय इसे मँगवाकर बिकवा दूंगा। जौहरी ने यह भी कहा कि तुम्हें यदि कभी भी समय मिले तो पेढ़ी पर आकर बैठो और कुछ काम सीखो। अभी तुम्हें पैसों की आवश्यकता हो तो ले जा।

जौहरी के वहाँ तो नजरों का खेल है। नजरें चूकीं तो चुक गया और नजरें सध गईं तो सिद्ध हो गया। लोकाशाह वहाँ बैठकर जौहरी का धंधा सीखने लगे। वे प्रतिभा संपन्न थे। थोड़े ही दिनों में उनकी निगाह रत्नों को देखने, जानने और समझने में समर्थ हो गई। बताया जाता है कि एक बार सम्राट के पास कोई रत्न बेचनेवाला आया। बड़े-बड़े जौहरियों ने जिन रत्नों को पास कर दिया उनमें से एक रत्न लोकाशाह ने रोक दिया और कहा कि यह रत्न काम का नहीं है। यह रत्न नकली है। उस रत्न का परीक्षण करवाया गया तो वह नकली

निकला। जब रत्न रोका गया तो बड़े-बड़े जौहरी नाखुश हुए कि यह कल का छोकरा हमारे सामने ऊँची-ऊँची बातें कर रहा है लेकिन जब उसकी परीक्षा हो गई, तब अन्य जौहरी उसके कायल हो गए।

प्रतिभा होना कल के और आज के छोकरे की बात नहीं है। वह तो व्यक्तिगत है। कुछ प्रतिभाएं जन्मजात होती हैं जबकि कुछ प्रतिभाएं समय के साथ विकसित होती हैं, किंतु निश्चित है कि उम्र उसके लिए जरूरी नहीं है। वय से भी अनुभव बढ़ता है, किंतु वय उसके लिए अनिवार्य नहीं है।

एक दिन जौहरी ने कहा कि बेटा तुम्हारे पास जो रत्न था उसे ले आओ। बाहर के व्यापारी आए हुए हैं, उसको बेच देते हैं। मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति होती है देखने की। लोकाशाह घर पहुँचे और डब्बी को खोलकर रत्न को देखने लगे कि यह कितने का हो सकता है, कितने में बिक सकता है। लोकाशाह ने उस रत्न को देखकर फेंक दिया।

क्यों फेंक दिया?

(लोगों ने कहा- वह नकली रत्न था)

इतने दिन उसने रत्न को संभलकर रखा क्योंकि रत्न की पहचान नहीं थी। जब तक रत्न की पहचान नहीं थी, तब तक उस रत्न को संभाल कर रख रहे थे, किंतु रत्न की पहचान हो जाने के बाद उन्होंने देखा तो मालूम हुआ कि वह तो रत्न है ही नहीं। वह तो काँच को गोला है। पिताजी के देहांत का कारण भी यह रत्न हो सकता है। जब उन्हें मालूम हुआ होगा कि यह रत्न असली नहीं है, काँच का कंचा है तो उन्हें धक्का लगा होगा कि इसमें मेरे बहुत सारे पैसे लग गए, अब क्या होगा।

जिसने पैसों को महत्त्व दिया उसके हाथ से पैसे छूटेंगे तो उसे धक्का लगेगा। जिसने पद को महत्त्व दिया वह पद से हटेगा तो उसको धक्का लगेगा। प्रतिष्ठा को महत्त्व देने वाले की प्रतिष्ठा डाँवाडोल होने पर उसे धक्का लगेगा, लेकिन जिसने जीवन को महत्त्व दिया, सत्य को महत्त्व दिया, ईमान को महत्त्व दिया उसको कभी भी धक्का नहीं लगेगा।

हरिश्चंद्र राजा बिक गए। उन्होंने यह नहीं सोचा कि मेरी प्रतिष्ठा का क्या होगा। सेठ सुदर्शन सूली पर चढ़ गए, किंतु उनको धक्का नहीं लगा कि मेरी

प्रतिष्ठा का क्या होगा। मेरे गौरव का क्या होगा। मेरी गरिमा का क्या होगा। मेरे परिवार पर कितनी आँच आएगी।

विजय का पथ कहता है कि तुम सत्य को स्वीकार करो। कोई रुकावट तुम्हारे सामने नहीं आएगी। हम असत्य में जीते हैं, कषायों में जीते हैं तो भय सताता है। ये सब हमारी कमजोरियाँ हैं। इन कमजोरियाँ को निकाल देने से भीतर निर्भयता का संचार हो जाएगा। निर्भयता तुम्हारी अपनी है। भय बाहर से आया हुआ है। हम बाहर से आई हुई संपत्ति की रक्षा करने की कोशिश करते हैं तो अपने पास की संपत्ति को भूल जाते हैं।

लोकाशाह उस रत्न को फेंककर पेढ़ी पर पहुँचे। जौहरी ने कहा ले आया क्या रत्न तो लोकाशाह ने कहा कि वह तो नकली था, साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया कि यह आपने पहले क्यों नहीं बताया। जौहरी ने कहा कि यदि मैं तुम्हें उस समय बताता कि यह रत्न नकली है तो तुम्हारे मन में होता कि ये मेरा रत्न हड़पना चाहते हैं। मैं यदि इस रत्न को उस वक्त अपने पास रख लेता और अब बताता तो हो सकता है तुम्हारे मन में होता कि मेरा रत्न तो सही था, जरूर अदला-बदली की होगी। मैं चाहता था कि तुम्हारी दृष्टि रत्न परीक्षक बने इसलिए मैंने तुम्हें काम सीखने की बात कही, जिससे तुम्हें स्वयं ज्ञात हो सके कि पत्थर क्या होता है और रत्न क्या होता है।

हमने कितने वर्ष निकाले पारस जी? बोलो, हमने कितने वर्ष निकाल दिए?

(पारस जी ने कहा- 65 साल निकाल दिए भगवन्)

बहुत वर्ष निकाल दिए। बाल काले से धोले हो गए। अब धोले बाल पीले पड़ जाएंगे। पारसमल जी, पहले सतिया जी बोल गई थीं आपने क्या सुना? उनको सुनने के बाद आपमें क्या भावना जगी? जगी या नहीं जगी? यदि आपकी भावना जगी होती तो वह दिन धन्य होता और आज पोती के स्थान पर आप होते।

हमने मनुष्य जीवन रूपी इस रत्न की परीक्षा नहीं की। इसकी पहचान नहीं की। हमारी नजरों में वह तासीर नहीं है कि अपने जीवन की पहचान कर सकें। जब तक अपने जीवन की, स्वयं की पहचान करने में समर्थ नहीं होंगे,

तब तक मजा नहीं आएगा। जीवन की पहचान हो जाने पर जीवन में रहे हुए कंकड़ों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

इशिता जी ने जीवन रूपी रत्न की पहचान की। उनके भाव डॉक्टरी करने से पहले ही जग गए थे, किंतु पिताजी का कहना रहा कि पहले डॉक्टरी डिग्री प्राप्त कर लो। ये डिग्रियाँ हमें मोक्ष में ले जाने वाली नहीं होंगी। यदि कोई डिग्रियाँ बाँटने लगे तो मेरे खयाल से सभी लोग डिग्री लेना चाहेंगे। नकली डिग्री लेने के लिए हम तैयार हैं। फर्जी डिग्री लेने के लिए तैयार हैं। कई बार सुना कि जो संस्थान डिग्री दे रहा है वह खुद ही फर्जी तरीके से चल रहा है।

कुछ दिन पहले भारत और पाकिस्तान का मैच था। मैच का नाम लेते ही आपके कान खड़े हो गए। जब दीक्षा की बात हो रही थी, तब माथा नीचे हो गया था। कौन जीत गया?

(लोगों ने कहा– पाकिस्तान जीत गया)

कौन–से खेल में जीत गया?

(लोगों ने कहा– क्रिकेट में)

खेल में कौन जीता, कौन हारा ये ध्यान है, किंतु इसका पता नहीं है कि जीवन के खेल में कौन जीता और कौन हारा।

स्कूल के बच्चों को मैच देखने में बड़ी रुचि रहती है। एक स्कूल के बच्चे एक दिन मैच देखने चले गए। क्लास का अध्यापक भी मैच देखने के लिए गया। जिस क्लास के बच्चे मैच देखने गए थे, उस क्लास के अध्यापक ने अपने मित्रों से कह रखा था कि पीछे कोई आ जाए तो हमारे स्थान पर हाजिरी भर देना। उस स्कूल में एक इंस्पेक्टर आया। इंस्पेक्टर ने हाजिरी लेनी शुरू की तो बच्चे यस सर, यस सर कहने लगे। रजिस्टर में चालीस नाम थे। इंस्पेक्टर ने सोचा कि लड़के पाँच–दस ही दिख रहे हैं, हाजिरी चालीस लड़कों की भर रहे हैं, यस सर बोलते जा रहे हैं। उसने क्लास के अध्यापक को बुलाने के लिए कहा। एक अध्यापक आया। उससे कहा कि आपके क्लास में दस बच्चे हैं और चालीस लड़कों की हाजिरी में यस सर बोलते जा रहे हैं। उसको थोड़ी डाँट लगाई तो उसने कहा कि सर, मैं असली क्लास टीचर नहीं हूँ। असली क्लास टीचर तो आज मैच देखने के लिए गए हैं।

इंस्पेक्टर ने बच्चों को डाँट लगाई तो बच्चों ने कहा कि हम तो दूसरी क्लास के बच्चे हैं। इस क्लास के सभी बच्चे मैच देखने के लिए गए हैं। हमको बोला गया था कि कोई आए तो यस सर बोल देना इसलिए हमने यस सर बोल दिया। यह बात सुनकर इंस्पेक्टर ने कहा कि आज तुम बच गए क्योंकि मैं भी नकली हूँ। असली इंस्पेक्टर तो मैच देखने गया है।

हम कौन–से इंस्पेक्टर हैं?

हम दीक्षा देखने के लिए आए हैं या नकली बनकर सिर्फ हाजिरी भरने आए हैं? दिल से, आँखों से दीक्षा देख रहे हैं। सोच लेना कि दिल बड़ा कोमल होता है। उसको समझने की जरूरत है। आँखों से देखना बड़ा अच्छा लगता है। हम भी कहीं नकली इंस्पेक्टर की तरह आकर बैठ तो नहीं गए हैं कि चलें हम भी दीक्षा देख लेते हैं। सही तरह से दीक्षा देखनेवाले कहीं और हैं, किंतु इतना अवश्य है कि हमने इस नर तन रूपी रत्न को, जीवन रूपी रत्न को नहीं पहचाना। यदि पहचान गए होते तो उसको तराशने की कोशिश अवश्य करते।

इशिता जी बरड़िया, रोशनी जी बाफना और पूर्वी जी छाजेड़ ने अपने जीवन की पहचान की। तीनों बहनें दीक्षा के लिए उद्यत हैं। इन्होंने अपने जीवन को जाना, पहचाना। मनुष्य जीवन की महत्ता को जाना और आज ब्यावर में दीक्षित होने की तैयारी में हैं। पहले कई बार इनकी परीक्षाएं हो चुकी हैं। पाँच महीने की परीक्षा भी हो चुकी है। घरवालों ने भी परीक्षा ले ली है। सारे इंटरव्यू को इन्होंने पास कर लिया और अपना मार्ग तय कर लिया। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। एक लास्ट इंटरव्यू है। अभी सिर्फ बाल काटे गए हैं। ये तो वापस आ जाएंगे। बोलो क्या करना है?

(बहनों ने कहा– भगवन् आपकी शरण में आना है)

दीक्षा के लिए तीनों बहनें तैयार हैं। परिवार के सदस्य, माता–पिता, परिजन हाथ खड़े करके अनुमति देंगे। वैसे अनुमति तो पहले पत्र के रूप में आ चुकी है, किंतु इस वक्त भी अनुमति लेना जरूरी है। यह दीक्षा अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के तत्त्वावधान में ब्यावर संघ में हो रही है। दोनों के पदाधिकारी, सदस्य और सारे लोग अनुमोदना के लिए हाथ खड़े करें। जितने भी लोग देखने के लिए आए हैं वे भी हाथ खड़े करें। जिनको अनुमोदना

नहीं करनी हो वे हाथ नीचे रखें।

इशिता जी बरड़िया सरदार शहर की निवासिनी हैं। इनके दादाजी माणकचंद जी बरड़िया हैं और माता-पिता का नाम क्रमशः सरला देवी व प्रदीप जी बरड़िया है जो अभी बेंगलुरू में रहते हैं। रोशनी जी बाफना अहिवारा की हैं। रेखा जी और चंचल जी बाफना की सुपुत्री हैं। इनके दादा पारसमल जी थे। इनके बड़े पिता लाभचंद जी बाफना छत्तीसगढ़ सरकार में मंत्री रह चुके हैं।

वंदना जी और विनोद जी छाजेड़ की सुपुत्री पूर्वी जी छाजेड़ धमधा, छत्तीसगढ़ से हैं। धमधा और अहिवारा दोनों धार्मिक क्षेत्र हैं। सभी परिवार धार्मिक व शासननिष्ठ हैं।

(आचार्य भगवन् ने दीक्षा विधि संपन्न कराई)

यह जय का मार्ग है। आपने जय जयकार किया है।

आप अभी मेरा नाम लेते हुए कह रहे थे कि राम गुरु विराट है, दीक्षाओं का ठाठ है। विराट मैं नहीं हूँ। विराट तो वे माता-पिता हैं जो अपने कलेजे की कोर को निकाल के देते हैं। कोई आए ही नहीं तो किसको दीक्षा दी जाएगी।

दीक्षा लेने वाला और दीक्षा की अनुमति देने वाला विराट होता है। वे अपने दिल को कितना बड़ा बनाते हैं, कितना उदार बनाते हैं। उनको मोह का त्याग करना होता है। ममता छोड़नी पड़ती है। माता-पिता के दिल से पूछिए जिन्होंने गोद में खिलाया, पाला-पोसा, बड़ा किया। केवल इनके मन को राजी रखने के लिए, इनकी तमन्ना पूरी करने के लिए ममता का त्याग कर दिया। दीक्षा के लिए कोई घर से धकेलने के लिए राजी नहीं है, किंतु धर्मस्थान के लिए धकेलते हैं। धर्मस्थान जाने के लिए माता-पिता प्रेरित करते हैं। कहते हैं- धर्मस्थान जाओ। वहाँ ज्ञान-ध्यान सीखो। दीक्षा के लिए प्रेरणा बहुत कम माता-पिता देते हैं। धमधा में ऐसे कई और माता-पिता भी हैं जो चाहते हैं कि हमारी संतान दीक्षा ले, किंतु संतानों की भावना जगे तो वे दीक्षा ले पाएंगी। संतानों में दीक्षा के प्रति भाव भरना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। हमारा प्रयत्न ऐसा होना चाहिए कि हर घर से दीक्षित हों।

एक जमाना ऐसा था जब सिख लोगों ने भी ठान लिया कि एक संतान गुरु के नाम हो। वैसा ही हमारा लक्ष्य रहना चाहिए। माता मदालसा अपनी

संतानों को ऐसी शिक्षा देती थी कि तुम सिद्ध हो, बुद्ध हो और निरंजन हो। माता-पिता के भाव रहेंगे तो संतानों में आनुवांशिक रूप से वे भाव आएंगे।

दीक्षा का एक चरण समाप्त हो गया। आगे का चरण नामकरण और मुंडन का बाकी है। मुंडन तो हो गया, अब लोच बाकी है। घर में कोई जन्म लेता है तो नामकरण का प्रसंग होता है। उसकी पहचान करने के लिए नामकरण करते हैं। कुछ लोग नाम पहले भी रख देते हैं।

नाम 'इगो' के लिए नहीं होना चाहिए। नाम केवल एक पहचान है। जैसे यह वस्त्र (अपना वस्त्र दिखाते हुए) केवल एक पहचान है। लोक में लिंग से प्रयोजन होता है। लोग भावों को नहीं देख पाते हैं, जनता को हमारे भावों का ज्ञान नहीं हो पाता, वह हमारी पोशाक देखती है। वैसे भी हर कोई भावों को नहीं जान पाएगा। भाव हमारे भीतर ही रहेंगे, किंतु नाम उसकी पहचान होती है। हम समुदाय में रहते हैं। कोई साध्वी जी, साध्वी जी नाम से पुकारने लगे तो कौन बोलेगा। हम कहें कि साध्वी जी खड़े हो जाइए तो कौन खड़ी होंगी? वे चिंता में पड़ जाएंगी। सोच में पड़ जाएंगी कि किसे कहा जा रहा है। नाम इसलिए होता है ताकि पहचान हो जाए। परिचय हो जाए। नाम संबोधन के लिए होता है न कि 'इगो' के लिए। अत: नाम की लड़ाई चालू नहीं हो जानी चाहिए। आज नाम के पीछे झगड़े होते है, जो नहीं होने चाहिए।

घरवालों ने इशिता नाम रखा तो कुछ सोच कर ही रखा होगा। बढ़िया ही रखा होगा। नाम बढ़िया ही होते हैं। घटिया कौन-से होते हैं। गांडालाल, डाह्याचंद गुजरात के नाम हैं और धापूड़ी मारवाड़ का नाम है। जब दो, तीन या चार लड़कियों से धाप गए तो पाँचवीं लड़की का नाम धापूड़ी रख दिया। किसी की संतान रुग्ण रहती है, बीमार रहती है तो उसका नामकरण कर देते हैं कचरूलाल, कचरूमल।

मैं भी उस रास्ते से गुजरा हूँ। पहले मेरा नाम रखा गया था जयचंद। फिर नाम दिया गया धूड़चंद। अंततोगत्वा राम नाम टिक गया। वह नाम आज भी चल रहा है। घरवालों ने जो नाम दिया वही नाम नाना गुरु ने दे दिया। उसी राम नाम से चल रहा हूँ। नाम की कोई बात नहीं है। नाम कैसे भी दिए जा सकते हैं। नाम आपकी नई पहचान है। इशिता जी के लिए नया संबोधन दिया जा रहा

है नवदीक्षिता महासती श्री ईहिता श्री जी म.सा.। ईहिता का अर्थ होता है जिसकी सभी इच्छा करें। सभी की चाह हो कि हमारे नगर में पधारें। हमारे गाँव में पधारें। हमारे घर पगलिया करें। सब उनकी चाह करें, किंतु जो केवल मोक्ष की इच्छा करते हैं उसको कहते हैं ईहिता। जिनकी दुनिया चाह करती है, परंतु ये केवल स्वयं की चाह करती है उसको कहते हैं ईहिता। अत: नई महासती का नाम होगा ईहिताश्री जी म.सा.। आगे से इसी नाम से पुकारेंगे।

जिनको अभी रोशनी बाफना नाम से संबोधन मिल रहा है, वस्तुत: इन्होंने घर में रोशनी कर दी। दीक्षा लेकर एक नाम बना दिया। आपके घर में अब तक बल्ब और लाइट्स जलती थी। इन्होंने जन्म लेकर घर में ज्ञान की रोशनी जगा दी। ज्ञान की ज्योति जगा दी। उन्होंने परिवार को रोशन कर दिया। यह माना गया है कि जिस खानदान से दीक्षा होती है, वह सात पीढ़ियों को रोशन कर देती है। अपने कुल-खानदान को रोशन कर देती है।

फिर आप क्यों देरी कर रहे हैं?

अपने कुल का नाम रोशन तो करो, सात पीढ़ियाँ रोशन हो जाएंगी। इनका नामकरण, इनका संबोधन नवदीक्षिता महासती रोहिताश्री म.सा किया जा रहा है। जहाँ तक स्मृति में है, उत्तराध्ययन सूत्र में एक मछली का उदाहरण आया है कि वह जाल में फँसी और उसने उस जाल को काट दिया। उस मछली का नाम था रोहिता। जो काम-वासना के जाल को काटकर बाहर निकल गई ऐसी हैं रोहिताश्री जी म.सा। इसका दूसरा अर्थ होता है आरोहण करने के रूप में, चढ़ने के रूप में। ऊँचाइयों को प्राप्त करना जिनका लक्ष्य बन गया है, मोक्ष के शिखर पर चढ़ने का जिनका लक्ष्य बन गया है, ऐसी हैं महासती रोहिताश्री जी म.सा.।

तीसरी महासती जिन्हें पहले पूर्वी छाजेड़ बोलते थे, उनकी भी नई पहचान होनी चाहिए। नया संबोधन होना चाहिए। हमारे यहाँ पहले से पूर्वीश्री जी हैं। अब से इनको महासती पीहिताश्री जी म.सा के नाम से जाना जायेगा।

इसका अर्थ क्या होता है? कौन करेगा इसका अर्थ?

इसका तात्पर्य होता है जिसे सभी देखते हैं, किंतु वह केवल मोक्ष को देखे।

ये कैसे म.सा हैं?

नये म.सा हैं। इनको सभी देख रहे हैं किंतु ये केवल मोक्ष को देख रही हैं। दशवैकालिक सूत्र में बात बताई गई है कि निर्ग्रंथ ऋजुदर्शी होते हैं। उनकी निगाह केवल मोक्ष पर टिकी रहती है। उनको इधर-उधर पाप, जाल और जंजाल में पहुँचने की आवश्यकता नहीं है।

अपने जीवन में यथा नाम तथा गुण पैदा करेंगे तो जीवन धन्य बन जाएगा। माता-पिता के आशीर्वाद को सफल कर सकें, सार्थक कर सकें। भगवान महावीर के शासन को दिन दुगुना और रात चौगुना ऊँचाइयों तक पहुँचाने का लक्ष्य करें। उसको शोभित करें, महकाएं। उस शासन में चार चाँद लगाने के लिए हमारा जीवन अर्पित हो, समर्पित हो। इन्हीं भावों के साथ नवदीक्षिताओं को विचार करना है कि हमारी साधना निरंतर आगे बढ़ती रहनी चाहिए।

बंधुओ! आप लोगों ने समय निकाला। भरी दोपहरी में इनका उत्साहवर्धन कर और यह दृश्य देखकर अपनी आँखों को पवित्र कर रहे हैं। हृदय को पवित्र कर रहे हैं। दीक्षा देखने का मतलब है कि इसमें से कुछ अंश लें। संपूर्ण सावद्य योगों का त्याग नहीं कर सकते हैं तो जितना बन सके उतना त्याग करने का प्रयत्न करें। ऐसा लक्ष्य होना चाहिए।

दीक्षा का यह मेला है, बड़ा अलबेला है,
आज ये समझना कि जीव तू अकेला है।। दीक्षा का यह मेला है...

इतना कहते हुए विराम।

28 अक्टूबर, 2021

13

सुपात्रदान सुफलदायी

मनड़ो घणी रिझायो जी....

भगवान के दया धर्म को सुनकर भव्य आत्माएं गदगद हो जाती हैं। मुग्ध हो जाती हैं। भाव विह्वल हो जाती हैं। उनके भावों में आह्लाद पैदा हो जाता है, जो अनुभूति का विषय बन सकता है। तीर्थंकरों की वाणी से निर्झरित सत्य और अहिंसा आदि सिद्धांत आत्मा के लिए शुभंकर हैं। जो भव्य आत्माएं उनको कानों के माध्यम से दिल तक पहुँचाने का प्रयत्न करती हैं, वे सुलभबोधि बन जाती हैं। सुलभबोधि अवस्था प्राप्त करने के कई उपाय बताए गए हैं। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण उपाय है सुपात्रदान।

बहुत-सी आत्माओं ने सुपात्रदान देकर अपने भव को सीमित किया। भगवान महावीर के जीवन को देखें तो नयसार के भव में उन्होंने सुपात्रदान देकर सम्यक्त्व की राह पकड़ी। सुबाहु कुमार आदि 10 राजकुमारों की आत्मा ने सुपात्रदान देकर संसार को परित किया। नरक और तिर्यंच गति को अवरुद्ध कर दिया। सुपात्रदान करनेवाले मनुष्य से देव, देव से मनुष्य बनकर 15 भव में मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे।

सुपात्रदान कैसे होना चाहिए?

यह समीक्षा का विषय है।

सुपात्रदान की महिमा होती है तीनों लोक में...

क्या प्रमाण है कि सुपात्रदान से तीनों लोक में प्रशंसा होती है।

सुखविपाक सूत्र में वर्णन मिलता है कि सुमुख गाथापति ने जो सुपात्रदान दिया, उसमें देवों ने हर्ष भाव में स्थित रहते हुए अहो दाणं की ध्वनि की। देवों के इन्द्र ऊर्ध्व, अधो, मध्य तीनों लोक में होते हैं। वे उसकी

(सुपात्रदान की) महिमा का बखान करते हैं। सुपात्रदान एक अद्भुत भाव है। अद्भुत चीज है। वह केवल दान ही नहीं है, उसके साथ भावों का योग रहता है। उसकी महिमा का कोई अंत नहीं है।

सुपात्रदान की तीन शर्तें बताई गई हैं–

1. दव्वसुद्धेणं 2. दायगसुद्धेणं 3. पडिग्गाहगसुद्धेणं

दव्वसुद्धेणं यानी बहराया जाने वाला द्रव्य शुद्ध होना चाहिए। म.सा. को, संतों को बहराया जाने वाला पदार्थ शुद्ध होना चाहिए।

शुद्ध की परिभाषा क्या है?

अच्छे-से बनाया हुआ आहार शुद्ध है। शुद्ध द्रव्य के दो भेद हैं। पहला, भाव से शुद्ध और दूसरा, द्रव्य से शुद्ध। जो पदार्थ दिया जा रहा है वह कच्चा नहीं होना चाहिए। दुष्पक्व नहीं होना चाहिए। श्रावक के लिए दुष्पक्व भोजन का निषेध किया गया है। जो भोजन अच्छी तरह से नहीं पका है उसका आहार श्रावकों के लिए भी निषेध किया गया है। एक बात यह हो गई। दूसरा है भाव से शुद्ध यानी जो द्रव्य दिया जा रहा है वह साधु को बहराने के भाव से नहीं बनाया गया हो। वह द्रव्य साधु के निमित्त से बना हुआ नहीं होना चाहिए। चार प्रकार के आहार साधु के लिए निषेध बताए गए हैं। भगवान महावीर ने कहा कि आधाकर्मी, औद्देशिक, पूतिकर्म और मिश्रजात दोष वाला आहार मिले तो उसे लेना नहीं है। यदि भूल से भी आ जाए तो वह खाने लायक नहीं है। परठने लायक है।

इसको ऐसे समझें– मान लीजिए 50 लीटर दूध में एक सर्प का बच्चा निकला तो वह 50 लीटर दूध किसको पिलाएंगे, किस काम में लेंगे?

(लोगों ने कहा– उस दूध को फेंक देंगे भगवन्)

आप बोल रहे हैं कि उस दूध को फेंक देंगे, यानी वह दूध फेंकने लायक हो गया। वह दूध पीने लायक नहीं रहा। वैसे ही भगवान ने कहा है कि आधाकर्मी आहार यानी साधु के निमित्त से बनाया हुआ आहार नहीं लेना है। दूसरा औद्देशिक आहार यानी किसी खास साधु के निमित्त से बनाया गया। तीसरा पूतिकर्म। पूतिकर्म का मतलब है कि शुद्ध आहार में आधाकर्मी आदि का अंश मिला हुआ। मिश्रजात यानी इस भावना से खाना बनाना कि अपन भी

खा लेंगे और साधुओं के भी काम आ जाएगा। आहार बनाने के लिए समय थोड़ा आगे-पीछे कर लिया। जो आहार 11 बजे बनाते थे, वह आहार 10 बजे बना दिया क्योंकि प्रवचन का समय है और म.सा. कभी भी आ सकते हैं।

आपको प्रवचन में आना है इसलिए रसोई का काम जल्दी कर लिया, अपने निमित्त से आपने टाइम जल्दी कर दिया तो कोई बात नहीं, किंतु साधु के निमित्त से जल्दी न बनाएं। संतों के निमित्त से आहार बनाना सुपात्रदान का दोष है। इसका जो परिणाम, जो लाभ मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाएगा। यहाँ तक बताया गया है कि साधुओं की संख्या ज्यादा होने से 20, 25 घरों से गोचरी ली और उसमें कहीं से आधाकर्मी का थोड़ा-सा अंश मिल गया तो वह सारा आहार परठने लायक है। इससे समझ सकते हैं कि आधाकर्मी दोष कितना भारी होता है।

जहर शरीर का नाश करने वाला है, किंतु आधाकर्मी आहार साधुता का नाश करने वाला होता है, इसलिए उसका परिहार करना चाहिए। उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए। संत घरों में गोचरी लेने से पहले पूछताछ करते हैं तो कइयों को लगता है कि ये इतना पूछताछ क्यों कर रहे हैं। इसका जवाब एक सवाल से मिल सकता है।

सोने की दुकान में आभूषण खरीदने के लिए आप जाते हैं तो वहाँ पर क्या करते हैं?

(लोगों ने कहा- उसकी जाँच करते हैं, पूछताछ करते हैं)

आप सोने को ठोक-बजाकर लेते हैं। आभूषण की बात जाने दो। किसी जमाने में चार पैसे में मटकी मिलती थी। उसको भी ठोले मारकर देखते कि कहीं मेरे चार पैसे बेकार न चले जाएं। जब चार पैसों के लिए आप इतने सजग हैं तो मुनि कैसे अपने साधुता को दाँव पर लगा दे। उसने घरवालों, परिवारवालों, रिश्तेदारों, सबको छोड़ा है। वह अपने सारे शौक छोड़ देता है। वह अपने संयम को थोड़े-से स्वाद के पीछे, थोड़े-से ममत्व के पीछे कैसे छोड़ दे। इसलिए उसे बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। सुपात्रदान दोषों से रहित होना चाहिए। द्रव्य शुद्ध होना चाहिए। सड़ा-गला, रसचलित भी नहीं होना चाहिए।

ब्राह्मणी नागश्री ने मुनि का पातरा भर दिया। वह दान फायदेमंद था या नुकसानदायक?

(लोगों ने कहा– वह नुकसानदायक था)

क्योंकि उसकी भावना शुद्ध नहीं थी। शाक कड़वे तुंबे का था तो उसने म.सा. के पातरे में डाल दिया। वे धर्मरुचि अणगार थे इसलिए उन्होंने वह भोजन ले लिया। उनके गुरु महाराज ने उस आहार को देखा तो परठ देने के लिए कहा, किंतु जीवों की पीड़ा के बारे में सोचकर उनके हृदय में करुणा व्याप्त हो गई। उन्होंने समीक्षण किया कि आहार परठ देने से कितने जीव तड़प–तड़प कर मरेंगे। उन्होंने अपने बारे में सोचा कि इस काया को तो एक दिन जाना ही है फिर क्यों न मैं खुद ही इसे ग्रहण कर लूं। यह सोचकर उन्होंने कड़वे तुंबे का आहार ग्रहण कर लिया।

उसका परिणाम वही हुआ जो होना था। मुनि के शरीर से प्राण निकल गए।

नागश्री की भावना शुद्ध नहीं थी इसलिए उसको लाभ नहीं मिला। देने वाले और लेने वाले की भावना भी शुद्ध होनी चाहिए।

'दायगसुद्धेणं'

दिया जाने वाला आहार द्रव्य से, भाव से तो शुद्ध होना ही चाहिए, दायक शुद्धि यानी देनेवाला भी शुद्ध होना चाहिए। मतलब बड़ी रुचि से, बड़ी भक्ति से आहार बहराना। साथ ही गोचरी बहराते समय कच्चे पानी, वनस्पति, मोबाइल, फ्रिज आदि का संस्पर्श नहीं होना अर्थात् मुनि को भिक्षा देते वक्त किसी भी जीव की विराधना नहीं हो। यदि किसी जीव की विराधना होती है तो वह शुद्ध नहीं है। मुनि को ऐसी गोचरी नहीं लेनी चाहिए। दायग शुद्धि का मतलब भावना शुद्ध होनी चाहिए।

भिखारी को भी दान दिया जाता है, किंतु निर्ग्रंथ संतों की महिमा अलग होती है। निर्ग्रंथ संत त्यागी होते हैं। वे किन्हीं साधनों को अपने पास नहीं रखते। आहार–पानी का संचय नहीं करते। दिन का आहार दिन में ही करते हैं। यदि कोई बढ़िया वस्तु आ जाए तो उसका संचय करके नहीं रखते। ऐसे अपरिग्रह, अहिंसा, सत्य का पालन करनेवाले होने से वे सुपात्र हैं।

हम नाम लेते हैं शालिभद्र का।

शालिभद्र पुण्यवान बड़े गुणवान मुनि...

शालिभद्र की महिमा अमर है। शालिभद्र का कितने वर्षों तक नाम लिया जाएगा? कितने वर्षों तक नाम चलेगा?

ग्रंथों में ऐसा बताया गया है कि विजय सेठ और विजया सेठानी के शील की महिमा 84 चौबीसियों तक चलेगी। यह आगम की बात नहीं है। ग्रंथ की बात है।

शालिभद्र की कहानी अमर हो गई। उन्होंने तल से शिखर को छुआ था। हम थोड़ा पीछे जाएं तो मालूम पड़ेगा कि क्या स्थिति रही थी। संगम के भाव में केवल जीवन निर्वाह करने की स्थिति में चले थे। उनकी माता इधर-उधर के कार्य करके परिवार का निर्वाह कर रही थी। परिवार में दो ही प्राणी थे। ऐसा भी बताया गया है कि किसी समय वे बहुत धनाढ्य थे। कर्मों की विचित्र दशा की पहचान हम नहीं कर पाते। कर्म क्या-क्या खेल दिखा देते हैं यह संगम के जीवन से जान सकते हैं। उसकी माँ इधर-उधर घरों में कार्य करती थी। संगम खुद भी कई घरों की गायों को चराने का काम करता था।

कहानी में ऐसा बताया गया है कि एक बार घरों में खीर बनी। बछ बारस होने से सब घरों में गायें बँधी थीं। उस दिन गायों की पूजा की जानी थी। सब घरों में खीर बनते जानकर संगम का विचार बना कि आज मेरे घर में भी खीर बनेगी। आज मैं भी खीर खाऊंगा।

खीर सबको नसीब होती है क्या? सब के नसीब में खीर होती है क्या?

(लोगों ने कहा- नहीं होती भगवन्)

क्यों नहीं होती बताओ? कोरोना में अनेक लोगों को पौष्टिक खाना दिया गया और वार-त्योहार को ही खीर न मिले ऐसा क्यों?

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. का चातुर्मास घाटकोपर में चल रहा था। दीवाली का दिन था। वहाँ पर हलचल कुछ ज्यादा दिखी। वहाँ के अध्यक्ष थे वजु भाई गांधी। जब मैंने उनसे कहा कि यह हलचल कैसी हो रही है तो उन्होंने कहा कि दीवाली के दिनों में संघ द्वारा मिठाइयों का निर्माण व

विक्रय किया जाता है। काजू की कतली, बादाम की कतली और अन्य बहुत तरह की मिठाइयाँ बनवाकर संघ के सदस्यों को कम मूल्य में उपलब्ध कराई जाती है। उन्होंने बताया कि 90 रुपये की मिठाई संघ के सदस्य को 55 रुपये में देते हैं। ऐसा ही कुछ मुझे याद है। 35 वर्ष पहले की बात है।

मैंने पूछा कि आपको इससे क्या फायदा होता है? यदि नुकसान होता है तो संघ इसका नुकसान क्यों उठाएगा?

उन्होंने बताया कि लगभग सवा सौ किलो मिठाई हमें मुनाफे में बचती है, उसमें से लगभग 100 गरीब स्वधर्मी श्रावकों के परिवार में हम एक-एक किलो मिठाई फ्री में भिजवा देते हैं। साथ ही 10-15 कर्मचारियों को भी दी जाती है। गरीबी के कारण जो स्वधर्मी भाई मिठाई का उपयोग नहीं कर पाते उनके लिए हमने यह व्यवस्था बनाई है। यह मिठाई दीपावली का तोहफा समझी जाती है।

तरीका कुछ भी ढूँढा जा सकता है। लाभ का लाभ हो गया और गरीबों के साथ हृदय की कोमलता का एक परिचय भी कि हम ही केवल मिठाई खाने वाले नहीं हैं। हमारे भाई भी खाने वाले हैं। किंतु हर जगह शायद ऐसी स्थिति नहीं बनती है। स्वधर्मी पोषण का एक तरीका यह भी है। श्रावक का कर्तव्य है कि लोगों को धर्म से जोड़े। सम्यक् दृष्टि के गुणों में एक वात्सल्य गुण बताया गया है। उसके भीतर वात्सल्य भरा रहना चाहिए। करुणा का भाव बना रहना चाहिए। स्वधर्मी के लिए तो उसका दिल, दरिया बन जाना चाहिए।

संगम घर पर आता है और कहता है, माँ भूख लगी है खाना खाना है। संगम रोज लूखी-सूखी खाता था। उस दिन उसकी उम्मीदें जगी थीं कि आज तो खीर खाने को मिलेगी, पर उस दिन भी रोज की तरह ही लूखी-सूखी रोटी सामने आई तो उसने जिद पकड़ ली कि आज खीर ही खाएगा। उसने कभी हठ नहीं की थी, न किसी के सामने हाथ ही फैलाया था। ये उसकी माता की सीख थी। वह स्वयं भी ऐसा ही प्रयत्न करती थी कि किसी के सामने हाथ नहीं फैलाना पड़े।

माँगन वाला मर गया।

माँगने से उचित मरना माना जाता है। श्रावकों के लिए माँगना वर्जित

है। उसका हृदय उदार होना चाहिए। उसका हाथ सदा झुका रहना चाहिए। वैसे ही झुका होना चाहिए जैसे पेड़ पर फल आने पर उसकी टहनियाँ झुक जाती हैं। उसके दिल में वैसा ही बहाव होना चाहिए, जैसे पानी ढलान में बहता है। उसके द्वार सुपात्रदान के लिए, अनुकंपा दान के लिए सदा खुले रहने चाहिए।

भगवती सूत्र में तुंगिया नगरी के श्रावकों का वर्णन आता है। तुंगिया नगरी के श्रावक दान के लिए दरवाजे खुले रखते थे।

पूज्य श्री गणेशाचार्य म.सा. व्याख्यान में फरमाया करते थे कि सामान्य पक्षियों को दाना-चुग्गा डाला जाता है तो उन पक्षियों के साथ कभी राजहंस भी आ जाता है।

एक कहानी है कि एक राजा के हाथ में जहरीला फोड़ा हो गया। डॉक्टरों ने कहा कि ऑपरेशन करना पड़ेगा। डॉक्टरों ने यह भी कहा कि ऑपरेशन कराने पर हाथ काटना भी पड़ सकता है और सही भी हो सकता है। किसी वैद्य ने कहा कि इसका सहज में उपाय हो सकता है। वैद्य ने कहा कि यदि राजहंस आपके हाथ में चोंच मार दे तो जहरीला फोड़ा फूट जाएगा।

प्रश्न खड़ा हुआ कि राजहंस आए कहाँ से। खैर, राजहंस का उपाय भी किया गया और जहरीले फोड़े के उपचार का भी। एक छत बनाकर उसके बीच में ऐसा छेद रखा गया जिसके नीचे हथेली का वह हिस्सा रखा जा सके, जहाँ जहरीला फोड़ा था। उसके बाद छत पर दाना-चुग्गा डाला गया। वहाँ पर मोती भी बिखरे हुए थे। दाना डालने से वहाँ कई तरह के पक्षी आने लगे। उन पक्षियों के साथ एक बार राजहंस भी आ गया।

राजा से कहा गया कि राजन समय आ गया है, आप देर न करें और अपनी हथेली छेद के नीचे रखें। राजा ने हथेली छेद के नीचे रखी तो हंस ने उसे मोती समझकर उस पर चोंच मारी। उसने चोंच मारी कि फोड़ा फूट गया और राजा स्वस्थ हो गया।

उदाहरण के रूप में यह बात कही गई है कि अन्य पक्षियों के साथ वहाँ पर राजहंस भी आ गया। वैसे ही जहाँ पर नित्यप्रति लोगों के लिए कुछ-न-कुछ देने का लक्ष्य रहता है वहाँ पर मुनियों का भी कभी-कभी पहुँचना हो सकता है। उनके पहुँचने पर सहज में सुपात्रदान का मौका मिल जाता है।

अब जमाना बदल गया। एक समय था जब संयुक्त परिवार होते थे। घर में विपुल खाना बना होता था। घर में चार ही रोटी बने तो क्या विपुल आहार बहराएंगे? घर में मियां-बीबी दो ही हैं तो ज्यादा रसोई बनाने का क्या काम है?

मुझे सरदारशहर के अनोपचंद जी चंडालिया की बात बड़ी सुंदर लगी। उन्होंने कहा कि मेरे घर पर कोई संत पधारें तो हम पति-पत्नी डेढ़ रोटी का व्रत निपजा सकते हैं। मैं तीन रोटी की जगह दो रोटी खाकर एक रोटी का व्रत निपजा सकता हूँ और आधी रोटी की उनोदरी मेरी पत्नी कर सकती है। वह दो रोटी की जगह डेढ़ रोटी खा सकती है। इस तरह हम दोनों डेढ़ रोटी का व्रत निपजा सकते हैं अर्थात् डेढ़ रोटी बहरा सकते हैं। ऐसे श्रावक कहाँ मिलेंगे?

स्वाभाविक रूप से घर में जो है वही दान देना। कुछ भी बढ़ाना नहीं। घर में बढ़ाने वाले बहुत होंगे, किंतु मुँह से सच्ची बात बोलने वाले बहुत कम मिलेंगे। संत उपदेश में कहते हैं 'रसोई बनाते समय यह भूल जाना कि गाँव में म.सा आए हुए हैं और जब रसोई बन जाए तो यह नहीं भूलना चाहिए कि गाँव में म.सा. विराजे हुए हैं। जितनी रसोई स्वाभाविक बनती है, उतनी ही बनाना। संतों के निमित्त से ज्यादा नहीं बनाना। न जल्दी बनाना और न आइटम चेंज करना।

संगम की बात पर आते हैं। उसकी माता तब बड़ी अकुलाहट में आ गई, जब संगम ने कहा कि माँ आज तो मैं खीर ही खाऊंगा। आज घर-घर में खीर बन रही है तो हमारे घर में भी खीर बननी चाहिए। मैं भी आज खीर का भोजन करूंगा। उसकी बात सुनकर माँ का हृदय गम से बैठ गया क्योंकि उस दिन पहली बार उसने मुँह खोला था। पहली बार उसने कहा था कि माँ आज मुझे खीर खानी है। माँ यह बात सुनकर विचार में पड़ गई कि खीर कैसे बनाऊँ। कहाँ से खीर लाऊँ। वह मन में सोच रही थी कि घर में न शक्कर है, न दूध। चावल भी नहीं है।

खीर भी कई प्रकार की बनती है, किंतु मुख्य रूप से उसमें तीन घटक तो होते हैं। ऊपर से अन्य कितनी भी चीजें डालें कोई कमी नहीं है। पिस्ता, किशमिश, काजू, इलायची कितनी भी चीजें डाल दें उसकी बात अलग है।

उससे खीर का स्वाद अलग होगा, किंतु तीन चीजें मुख्य रूप से उसमें होती हैं; शक्कर, चावल और दूध। इतने में खीर बन सकती है किंतु उसके पास वे चीजें भी नहीं थी। फिर खीर बनाए तो कैसे ? कहाँ से सामान लाए ?

माता उसको समझाने लगी, फुसलाने लगी, पर बाल हठ में उसने कहा कि मैं तो आज खीर ही खाऊंगा। थोड़ा रुदन भी हो गया। पड़ोसियों ने सोचा कि आज तक उसके घर में कभी रुदन सुना नहीं, आज क्या हो गया। जब पड़ोसियों को मालूम पड़ा कि आज संगम खीर खाने के लिए रुदन कर रहा है तो उन्होंने कहा कि हमारे घर पर आ जाओ खीर खिला देंगे पर उसकी माता ने मना कर दिया कि खीर खाने के लिए किसी के घर नहीं जाना है। पड़ोसियों को उसकी बात समझ में आ गई। उन्होंने कहा कि आप हमारे घर से सामान ले लीजिए। उसकी माँ उनके घर से खीर का सामान उधार लाई। दूध, शक्कर और चावल लाकर खीर बनाई। खीर थाली में परोसकर उसकी माँ पानी लेने के लिए चली गई।

खीर गर्म थी तो संगम ने सोचा कि पहले उसे ठंडा कर लूं फिर खाऊंगा। गर्म खीर खाने से मुँह जल जाएगा। संगम खीर ठंडी होने का इंतजार कर रहा था कि उसके घर पर मासखमण के तपस्वी पहुँच गए। उनका मासखमण का पारणा था। उसने जैसे ही संतों को देखा उसका दिल बाग-बाग हो गया। वह सोचने लगा कि आज जीवन धन्य हो गया, आज मेरे घर संत-महात्मा-मुनिराज पधारे। ऐसे अवसर बहुत कम मिलते हैं, जब संतों का योग बनता है। कई लोग इंतजार करते रह जाते हैं, पर संतों का योग नहीं मिल पाता।

मेरा चेन्नई चातुर्मास था। शायद उपाध्याय प्रवर एक भाई के वहाँ पाँच किलोमीटर गोचरी के लिए पधारे थे। उस भाई ने बताया कि मैं लगभग 55 साल का हो गया हूँ। पहली बार मेरे घर संत पधारे हैं। 55 साल की उम्र में पहली बार सुपात्रदान दे रहा हूँ। बॉम्बे में कई लोग तो सोच ही नहीं पाते कि हमारे घर पर संत गोचरी के लिए कभी आएंगे। एक बार संत पैंतीस माले पर पहुँचे तो उसके हर्ष का पारावार नहीं रहा। उसने कहा कि मैं तो सोच ही नहीं सकता था कि मेरे यहाँ भी संत पधारेंगे पर आज मैं धन्य हो गया। संगम के भव में शालिभद्र का जीव धन्य-धन्य हो गया। कभी ऐसी बात निकल जाती है कि-

एक बार आओसा, गुरुसा म्हारे आंगणे,
मैं घणी करां ओ मनुहार, गुरुवर आओ सा।
'बिना बुलाए गुरु घर आए मानो तेज सितारा है'

आप भावना भाओ, इंतजार करो और गुरु आ जाएं तो वह बात नहीं जो बात बिना बुलाए, अकस्मात् गुरु के आने से होती है। वैसे जैन मुनियों की मर्यादा है कि बुलाने पर भिक्षा के लिए जाते नहीं हैं। किंतु पुण्य खिलता है तो अकस्मात् घर में संतों के आने का संयोग बन जाता है।

जिस घर पर संत नहीं आए वह घर मानो कुँवारा है। पुराने लोग ऐसा मानते थे कि वह घर क्या जिस घर से कन्यादान नहीं हुआ हो, जिस घर से कन्या का तोरण नहीं बँधा वह घर कुँवारा है।

आज तोरण कहाँ बँधता है?

(लोगों ने कहा- किसी होटल में या सामुदायिक स्थान पर)

अभी तो होटल या मंगल कार्यालय में तोरण बँधता है। तोरण किसी घर पर बँधे-न-बँधे पर हर गाँव से दीक्षा अवश्य होनी चाहिए। मैंने कई जगह बोला है कि जिस गाँव से दीक्षा नहीं हो वह गाँव कुँवारा है। आप यह कह सकते हो कि म.सा. यह मत बोलना कि जिस घर से दीक्षा नहीं हो वह घर भी कुँवारा है। दीक्षा का विचार बनना बहुत मुश्किल है, बहुत कठिन है। साधु जीवन स्वीकार करना सामान्य बात नहीं है। उसके लिए मन को मारना पड़ता है। इंद्रियों का दमन करना होता है।

यदि किसी के घर में उड़द की दाल बनी है तो साधु यह नहीं कहे कि यह पचने में भारी होती है, वायुकारक होती है। क्योंकि ऐसा सुन गृहस्थ ध्यान लगा सकता है कि म.सा. को इस दाल की नहीं, मूँग दाल की जरूरत होगी। इस भावना से वह यदि मूँग की दाल बनाने लगे तो वह द्रव्य शुद्ध होगा क्या? नहीं, उसमें कुछ-न-कुछ संतों के निमित्त का भाव जुड़ गया। इसलिए साधु को ऐसी कोई झलक भी नहीं देनी चाहिए। उदाहरण के लिए समझें, कोई संत गोचरी के लिए गया। गृहस्थ के घर में अनेक भोजन सामग्री उपलब्ध है, कुछ ऐसे भी पदार्थ हैं जो गृहस्थ में रहते हुए उस संत ने मनोज्ञता से सेवन की थी। वर्तमान में गृहस्थ का ध्यान उन वस्तुओं को बहराने की तरफ नहीं गया, ऐसी

स्थिति में संत उन चीजों को आँख गड़ाकर नहीं देखे। गोचरी में गए हुए साधु को यह ध्यान रखना चाहिए कि उसकी किसी भी प्रवृत्ति से गृहस्थ यह भाँप न सके कि म.सा. को अमुक वस्तु की विशेष खपत होगी।

इस प्रकार मुनि के लिए बहुत सावधानी बताई गई है। सावधानी हटी कि दुर्घटना घटी। मन के हारे हार है और मन के जीते जीत।

संगम के घर संत के पधारने से सुपात्रदान का योग बना। संत को देखकर वह विभोर हो गया और थाली उठाकर खीर संत के पातरे में बहरा दी। साथियो! ध्यान देना कि उसने यह नहीं सोचा कि मुझे तो आज ही खीर मिली है और आज ही संत का क्यों आना हुआ। उसने माथा नहीं ठोका कि खीर म्हारे भाग में लिखयोड़ी कोनी। इसके विपरीत वह खुश हुआ। उसके भाव उन्मत हो रहे थे। संगम ने सोचा कि आज मेरा रोना सार्थक हो गया। माता आई और उसने देखा कि वह थाली को चाट रहा है। उसका पेट भरा नहीं है। उसने बची खीर उसको परोस दी।

ये कहानी आपने बहुत बार सुनी है। इस कहानी को विस्तार दिया जा सकता है और संक्षिप्त में भी कह सकते हैं। वही जीव जन्म लेकर गोभद्र सेठ के यहाँ जन्म लेता है। छोटी उम्र में पिता का स्वर्गवास हो गया, कम उम्र में पिता का साया हट गया। वह देवलोक में गया। उसका लालन-पालन माँ की देखरेख में हुआ। उसके पिता का वात्सल्य उस पर रह गया, वह एक निमित्त बना, किंतु सुपात्र का लाभ मिलने वाला था। अत: 33-33 पेटियाँ रोज देवलोक से उसके घर पर उतरती थीं।

शालिभद्र पुण्यवान, बड़े गुणवान, सुनी जिनवाणी,
जिनकी है अमर कहानी...

एक दृश्य संगम का था और दूसरा दृश्य शालिभद्र के रूप में है।

यह पुण्य कहाँ से आया?

(लोगों ने कहा- सुपात्रदान से भगवन्)

संगम के सुपात्रदान से महिमा घटित हुई। कहानी बहुत लंबी है। एक समय मगध सम्राट श्रेणिक उसके घर आए। माता ने कहा कि बेटा नीचे चलो अपने घर नाथ आए हैं। यह सुन उसको झटका लगा कि मेरे पर भी कोई नाथ

है। माता के कहने पर नीचे आए पर नीचे आना रास नहीं आया। उन्होंने भगवान की वाणी सुनी और घर पर आकर कहने लगे कि मैं दीक्षा लेकर आत्म संधानी बनना चाहता हूँ। मैं अपनी आत्मा की खोज करना चाहता हूँ। माँ ने विचार किया कि यह क्या जाने साधु जीवन को।

माँ भद्रा ने जब यह जाना, उसने चाहा मन भरमाना।
पहले समझा ले तू घर धणियाणी।।

माँ ने उससे कहा कि तू पहले अपनी घरवालियों को समझा ले। अर्थात् पत्नियों को समझा लेगा फिर दीक्षा की बात करेंगे। वह प्रतिदिन एक-एक पत्नी को समझाने लगा। माता ने सोचा कि इतने दिनों में धीरे-धीरे उसका वैराग ठंडा पड़ जाएगा, किंतु जिसके भीतर का वैराग जग जाता है, जिसके भीतर ज्ञान चेतना जागृत हो जाती है वह रुकता नहीं, दीक्षित हो जाता है।

पिछले कुछ वर्षों से दीवाली के दिनों में यह गौरव गाथा चलती रही है। आप लोग बही-खातों में लिखते हैं, पर केवल लिखने से कुछ नहीं मिलनेवाला। खाली नाम लेने से कुछ नहीं मिलेगा। उसके लिए भाव बनाने पड़ेंगे। नकली नहीं, असली भाव। असली भाव जग जाएंगे तो लिखना शालिभद्र तणी ऋद्धि, धन्ना जी तणी सिद्धि, अभय कुमार जैसी बुद्धि।

हमारी भावना जगे। हम शुद्ध सुपात्रदान दें, निर्दोष दान दें। जब भी दें पवित्र दान दें, शुद्ध दान दें। ऐसा होने से मन प्रसन्न रहेगा, पवित्र रहेगा।

जमीन में एक किलो चने डाले व एक मन भूंगड़ा डाला, दोनों को खाद-पानी दिया। भूंगड़ा कुछ समय बाद सड़कर नष्ट हो जाएगा जबकि एक किलो चने के बीज प्रचुर फसल देने वाले हो सकते हैं।

आगमों में उल्लेख है कि सुपात्रदान देकर बहुत-से लोगों ने संसार परित किया, अपने मोक्ष को स्थापित किया। हम भी प्रयत्नशील बनें। जो भी सुपात्रदान देगा उसका जीवन धन्य हो जाएगा। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

29 अक्टूबर, 2021

14

प्रतिक्रिया नहीं, पुरुषार्थ

मेरे वीर प्रभु भगवान, मुझको पाना सच्चा ज्ञान...

ज्ञान तो हम अर्जित कर रहे हैं। हमने जन्म लिया तब अ, आ, इ, ई, ए, बी, सी, डी भी नहीं जानते थे। हमको अक्षरों को ज्ञान कराया गया। वर्तनी का ज्ञान कराया गया। उच्चारण करना सिखाया गया। हम सीख भी गए।

सीखते क्या हैं?

सीखते वह हैं जो अपने भीतर होता है। जो अपने भीतर नहीं होता उसे सीखा नहीं जा सकता। जो अपने भीतर है उसे ही प्रकट करना सीखना होता है। यदि यह बात नहीं है तो सीखने वाले सभी लोगों को एकसमान हो जाना चाहिए, पर ऐसा होता नहीं है।

एक व्यक्ति जल्दी सीखता है, जबकि दूसरा देर से सीखता है। एक ज्यादा सीखता है तो एक कम सीख पाता है। कोई सीख लेता है और कोई सीख ही नहीं पाता। जिसके भीतर जो चीज जितनी स्पष्ट है, वह उसको उतनी ही जल्दी सीख लेता है। जिसके भीतर जो स्पष्ट नहीं होता उसको वह नहीं सीख पाता। कई ऐसे लोग भी होते हैं जो देर से सीखते हैं या नहीं भी सीख पाते। कुछ को हस्ताक्षर करना भी नहीं आता। जो हस्ताक्षर भी नहीं कर पाते उनके लिए पुस्तक पढ़ना संभव नहीं है।

ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उनके भीतर से वैसा प्रकट नहीं हो पाया। बाहर की चीज केवल स्मृति दिलाती है कि तुम्हारे भीतर यह चीज रही हुई है, उसको तुम व्यक्त करो। प्रकट करो। पहचानी हुई चीज, भीतर रही हुई चीज जब सामने आती है, उससे मेल-मिलाप होता है तो उसको जान लेते हैं। उसको सीख लेते हैं।

ज्ञान हमारे भीतर मौजूद है। यदि हमारी दृष्टि सम्यक् है तो ज्ञान सम्यक् होगा। दृष्टि सम्यक् नहीं है तो ज्ञान सम्यक् दृष्टि वाला नहीं, वह मिथ्या होगा। मिथ्या और सम्यक् ज्ञान दोनों दृष्टि से संबंधित है। ज्ञान तो वही है बस दृष्टि बदलती है। दृष्टि बदलने से मिथ्या ज्ञान, सम्यक् हो जाता है। ज्ञान में कोई फर्क नहीं आया, किंतु देखने का एंगल बदल गया। एंगल बहुत महत्त्व रखता है।

एक सम्राट ने विचार किया कि मुझे अपनी एक फोटो बनवानी है। चित्रकारों को बुलाकर कहा गया कि सम्राट का एक चित्र बनाना है। चित्रकारों ने कहा ठीक है।

तीन-चार लोगों ने अपने तरीके से चित्र बनाया। राजा की एक आँख ठीक नहीं थी। वह एक आँख से काना था। एक चित्रकार ने राजा का वैसा ही चित्र बना दिया। यानी एक आँख से काना। वह चित्र देखकर राजा को गुस्सा आ गया। वह कहने लगा कि इस चित्र को लोग देखेंगे तो सदियों तक यह बात याद रखेंगे कि राजा काना था।

दूसरे चित्रकार ने दोनों आँखों को सही बना दिया। उसमें राजा दोनों आँखों से देख रहा था। राजा ने उससे कहा कि तुम तो मुझे वर्तमान में ही झुठला रहे हो। लोग कहेंगे कि राजा की एक आँख नहीं है और इसमें दोनों आँखें सही बताई है। लोग इस पर हँसेंगे। राजा ने दूसरे चित्रकार को डाँटा और कहा कि तुम चापलूसी कर रहे हो। ऐसा नहीं चलेगा।

तीसरे चित्रकार ने ऐसा चित्र बनाया कि सम्राट धनुष हाथ में लिए हुए तीर खींच रहे हैं। धनुष पर बाण लगाए हुए हैं। तीर चलाते समय क्या करना होगा?

(लोगों ने कहा- एक आँख बंद करनी पड़ेगी भगवन्)

आप समझदार तो बहुत हो। यह दृष्टि का फर्क है। यदि एंगल समझ में आ जाए तो बात ही अलग है।

तीसरे चित्रकार के चित्र पर राजा खुश हुआ। उसमें न केवल सत्यता थी बल्कि प्रशंसा भी थी। सत्यता और प्रशंसा में क्या फर्क है? अभी बहनों के शरीर पर कितने आभूषण होंगे? नवदीक्षित महासतियाँ जी के शरीर पर कितने आभूषण हैं? जिस दिन वरघोड़ा निकाला गया उस दिन कितने आभूषण थे।

प्रशंसा एक प्रकार का आभूषण है। यथार्थ की प्रशंसा होती है, किंतु हर वक्त प्रशंसा नहीं हुआ करती। समय-समय पर प्रशंसा हुआ करती है। आभूषण समय-समय पर पहने जाते हैं।

चित्र में प्रशंसा यह थी कि सम्राट वीरोचित मुद्रा में था। वीरता उनकी प्रशंसा थी। स्तुति थी। चित्रकार ने राजा की यथार्थ स्थिति प्रकट की। उसने एक आँख दिखाई, साथ में प्रशंसा की तो राजा खुश हो गया। सच तो वही था, किंतु कागज पर उतारने में अलग-अलग दृष्टिकोण हो गए। वैसे ही हमारा दृष्टिकोण अलग होता है। हम किस एंगल से किसी बात को देखते हैं, किसी बात को किस तरह स्वीकार करते हैं यह महत्त्वपूर्ण है। सम्यक् दृष्टि एकांत रूप से नहीं देखते।

गुड़ हम सभी खाते होंगे या नहीं खाते ?

(लोगों ने कहा- खाते हैं भगवन्)

श्रीमद् भगवती सूत्र में कहा गया है कि भगवान से जिज्ञासा व्यक्त की गई कि गुड़ कितने वर्ण वाला है, कितने रस वाला है, कितने गंध वाला है ?

भगवान ने कहा कि इसका उत्तर दो प्रकार से दिया जाएगा। एक उत्तर व्यवहार से और दूसरा उत्तर निश्चय से। व्यवहार से गुड़ मधुर रस वाला है किंतु निश्चय में पाँचों वर्ण हैं, दोनों गंध हैं, पाँचों रस हैं, आठों स्पर्श हैं। उसमें जो पुद्गल मिले हुए हैं वे भिन्न-भिन्न वर्ण, रस, स्पर्श और गंध वाले हैं।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से हम कौवे को काला कहते हैं। तोता हरा होता है तो उसको हरा कहते हैं। निश्चय में पाँचों वर्ण, दोनों गंध, पाँचों रस, आठों स्पर्श रहे हुए होते हैं। यह दृष्टि का भेद है।

कोई कहे कि यह कैसे मान लें कि कौवा काला होता है, मैंने तो धोला देखा। तुमने केवल व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा है। उनमें मिले हुए सारे घटक नहीं देखे।

किसी आयुर्वेदिक औषधि में 30 चीजें मिली हों तो वे सभी चीजें नजर नहीं आतीं। उन सबका मिला-जुला एक वर्ण नजर आता है। अत: एक वर्ण ज्ञात हुआ और बाकी सारे वर्ण उसमें दब गए। सभी औषधियाँ एक ही जैसी होती हैं या नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता, किंतु कई औषधियों का रंग

एक दिखता है जबकि उसमें कई चीजें डाली जाती हैं। जिन चीजों से एक औषधि बनी, उन चीजों का रंग अलग-अलग था या नहीं ?

(लोगों ने कहा- अलग-अलग था भगवन्)

भिन्न-भिन्न वर्ण होते हुए भी व्यवहार में एक रंग नजर आ रहा है। उसमें गंध एक प्रकार की आ रही है। उसमें भी जो गंध है वह भिन्न-भिन्न है। सबकी एक गंध रहे, यह जरूरी नहीं है।

वैसे ही ज्ञान हमारे भीतर है। केवल अपनी दृष्टि, अपना एंगल बदलने की जरूरत है। इसको आध्यात्मिक भाषा में स्यादवाद कहा गया है। अनेकांतवाद कहा गया है। स्यादवाद की शैली से यदि हमने किसी चीज को जानने का प्रयत्न किया तो हमारा एंगल सही है। स्यादवाद से नहीं समझकर एकांतवाद से समझने पर गड़बड़ी होगी।

शालिभद्र की ऋद्धि, धन्ना जी की सिद्धि का मतलब क्या है ?

धन्ना जी की सोच एकदम स्पष्ट थी। साफ थी। कुछ लोग ऐसी वृत्ति के होते हैं जो उलझन का काम ज्यादा करते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो उलझन की बजाय अपना रास्ते तय करने की दृष्टि से सोचते हैं। धन्ना जी की सोच ने भी अपना रास्ता बनाया। धन्ना जी प्रतिक्रिया में नहीं, क्रिया में जीते थे।

क्रिया और प्रतिक्रिया में क्या फर्क होता है ? बताओ।

क्रिया का मतलब है पहले कुछ नहीं हो। खुद नया ईजाद करना क्रिया होती है। उस पर विपरीत रूप से क्रिया किये जाने को प्रतिक्रिया कहते हैं। प्रतिक्रिया में कुछ नया नहीं किया जाता। पहले कुछ होने पर बाद में उसकी प्रतिक्रिया की जाती है। प्रतिक्रिया के लिए पहले कुछ होना जरूरी है। प्रतिक्रिया वे लोग ही करते हैं जो क्रिया नहीं कर सकते। प्रतिक्रिया दो प्रकार की होती है। आदतन प्रतिक्रिया करना व ईर्ष्यावश प्रतिक्रिया करना। यदि ज्ञान दृष्टि से विचार करें तो दोनों प्रकार की प्रतिक्रिया लाभकारी नहीं है।

धन्ना जी प्रतिक्रिया में नहीं जी रहे थे। वे क्रिया में जी रहे थे। उनकी सोच बहुत स्पष्ट थी। उनका रास्ता तय था कि मुझे क्या करना है। कोई भी परिस्थिति आई उन्होंने अपना रास्ता ढूँढा। दूसरों को सुधारने की बजाय पहले अपने आप को जानने का प्रयत्न किया।

धन्ना की सिद्धि सवाई है।
नहीं अहंकार मन लाई है।। धन्ना...

धन्ना जी के लिए कहा जाता था कि **'पदे-पदे निधानानि'** अर्थात् उनके पग-पग पर निधान था। खजाना था। बात बहुत लंबी है इसलिए पूरी कहानी को यहाँ प्रस्तुत नहीं कर पाऊंगा, किंतु कुछ बिंदु उभारूंगा। ये बिंदु हमारे जीवन के लिए बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

धन्ना जी का जन्म चौथे भाई के रूप में हुआ। उनके तीन भाई पहले से थे। धन्ना जी के जन्म के बाद नाल गाड़ने के समय गड्ढा खोदा गया तो उसमें से धन निकलने पर उनका नाम धन्ना जी रख दिया गया।

पूता रा पग पालने पिछाणिजे

पालने में सोए बच्चे के पैर हिलाने के तरीके से लोग उसके भविष्य का निर्धारण कर लेते हैं। जाननेवाले जान लेते हैं कि यह बड़ा होकर कैसा निकलेगा।

यहीं ब्यावर में एक मुमुक्षु संत दर्शन के लिए उपस्थित हुआ। जिस प्रकार से उसने संतों की पर्युपासना की उसे देखकर पास बैठे एक श्रावक ने कहा कि यह दीक्षा लेगा तो आचार्य बनेगा। वह मुमुक्षु आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी थे और श्रावक रत्न श्री मोहनलाल जी मूथा थे। बच्चे के कृत्य से, उसके व्यवहार से झलक जाता है कि वह क्या बनेगा। जरूरी नहीं है कि बोलकर ही सारी बातें हों।

मैंने एक बात कही थी कि इशारों से जो बातें समझी जाती हैं वह बोलने से खत्म हो जाती हैं। जो बातें इशारों में समझी जाती हैं उन बातों को बोलने पर उनका रस निकल जाता है। इशारे बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। एक माता अपने पुत्र को आँख से इशारा करती है और वह समझ जाता है। उसको बोलकर कहने से उस बात का मजा खत्म हो जाता है। मजा किरकिरा हो जाता है। इशारे की बात महत्त्वपूर्ण होती है।

धन्ना जी के लिए कुदरत का इशारा था कि यह भाग्यवान जीव है। पुण्यवानी का उदय भी होता है, किंतु व्यक्ति में अक्ल अपनी न हो तो वह पुण्यवानी का सदुपयोग नहीं कर पायेगा। ऐसे बहुत-से लोग देखे गए जो

पीढ़ियों से धनाढ्य रहे, किंतु घर में ऐसा पूत जन्मा जिसने सारा चौपट कर दिया। उसकी पुण्यवानी थी तभी संपन्न परिवार में जन्म लिया। यदि पुण्यवानी नहीं होती तो जन्म नहीं लेता, किंतु उसमें अक्ल नहीं होने से पुण्यवानी को सहेज करके रख नहीं पाया। सोच-समझ सही नहीं होने से गलत रास्ते पर जाकर सारी चीजें खत्म कर दीं।

गाँव के एक घर में हम गोचरी गए। वहाँ से गोचरी करके निकले तो साथ वाले भाई ने कहा कि म.सा. यहाँ पाँच-पचास लोगों को रोज सहायता मिलती थी। सेठ जी बड़े उदार दिल वाले थे। सेठ जी के संतान नहीं हुई तो उन्होंने एक संतान को गोद लिया। सेठ जी के जाने के बाद उसने घर का किस्सा ही बदल दिया। आज वह कर्जे में जी रहा है।

परिश्रम की कमाई अलग होती है और फ्री में आई हुई चीज अलग होती है। बिना परिश्रम की कमाई आदमी के समझ में नहीं आती। जो परिश्रम करता है वह जानता है कि एक पैसा भी कमाना कितना कठिन होता है। पैसे के लिए कितनी मेहनत करनी पड़ती है। कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं। कितना दिमाग लगाना पड़ता है। कितने तरीके खोजने पड़ते हैं। ऐसे ही नहीं मिलता पैसा। लोग कहते हैं कि पुण्यवानी थी इसलिए छप्पर फाड़कर पैसे आ गए। पुण्यवानी से आते जरूर हैं पर धन को बढ़ाने में सही सोच-समझ सहयोगी बनती है।

धन्ना जी बचपन से ही सबके प्रिय थे। परिवारवालों के भी प्रिय थे और पड़ोसियों के भी प्रिय रहे। सभी लोग धन्ना जी की प्रशंसा करने लगे। सबको धन्ना जी ही नजर आने लगे तो तीनों भाइयों के मन में ईर्ष्या जागृत हो गई।

मैंने एक बार कहा था कि ईर्ष्या की बीमारी किसी भी समय पैदा हो जाती है। इस बीमारी का कुछ पता नहीं है कि कब पैदा हो जाए। कैंसर जिस दिन पैदा होता है, उस दिन मालूम नहीं पड़ता। जल्दी मालूम नहीं पड़ता। कैंसर कभी दूसरे स्टेज पर मालूम पड़ता है तो कभी तीसरे स्टेज पर। पहले स्टेज पर उसका पता पड़ना आसान नहीं है। बहुत कठिन है।

कैंसर की तरह ही ईर्ष्या पैदा होने पर भी शुरू में आदमी समझ नहीं

पाता। जब तक समझ पाता है तब तक बहुत रास्ता तय हो चुका होता है। फिर उसका ईगो, अहंकार उसको पीछे नहीं आने देता। फिर उसको कोई कितना भी समझाए सब बेकार हो जाता है। समझाने पर वह कहने लगता है कि आपकी नजर बदल गई है। व्यक्ति को पहचान नहीं पा रहे हैं। मेरी अपनी सोच है। मैं अपनी सोच कहीं से उधार लेकर नहीं आया हूँ, किंतु वह यह नहीं जानता कि उसकी ही सोच तुच्छ है। उसकी ही समझ से विचार संकीर्ण है। ध्यान रहे, जिनका दिमाग संकीर्ण होता है वे व्यापक नहीं सोच सकते। निश्चित है कि ऐसे लोग मोक्ष के शिखर को नहीं छू पाएंगे। क्योंकि न तो उनकी वैसी चाह है और न ही वैसी राह है। प्रतिक्रिया में, विरोध में उनकी जितनी बुद्धि चलती है उतनी बुद्धि सार्थक सोच में नहीं चलती।

धन्ना जी के भाई गुणपरक दृष्टिवाले होते तो वे विचार करते कि यह मेरा छोटा भाई है, इसकी पुण्यवानी है। उन्हें धन्ना जी के गुण नजर आते। इससे उनके मन में ईर्ष्या पैदा नहीं होती। परिणामस्वरूप वे अपने भीतर गुणों को विकसित करते, ईर्ष्या के भाजन नहीं बनते। पर हुआ विपरीत। तीनों भाइयों में ईर्ष्या बढ़ती गई। यहाँ तक कि उन्हें धन्ना जी फूटी आँख नहीं सुहाते। उनको लगता कि इसके कारण से हमारा अपमान होता है। भाइयों को ऐसा लगने लगा कि यह सारा कार्य पिताजी का है। वे इसको बढ़ावा देना चाहते हैं। इससे हमारी अवहेलना हो रही है। हमारी तरफ उनकी दृष्टि नहीं है।

उन तीनों की सोच सही थी या गलत?

(लोगों ने कहा कि गलत थी)

आपको कैसे मालूम हुआ कि गलत थी? हो सकता है कि उनकी सोच सही रही हो। मैं नहीं कहता कि यह एकांत गलती है, सही भी हो सकती है। पिता के मन में वैसे विचार नहीं थे। उनकी दृष्टि ऐसी नहीं थी, अपितु जिसकी पुण्यवानी होती है उसकी तरफ हर किसी का ध्यान बरबस आकृष्ट हो जाता है। अत: हमें यह विचार करना चाहिए कि यह सारा खेल पुण्यवानी का है।

हम भी यदि किसी से ईर्ष्या करेंगे तो अपनी पुण्यवानी को घटाएंगे या बढ़ाएंगे?

(लोगों ने कहा– घटाएंगे भगवन्)

हम संक्लेश में जाकर अपनी पुण्यवानी को खोने लगेंगे।

गुरुदेव को एक कहानी प्रिय थी। पूज्य आचार्य गुरुदेव कई बार उस कहानी को फरमाया करते थे। कहानी है कि एक सेठ की माँ को लड़ाई के बिना खाया हुआ पचता नहीं था। सेठ ने घरवालों को ऐसा समझाया कि माँ जब भी बोले तो कोई भी उसके सामने जवाब नहीं दे। उसने सभी से कह रखा था कि अपने भीतर सहनशीलता रखनी है। परिवार के सभी सदस्यों ने सेठ की बात को अमली रूप दिया। सेठ की माँ घर में लड़ाई करती तो घरवाले उसके सामने बोलते ही नहीं थे। अब घर में संक्लेश खत्म हो गया। लड़ाई–झगड़ा बंद हो गया। उसकी माँ को लड़ाई के बिना रहा नहीं जा रहा था तो वह पड़ोस में जाकर लड़ने लगी।

पड़ोसियों ने कुछ दिन देखा। बड़े सेठ की माँ होने से लोग बोल भी नहीं पाते थे। बाद में सोचने लगे कि ये तो रोज का झमेला खड़ा हो गया। उसका काम था, इधर–उधर की बातें भिड़ाकर दूसरों से लड़ना व लड़ाना।

गुरुदेव फरमाया करते थे कि नारद जी तोड़ने की कला में माहिर थे। ऐसा करने में उनको मजा आता था। तमाशा उनको अच्छा लगता था। तमाशे देखते, किंतु तोड़कर जोड़ने की कला भी उनमें थी। वे तोड़ते थे तो जोड़ भी देते थे। सेठ की माँ तोड़ने की वृत्ति में तो प्रवीण थी, किंतु जोड़ने का तरीका समझ नहीं पाई। जोड़ने की कला उसके हाथ में नहीं आ पाई। वह तोड़ने में बड़ी माहिर थी। तोड़ना उसके लिए बायें हाथ का खेल था।

बायें हाथ का खेल का मतलब क्या होता है?

(लोगों ने कहा– आसानी से काम हो जाना)

बायें हाथ से काम करने का मतलब आसानी से काम कर लेना। यानी यह ज्यादा जटिल काम नहीं है। दाहिना हाथ ज्यादा सक्रिय होता है। प्राय: लोग दायें हाथ से ही अधिक कार्य करते हैं। कुछ लोग बायें हाथ से खाना खाते हैं और उसी से लिखते भी हैं। यह अपवाद है। सामान्यतया दाहिना अंग, दाहिना हाथ ज्यादा सक्रिय होता है। दाहिने तरफ की क्रियात्मक शक्ति ज्यादा चलती है। बायां अंग अपेक्षाकृत कम काम करता है। अत: बायें हाथ का खेल

यानी क्रियाशील दाहिने हाथ का उपयोग करना ही न पड़े।

धन्ना जी के भाई धन्ना जी का विरोध करने लगे। भाइयों को ऐसा लगने लगा कि पिताजी की शह मिलने से इसका बोलबाला बढ़ रहा है। पिताजी उसी रूप में उसको प्रस्तुत करते हैं इसलिए लोग इसकी प्रशंसा ज्यादा करते हैं।

किसी के प्रति ईर्ष्या पनपने की पहचान कैसे हो ?

यदि कोई उसकी प्रशंसा करे तो उस समय अपने भीतर हलका-सा भी प्रतिक्रियात्मक भाव पैदा नहीं होने देना है। उसको सुनने के लिए मन राजी होता है, तब तो ठीक पर यदि ऐसा विचार आए कि फोकट की प्रशंसा हो रही है, मन उसको सुनने के लिए राजी न हो, नकारात्मक सोच आए तो समझ लो कि अपने भीतर ईर्ष्या के बीज अंकुरित होने लगे हैं। उस समय यदि व्यक्ति सावधान हो जाए तो वह स्वयं को बचा सकता है। दूसरों की बढ़ती को जो नहीं देख पाए तो समझ लो कि उसके भीतर ईर्ष्या पैदा हो चुकी है।

उसको कैसे मिटाएं ?

ईर्ष्या से बचने के लिए कुछ नया करना पड़ेगा। अपने चित्त से उसको मिटाना पड़ेगा। जैसे ब्लैकबोर्ड पर लिखा हुआ मिटाते हैं वैसे ही मिटाना पड़ेगा। ईर्ष्या के बीज बहुत सूक्ष्म होते हैं। इसलिए उनको भीतर से निकालना बहुत कठिन होता है पर असंभव नहीं। कैंसर को दूर करना फिर भी आसान है किंतु ईर्ष्या की बीमारी बहुत जटिल है, पर वीर पुरुष कठिनाइयों का मुकाबला करने के लिए तत्पर रहते हैं।

एक पुस्तक में मैंने ऐसा पढ़ा था कि यदि पाँच किलो उठाने की ताकत है तो छह किलो उठाने के बारे में सोचना चाहिए। ऐसी सोच जगे कि मैं छह किलो वजन उठा सकता हूँ। ऐसी सोच होगी तो एक दिन छह किलो उठाने की हिम्मत हो जाएगी। अपनी शक्ति से थोड़ी ज्यादा कठिनाइयों का सामना करना चाहिए। हमें ऐसी पुस्तकें पढ़नी चाहिए जो हमारी शक्ति को जगा सकें। कोई भी प्रोजेक्ट ऐसा नहीं बनाना चाहिए कि सहज ही पूरा कर सकें। प्रोजेक्ट ऐसा हो कि उसके लिए थोड़ा प्रयत्न करना पड़े। पुरुषार्थ करना पड़े। चाहे सांसारिक प्रोजेक्ट हो या धार्मिक। उसमें थोड़ा पुरुषार्थ करना पड़े। थोड़ी

अधिक मेहनत करनी पड़े। जैसे नवकार एक, दो, तीन, चार गिन लिए तो गिन लिए और नहीं गिने तो नहीं गिने, यह सही तरीका नहीं है। यदि 11 नवकार गिनना है तो गिनना है। भले ही आलस्य आए, झपकी लगे, किंतु गिनें। गिनने से शक्ति जागृत होगी। फिर धीरे-धीरे बढ़ाते हुए 11 से 21 नवकार हो जाएगा।

धन्ना के पिता ने चारों भाइयों की बुद्धि का परीक्षण करने के लिए कुछ धन दिया और कहा कि इस धन से आपको और धन कमा के लाना है। जो धन कमाकर लाएं उससे मेरी पूँजी वापस मुझे लौटा दें। जो अधिक कमाई करके लाएगा उसकी तरफ से पूरे परिवार को भोजन दिया जाएगा। तीनों भाई व्यापार करके पहले ही आ गए। धन्ना भी आए। तीनों भाइयों का पुण्य योग कमजोर था या यूं समझें कि व्यापार के गुर नहीं जानते थे परिणामस्वरूप इतनी कमाई नहीं कर पाए कि पिता की पूँजी वापस लौटाकर वे परिवार वालों को भोजन करा सकें। पिता ने कहा कि कोई बात नहीं मैं करा देता हूँ। यह भी उन भाइयों को अभीष्ट नहीं था। उन्होंने उसके लिए मना कर दिया।

धन्ना जी ने अच्छी कमाई की। उन्होंने अपनी औत्पत्तिकी बुद्धि से विपुल धन कमाया। पिता की पूँजी लौटाकर उन्होंने भाभियों को भेंट के रूप में आभूषण दिए। पूरे परिवार के साथ बिरादरी को भी भोजन कराया। नाम किसका हो गया?

(लोगों ने कहा- पिताजी का)

तीनों भाइयों के भीतर धन्ना के प्रति भरी ईर्ष्या को दूर करने के लिए पिता ने ऐसा अवसर प्रदान किया था ताकि सबकी समझ में आ जाए कि कौन कितने पानी में है, किंतु तीनों की ईर्ष्या और बढ़ गई। तीनों भाई सोचने लगे कि पिताजी ने हमसे छिपाकर इसको पैसे दिए होंगे, नहीं तो एक दिन में वह इतना कैसे कमा सकता था। दोष निकालने वाला कहीं से भी दोष निकाल लेगा।

आचार्य पूज्य हेमचंद्र ने भगवान की स्तुति करते हुए कहा- भगवन् आपके गुणों से असूया (ईर्ष्या) रखनेवाले लोग आपके गुणमय जीवन में दोष की कल्पना कर लेते हैं। वे अपनी कल्पना से ऐसा कहते हैं कि सिंहासन पर बैठे हुए हैं, चामर ढोले जा रहे हैं, छत्रादिछत्र लगे हुए हैं फिर भी वीतरागी कहे जाते हैं। यह तो चोखी वीतरागता है। यह असूया का ही खेल है। क्योंकि

सिंहासन आदि से वीतरागता का कोई संबंध ही नहीं है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव स्पंज की गादी पर विराजते थे। उनको रीढ़ की हड्डी में तकलीफ थी इसलिए बैठने के लिए उसका उपयोग लेना पड़ता था। एक दर्शनार्थी पहुँचा। उसको सबसे पहले आचार्य की गादी नजर आई। उसने सोचा कि क्या ठसका है आचार्य का। उसने गादी का अर्थ निकाला कि आचार्य म.सा. का क्या ठसका है। संयोग ऐसा बना कि गुरुदेव ने उसी दिन कहा कि मेरे रीढ़ की हड्डी में तकलीफ के कारण मैं इसका उपयोग कर रहा हूँ। दर्शनार्थी का सहज समाधान हो गया। उसने विचार किया कि मैं क्या सोच रहा था और सही बात क्या है।

उसकी प्रथम दृष्टि कहाँ गई? हमारी दृष्टि पहले किधर जाती है, किस तरफ जाती है? हम क्या देखते हैं? हमारी दृष्टि क्या है? हमारा एंगल क्या है?

ईर्ष्या से देखना भी एक एंगल है पर इस एंगल से कभी सच नहीं दिखता। हकीकत यह है कि जो ईर्ष्या में चला जाता है, वह सुखी नहीं रह पाता। उसका जीना हराम हो जाता है। उसकी नींद खराब हो जाती है।

उस घटना के बाद तीनों भाइयों ने परस्पर विचार किया कि अब इस घर में रहा नहीं जा सकता है। तीनों ने सोच लिया कि धन्ना के साथ हम नहीं रह सकते। फिर उन्होंने सोचा कि हम इस घर को छोड़ के नहीं जाएंगे, कुछ ऐसा किया जाए कि न रहे बाँस न बजे बाँसुरी।

ये किसका परिणाम था?

(लोगों ने कहा– ईर्ष्या का)

ऐसा द्वेष सफलता का घातक है। कोई यह सोचे की ईर्ष्या से वह सफलता प्राप्त कर लेगा तो ऐसा नहीं हो सकता। वह नीचे गिरने में सफल हो सकता है, किंतु ऊपर उठने में सफल नहीं हो सकता। वह कभी भी ऊपर नहीं उठ सकता है। क्योंकि उसने रास्ता ही गलत चुना।

बाणिया रो ब्याज रात में चलता है या दिन में?

(लोगों ने कहा– 24 घंटे चलता ही रहता है)

ईर्ष्या भी दिन-रात चलती रहती है। कोई उसे निकालना चाहे तो भी वह घूमकर वहीं खड़ी मिलती है। वह नींद हराम कर देती है।

धन्ना के प्रति ईर्ष्या ने उन भाइयों की भी नींद हराम कर दी। परिणाम यह हुआ कि तीनों भाइयों ने सोचा कि धन्ना का काम तमाम कर दिया जाए। उसको मार दिया जाए। भाइयों ने सोचा कि उसको मार देने से हमारी सभी दुविधाएं खत्म हो जाएंगी, पर क्या बिल्ली के चाहने से ही 'छींका' टूट जाता है? नहीं। कहा भी गया है- **जाको राखे साइयां मार सके न कोय...**

किसी तरह इसकी गंध धन्ना तक पहुँच गई। बात पहुँची तो धन्ना ने विचार किया कि भाइयों को ऐसा पाप न करना पड़े इसलिए मैं ही उनकी आँखों से ओझल हो जाऊँ। वे रात्रि में उठे और निकल गए।

सुबह धन्ना घर पर नहीं मिला तो उसकी खोज होने लगी। बहुत खोज करने पर भी धन्ना नहीं मिला तो नहीं ही मिला। भाइयों ने उल्टा सोचा कि पिताजी ने धन देकर कहीं भेज दिया है। ऊपर से दिखावे के लिए कहते हैं कि हमको पता नहीं है पर पिताजी को सब मालूम है। सब मिली-जुली सरकार है। ऐसी बात नहीं है कि पिताजी को मालूम नहीं। पिताजी ने उसको खूब धन दिया होगा कि बेटा सुखी रहना पर हम ऐसा नहीं होने देंगे।

कालांतर में हालत यह हो गई कि सम्राट ने उनसे संपत्ति छीन ली और तीनों भाई भिखारी बन गए। तीनों की स्थिति दयनीय हो गई। वे तीनों भाई घूमते-घूमते माता-पिता व पत्नियों सहित धन्ना के पास पहुँच गए तो धन्ना ने उनका स्वागत-सत्कार किया। मान-सम्मान दिया। उसने पुरानी बात नहीं उठाई कि तुम कितने पानी में हो, यह मैं जानता हूँ। तुम तो मुझे जान से ही मार डालना चाहते थे, उसने ऐसा नहीं किया।

गुणीजन ऐसी तुच्छ हरकत नहीं करते। ऊँचे लोग अपने साथ किए गए बुरे बर्ताव को याद नहीं रखते, अपितु किसी ने थोड़ा भी उपकार किया हो तो उसे सदा स्मृति पटल पर बनाए रखते हैं। धन्ना ने किसी पुरानी बात को महसूस नहीं होने दिया, बल्कि उनको खूब मान-सम्मान दिया, पर उन तीनों की कुबुद्धि अभी भी नहीं गई थी। वे अभी भी उसी पर चल रहे थे। वे सोच रहे थे कि यह सारा दिखावा है। यह पिताजी की सोची-समझी चाल है। भाइयों की यह भावना ज्ञात होने पर धन्ना जी धीरे से वहाँ से भी निकल गए।

धन्ना की पुण्यवानी ऐसी थी कि वे जहाँ जाते वहीं खजाना ही खजाना

हो जाता। यानी **'पदे-पदे निधानानि'** की स्थिति थी। एक जगह एक हाथी मदोन्मत्त हो गया था। उसको कोई कंट्रोल में नहीं कर पा रहा था। धन्ना ने उस हाथी को वश में कर लिया तो सम्राट की घोषणा के अनुसार राजकुमारी से उसकी शादी हो गई व आधा राज्य भी मिल गया।

एक जगह जाते समय वे छायादार पेड़ के नीचे आराम कर रहे थे। उनको थकान हो गई थी। वे सोच रहे थे कि दोपहरी का समय हो गया, भूख भी लगी है। तभी वहीं एक खेत में काम कर रहे किसान के घर से भाता आया। किसान हल छोड़कर हाथ-पाँव धोकर खाना खाने बैठा। तभी सामने एक अतिथि को देखकर कहा कि भाई तुम्हें भी भूख लगी होगी तो हाथ-पाँव धो लो और मेरे साथ भोजन कर लो।

धन्ना ने कहा कि मैं मनुहार नहीं करवा रहा हूँ पर मेरा नियम है कि जिसका मैं खाना खाता हूँ पहले उसका कुछ काम करता हूँ, इसलिए आप पहले मुझे कुछ काम बता दें। काम निबटा के मैं आपके साथ खाना खाऊंगा।

किसान ने कहा कि मेरे पास कोई दूसरा काम तो है नहीं। मेरे पास एक ही काम है हल चलाना। अगर हल चला सकते हो तो थोड़ा चला लो।

धन्ना ने हल चलाया। उन्होंने हल चलाया तो वहाँ धन निकल गया। कहाँ से निकला धन?

(लोगों ने कहा- जमीन से)

वहाँ धन था या ऐसे ही निकल गया?

(लोगों ने कहा- जमीन में था)

धन जमीन में था यह सही है, पर प्रश्न है कि किसान को अब तक वह धन प्राप्त क्यों नहीं हुआ? वह तो वर्षों से खेत जोत रहा था। धन्ना के प्रथम बार हल चलाते ही धन क्यों निकल गया?

किसान कई पीढ़ियों से खेती कर रहा था, पर उस धन को नहीं निकाल पाया। धन्ना ने एक बार हल चलाया तो सोने की मुद्राएं, अशरफियां खेत में बिखर गईं। उसको उसकी कोई लालसा नहीं, कोई चिंता नहीं। जो चिंता पाले, उसको ऐसा अवसर मिलना कठिन है। चिंता सबको खा जाती है। जो चिंता से अटकता है वह भटकता रहता है और छोड़ने वाला आगे बढ़ता

रहता है।

किसान उस धन को इकट्ठा करने लगा तो धन्ना ने कहा कि पहले खाना खा लें। इसको बाद में इकट्ठा कर लेना। दोनों ने साथ मिलकर भोजन किया। भोजन के बाद जब धन्ना जाने लगे तो किसान ने हाथ पकड़कर कहा कि जा कहाँ रहे हो?

धन्ना ने कहा कि मेरा काम हो गया, अब मुझे रास्ता तय करना है।

किसान ने कहा कि अपना धन लेकर जाओ।

धन्ना ने कहा, मेरा धन? कौन-सा भाई? मैंने तो रोटी के बदले हल चलाया था। रोटी मिल गई तो मेरा काम हो गया। तुम्हारे खेत से धन निकला है तो वह धन तुम्हारा है।

किसान ने कहा कि मैं इस खेत को बाप-दादा के जमाने से जोत रहा हूँ पर मुझे कभी नहीं मिला। धन लिए बिना तुमको मैं जाने नहीं दूंगा। धन्ना जी धन लेने के लिए तैयार नहीं थे। किसान ने कहा कि मैं इसको ले नहीं सकता। किसान ने कहा कि चलो राजा के पास वहीं निर्णय करा लेते हैं कि धन का मालिक कौन।

दोनों राजा के पास गए और कहा कि राजन इसका निर्णय किया जाए। उन्होंने धन मिलने की स्थिति बताई तो राजा ने कहा कि जमीन से निकली संपत्ति यद्यपि सम्राट की होती है, किंतु तुम दोनों लेने को तैयार नहीं तो मैं क्यों लूं। ऐसा कहकर उसने उस संपत्ति से उसी जगह धन्य नगर बसा दिया। एक ऐतिहासिक नगर बसा दिया।

धन्ना जी का जीवन त्याग भरा रहा है। वे सदा उद्यमशील रहे। सकारात्मक सोच में रहे। नकारात्मक सोच कभी भी उनके जीवन का अंग नहीं बनी। कितने भी कष्ट उनके सामने आए वे कभी दुखी नहीं हुए। कष्टों से कभी उनका मन नहीं मुरझाया। उनकी सोच सदा पॉजीटिव रही। वे सही सोच में रहे। वे अपनी राह बनाते रहे। राह बनाते रहने से वे कई राज्यों के राजा बन गए।

किस कारण राजा बने?

(लोगों ने कहा- सकारात्मक सोच के कारण बने)

उनकी सोच अपकारी का भी उपकार करने की थी। सदा अपने

आपको वात्सल्य भाव से उत्प्रेरित करना चाहिए। वात्सल्य भाव के अभाव में जीवन शुष्क हो जाएगा। जैसे पेड़ का रस सूख जाने पर वह ठूँठ बन जाता है, वैसे ही हमारे भीतर वात्सल्य की भावना नहीं होगी तो हम ठूँठ बन जाएंगे।

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं...

हमारे भीतर वात्सल्य भाव नहीं रहे तो हमारा जीवन एक प्रकार से ठूँठ के समान है। धन्ना जी की बात करें तो उन्हें पग-पग पर संपदा प्राप्त हुई, किंतु उन्होंने कभी भी अहंकार नहीं किया। कभी यह नहीं कहा कि यह मैंने किया। कभी भी बड़े बोल नहीं बोले।

'बड़े बड़ाई ना करें बड़े ना बोलें बोल'

बड़े लोगों की बड़ी पहचान होती है। ऊँचे लोगों की ऊँची पहचान होती है।

ऊँचे ऊँचाई वरते हैं, हिम्मत होती न डरते हैं...

ऊँचे लोग त्यागने में पीछे नहीं रहते हैं। त्यागने वाले आगे बढ़ते रहते हैं। जो पकड़ लेते हैं वे वहीं रुक जाते हैं। जो छोड़ता हुआ चला जाता है लक्ष्मी उसके पीछे-पीछे दौड़ती रहती है।

हमको क्या करना है, हमारा क्या निष्कर्ष है, हमें क्या सोचना चाहिए?

साथियो! धन्ना जी की चर्चा सुनी। उन्होंने सिद्धि प्राप्त की। सिद्धि त्याग से मिलेगी। उदारता से मिलेगी। लघुता से मिलेगी। अपकारी के प्रति भी उपकार का भाव हो तो मिलेगी। ईर्ष्या से सिद्धि नहीं मिलने वाली है। सिद्धि, प्रतिक्रिया से नहीं, पुरुषार्थ से मिलेगी। सत्य मार्ग पर चलने से मिलेगी। इसलिए सत्य मार्ग पर बढ़ते रहें। अपना कर्म करते रहें। अपना सत्कर्म करते रहें। अपना कर्तव्य करते हुए आगे बढ़ते रहेंगे तो सिद्धियाँ आकर आपके चरण छूने लगेंगी। वे पीछे-पीछे दौड़ेंगी। सिद्धियों को पाने के लिए उनके पीछे नहीं दौड़ना। वे अपने आप पीछे आती रहेंगी। इतना ही कहते हुए अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

30 अक्टूबर, 2021